महावीर ग्रन्थमाला—दसवां पुष्प

(प्राचीन जैन कवियों द्वारा रचित)

हिन्दी पद संग्रह

प्राक्कथन लेखक

डा० रामसिंह तोमर
एम० ए०, पी० एच० डी०
अध्यक्ष हिन्दी विभाग, विश्वभारती
शान्तिनिकेतन

सम्पादक

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल
एम० ए०, पी० एच० डी०

प्रकाशक
गैंदीलाल साह
मन्त्री
प्रबन्धकारिणी कमेटी
दि० जैन० अ० क्षेत्र श्रीमहावीरजी
महावीर भवन, जयपुर

विषय सूची

प्रकाशकीय

'हिन्दी पद संग्रह' को पाठकों के हाथों में देते हुये मुझे प्रसन्नता हो रही है। इस संग्रह में प्राचीन जैन कवियों के ४०१ पद दिये गये हैं जो मुख्यतः भक्ति, वैराग्य, अध्यात्म शृंगार एवं विरह आदि विषयों पर आधारित हैं। कबीर, मीरा, सूरदास एवं तुलसी आदि प्रसिद्ध हिन्दी कवियों के पदों से हिन्दी जगत् खूब परिचित है तथा इन भक्त कवियों के पदों को अत्यधिक आदर के साथ गाया जाता है लेकिन जैन कवियों ने भी भक्ति एवं अध्यात्म सम्बन्धी सैकड़ों ही नहीं हजारों पद लिखे हैं जिनकी जानकारी हिन्दी के बहुत कम विद्वानों को है और संभवतः यही कारण है कि उनका उल्लेख नहीं के बराबर होता है। प्रस्तुत 'पद संग्रह' के प्रकाशन से इस दिशा में हिन्दी विद्वानों को जानकारी मिलेगी ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

प्रस्तुत संग्रह महावीर ग्रंथमाला का दसवां प्रकाशन है। साहित्य शोध विभाग द्वारा इससे पूर्व ९ पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी हैं। उनका साहित्य जगत् में अच्छा स्वागत हुआ है। देश विदेश के विश्वविद्यालयों में इनकी मांग शनै शनै बढ़ रही है और उनके सहारे बहुत से विश्वविद्यालयों में जैन साहित्य पर रिसर्च भी होने लगा है। शोध विभाग के विद्वानों द्वारा राजस्थान के ८० से अधिक शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूचियां

तैयार करली गयी हैं जो एक बहुत बडा काम है और जिसके द्वारा सैकडों अज्ञात ग्रंथों का परिचय प्राप्त हुआ है। वास्तव में ग्रंथ सूचियों ने साहित्यान्वेषण की दिशा में एक दृढ़ नींव का कार्य किया है जिसके आधार पर साहित्यिक इतिहास का एक सुन्दर महल खड़ा किया जा सकता है। इसी तरह राजस्थान के प्राचीन मन्दिरों एवं शिलालेखों का कार्य भी है जो जैन इतिहास के विलुप्त पृष्ठों पर प्रकाश डालने वाला है। शिलालेखों के कार्य में भी काफी प्रगति हो चुकी है और इसके प्रथम भाग का शीघ्र ही प्रकाशन होने वाला है।

साहित्य शोध विभाग के कार्य को और भी अधिक गति शील बनाने के लिए क्षेत्र की प्रबन्ध कारिणी कमेटी प्रयत्नशील है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये विद्वानों का एक शोध मंडल (Research Board) शीघ्र ही गठित करने की योजना भी विचाराधीन है। शोध विभाग की एक त्रैवार्षिक साहित्यान्वेषण एवं प्रकाशन की योजना भी बनायी जा रही है जिसके अनुसार राजस्थान के अवशिष्ट शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची का कार्य पूर्ण कर लिया जावेगा।

सुप्रसिद्ध विद्वान डा० रामसिहजी तोमर, अध्यक्ष हिन्दी विभाग विश्व भारती शान्तिनिकेतन के हम आभारी हैं जिन्होंने इस पुस्तक का प्राक्कथन लिख कर हमारा उत्साह बढ़ाया है। हम श्री पं० चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ के भी पूर्ण आभारी हैं जिनकी सतत प्रेरणा एवं निर्देशन में हमारा

साहित्य शोध विभाग कार्य कर रहा है। प्रस्तुत पुस्तक के विद्वान् सम्पादक डा० कस्तूरचन्द जी कासलीवाल एवं उनके सहयोगी श्री अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ एवं श्री सुगनचन्द जी जैन का भी हम हृदय से आभार प्रकट करते हैं जिनके परिश्रम से यह पुस्तक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने में समर्थ हो सके हैं।

गैंदीलाल साह
मन्त्री

दिनांक २०-४-६५

प्राक्कथन

जैन सम्प्रदाय के अनुयायियों ने भारतीय साहित्य और सम्कृति को महत्वपूर्ण ढंग से समृद्ध किया है। सस्कृत, प्राकृत और आधुनिक भारतीय भाषाओं में उत्कृष्ट कृतियों की रचनाए जैनाचार्यों ने लिखी हैं। दर्शन, धर्म, कला के क्षेत्र में भी उनका योगदान बहुत श्रेष्ठ है। सभी क्षेत्रों में जो उनकी कृतियां मिलती हैं उन पर जैन चितन की अपनी विशेषता की स्पष्ट छाप मिलती है और वह छाप है जैन धर्म और नीति विषयक दृष्टि कोण की। इसी कारण जैन साहित्य जैनेतर साहित्य की तुलना में कुछ शुष्क प्रतीत होता है। सौंदर्य, कल्पना तथा भाषा की दृष्टि से जैन कथा साहित्य अनुपम है। "वसुदेवहिण्डी," "कुवलयमाला कथा", "समराइच्च कहा" आदि ऐसी कृतियां हैं जिन पर कोई भी देश उचित गर्व कर सकता है। अपभ्रंश में भी "पउम-चरिउ", पुष्पदंत कृत "महापुराण" भी महत्त्वपूर्ण कृतियां हैं।

हिन्दी में भी जैनाचार्यों ने अनेक कृतियां लिखी हैं। "अर्द्ध कथानक" जैसी कृतियों के एकाधिक विद्वत्तापूर्ण संस्करण हो चुके है। हिन्दी साहित्य के इतिहासों में जैन रचनाओं का न्यूनाधिक रूप में उल्लेख मिलता है, किन्तु भाषा और भावधारा की दृष्टि से सही मूल्यांकन अभी नहीं हुआ है। उसके कारण हैं-जैन

साहित्य की एकरसता, सर्वसाधारण के लिए उसका उपलब्ध न होना और स्वय जैन समाज की उपेक्षा। प्रस्तुत संग्रह में डा० कासलीवाल जी ने जैन कवियों की कुछ रचनाओं को सग्रहीत किया है। ये रचनाएँ पद शैली की हैं। हिंदी, मैथिली, बंगला तथा अन्य उत्तर भारत की भाषाओं में पदशैली मध्यकालीन कवियों की प्रिय शैली रही है। पदों को 'राग रागनियों' का शीर्षक देकर रखने की प्रथा कितनी प्राचीन है कहना कठिन है। किन्तु कविता और सगीत का सम्बन्ध बहुत प्राचीन है — उतना ही प्राचीन जितनी कविता प्राचीन है। भारत के नाट्य शास्त्र के ध्रुवागीत, नाटकों में विभिन्न ऋतुओं, पर्वों, उत्सवों आदि को संकेत करके गाए जाने वाले गीतों में इसकी परम्परा का प्राचीनतम साहित्यिक प्रयोग मिलता है। छद और राग में कोई सबंध रहा होगा किन्तु छंद शास्त्रियों ने इस पर बहुत ही कम विचार किया है। मैथिल कवि-लोचन की रागतरंगिणी में इस विषय पर थोडा सा संकेत मिलता है जो हो रागबद्ध पदों की दो परम्पराएें मिलती हैं—एक सरस और दूसरी उपदेश प्रधान। सरस परम्परा में साहित्यिक रस और मानव अनुभूति का बड़ा ही सुन्दर चित्रण हुआ है। उस पद परम्परा में विद्यापति, व्रज के कृष्ण भक्त कवि मीरा आदि प्रधान हैं। दूसरी उपदेश और नीति प्रधान धारा का प्रारम्भिक स्वरूप साधना परक बौद्ध सिद्धों के पदों में देखा जा सकता है। कबीर के पदों में साधना परक स्वर प्रधान होते हुये भी काव्य की झलक मिलती है। अन्य संतों

के पदों में काव्य की मात्रा बहुत ही कम है। किन्तु उपदेश और नीति के लिए दोहा का ही प्रधान रूप से मध्ययुग के साहित्य में प्रयोग हुआ है। जैन पदों में उपदेश की प्रधानता है। वास्तव में समस्त जैन साहित्य में धर्म और उपदेश के तत्वों का विचित्र सम्मिश्रण मिलता है। जैन साहित्य की समीक्षा करते समय जैन कवियों के काव्य विषयक दृष्टिकोण को सामने रखना आवश्यक है—कथा और कविता के सम्बन्ध में जिनसेनाचार्य ने कहा है:—

त एव कवयो लोके त एव विचक्षणाः।
येषां धर्मकथाङ्गत्वं भारती प्रतिपद्यते॥
धर्मानुबन्धिनी या स्यात् कविता सैव शस्यते।
शेषा पापास्रवायैव सुप्रयुक्तापि जायते॥

हिंदी जैन साहित्य का अध्ययन इसी दृष्टि से होना चाहिये।

हिन्दी साहित्य के मध्ययुग में भक्ति की धारा सबसे पुष्ट है उसके सगुण, निर्गुण (संत, सूफी) दो रूप हैं। अभी तक जैन संप्रदायानुयायियों की भक्ति विषयक रचनाओं का भावधारा की दृष्टि से अध्ययन नहीं हुआ है। डा० कासलीवाल के 'पद सग्रह' में भक्ति विषयक रचनाएँ ही प्रधान रूप से उद्धृत की गई हैं। इन रचनाओं का रचनाकाल सोलहवीं शती से लेकर उन्नीसवीं शती का उत्तरार्द्ध है। भट्टारक रत्नकीर्त्ति गोस्वामी तुलसी-

दास के समकालीन थे। हिन्दी साहित्य के इतिहासों में जहां भक्ति-काल की सीमाएँ समाप्त होती हैं उसके पश्चात् भी भक्ति की धारा प्रवाहित होती रही। और जैन साहित्य में तो उस धारा का कभी व्यतिक्रम हुआ ही नहीं। हिन्दी साहित्य के इतिहासों में जैन भक्ति धारा का भी सम्यक अध्ययन होना आवश्यक है, और जैसे जैसे जैन कृतिकारों की रचनाएँ प्रकाशन में आती जावेगी विद्वानों को इस धारा का अध्ययन करने में और सुगमता होगी।

प्रस्तुत संग्रह कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है जैन तत्त्वदर्शन और मध्ययुग की सामान्य भक्ति-भावना का इन पदों में अच्छा समन्वय मिलता है। आत्मा, परमात्मा, जीव, जगत, मोक्ष-निर्वाण जैसे गंभीर विषयों का क्रमबद्ध विवेचन इन पदों के आधार पर किया जा सकता है इनके सम्बन्ध में जैन दृष्टिकोण को इन पदों में ढूंढना थोडा कठिन है। उपदेश और उद्बोधन की प्रधानता है। मध्य युग की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है, नाम स्मरण का महात्म्य। हमारे सग्रह में अनेक पदों में नाम स्मरण को भव संतति से मुक्त होने का साधन बताया गया है।—

"हो मन जिन जिन क्यों नहीं रटै" (पद २२०) मध्ययुग के प्रायः सभी संप्रदायों में भक्ति के इस प्रकार की बड़ी महिमा है। प्रभु और महापुरुषों का गुणगान भी भक्ति का महत्त्वपूर्ण प्रकार है। अनेक पदों में 'नेमि के जीवन का भावोछ्वास पूर्ण शब्दों में वर्णन किया गया है। 'राजुल' के वियोग और नेमि के "मुक्ति वधू" में निमग्न होने के वर्णनों में शांत और उदासीनता दोनों का बडा ही समवेदनात्मक चित्रण हुआ है (पद ३६)।

अनेक प्रकार के कष्ट सहकर तप करने की अपेक्षा शुद्ध मन मे प्रभु का स्मरण हृदय को पवित्र कर देता है और परम पद की प्राप्ति का यह सुगम साधन है– यह भाव हिंदी के भक्त कवियों की रचनाओं का अत्यन्त प्रिय भाव है। जैन भक्तों ने भी बार बार उसका उल्लेख किया है —

प्रभु के चरन कमल रमि रहिए।
सक्र चक्रधर-धरन प्रमुख-सुख, जो मन बछित चहिये।

विषयों को त्याग करने तथा उनके न त्यागने से भव जाल में पड़कर दुःख भोगने की यातनाओं का भक्ति–साहित्य में प्रायः उल्लेख मिलता है। जैन कवियों के पद भी इसके अपवाद नहीं है। संक्षेप में भक्तिकाल की समस्त प्रवृत्तियाँ न्यूनाधिक रूप में इन पदों में मिलती है।

संग्रहीत पदों में भक्ति धारा के वैष्णव कवियों के समान यथार्थ सरसता नहीं मिलती किन्तु इनमें कवि-कल्पना एव मन को प्रसन्न करने वाले काव्ययुक्त वर्णनों का अभाव नहीं है। भावधारा और भाषा की दृष्टि से भी इस साहित्य का अध्ययन होना चाहिये। आशा है प्रस्तुत सग्रह जैन भक्तिधारा के अध्ययन में सहायक सिद्ध होगा।

डा० रामसिंह तोमर

दिनांक २८–११–६२

प्रस्तावना

काव्य रूप एवं भाव धारा की दृष्टि से जैन कवियों की अपभ्रंश एवं हिन्दी कृतियों का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। काव्य के इन विभिन्न रूपों में प्रबन्ध काव्य, चरित, पुराण, कथा, रासो, धमाल, बारहमासा, हिण्डोलना, बावनी, सतसई, वेलि, फागु आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। स्वयम्भू, पुष्पदन्त, धनपाल, वीर, नयनन्दि, धवल आदि कवियों की अपभ्रंश कृतियां किसी भी भाषा की उच्चस्तरीय कृतियों की तुलना में रखी जा सकती हैं। इसी तरह रल्ह, सधारु, ब्रह्म जिनदास, कुमुदचन्द्र, बनारसीदास, आनन्दघन, भूधरदास आदि हिन्दी कवियों की रचनायें भी अनेक विशेषताओं से परिपूर्ण हैं। काव्य के विभिन्न अंगों में निबद्ध रचनाओं के अतिरिक्त जैन कवियों ने कबीर, मीरा, सूरदास, तुलसी के समान पद साहित्य भी प्रचुर मात्रा में लिखा है जिनके प्रकाशन की आवश्यकता है। दो हजार से अधिक पद तो हमारे संग्रह में है और इनसे भी दुगने पदों का अभी और संकलन किया जा सकता है।

गीति काव्य की परम्परा

प्राकृत साहित्य में गीतों की परम्परा निश्चित रूप से उपलब्ध होती है। न केवल गीतों की परम्परा मिलती है वरन् शास्त्रों के वर्गीकरण में भी गेय पदों को स्थान मिला है। इसी तरह अपभ्रंश में भी गीतों की

आरम्भिक रूप रेखा स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। पज्झटिका, घत्ता, रड्डा, तोटक, दोधक, चौपई, दुवई आदि छन्द गीति काव्य में मुख्यतः प्रयुक्त हुए है। स्वयभू एवं पुष्पदन्त ने पउमचरिउ, रिट्ठणेमिचरिउ एवं महापुराण आदि जो काव्य लिखे हैं उनमें गीति काव्य के लक्षण मिलते है। पुष्पदन्त ने श्रीकृष्ण के बालजीवन का जो वर्णन किया है वह सूरदास के वर्णन से साम्य है। स्वयम्भू के पउमचरिउ में से एक गीतितत्व से युक्त वर्णन देखिये—

मुखहु णयणाणन्दयरु

(स–स–ग–ग–ग म नि–नि–नि–म–स–नि धा)

समर–मएँहि णिव्वूढ–भरु।

(म–म–ग–म–म–धा–स–नी स–धा–स–नी–म धा)

पवर–सरीरु पलम्ब–भुउ

(स–स–स–स–ग–ग–म–म–नि–नि–स–नि–धा)

लङ्क पईसइ पवण–सुउ

(म–म–गा–मा–गा–म–धा–स–नी–धा–स–नी–स–धा)

(सुर वधुओं के लिये आनन्ददायक शत शत युद्ध भार उठाने में समर्थ प्रबल शरीर पलम्ब बाहु हनुमान ने लका नगरी मे प्रवेश किया। *

इसी तरह पुष्पदन्त का भी एक पद देखिये—

धूलीधूसरेण वर-मुक्क-सरेण तिणा मुरारिणा।

कीला-रस-वसेण गोवालय गोवीहियय–हारिणा।

---

* देखिये– ज्ञानपीठ काशी द्वारा प्रकाशित– भाग ३ – पृष्ठ ११०

रेंगंतेण रमंत रमंतें मंथउ धरिउ भमंतु अणंतें।
मंदीरउ तोडिवि आवहिउ
अद्धविरोलिउं दहिउं पलोहिउं।
का वि गोवि गोविन्दहु लग्गी
एण महारी मंथणि भग्गी।
एयहि मोल्लु देउ आलिंगणु,
णं तो मा मोल्लहु मे मगणुं।

उक्त पद का हिन्दी अनुवाद महापंडित राहुल ने निम्न शब्दों में किया है—

धूली धूसरेंहि वर मुक्त शरेंहिं तेहि मुरारिहिं।
क्रीडा-रस वशेहिं गोपालक-गोपी हृदयहारिहिं।
रंगंतेहि रमंत रमंते, पंथअ धरिउ भ्रमंत अनते।
मंदीरउ तोडिय आ वहिउं अर्ध विलोलिय दधिम पलौहिउ।
कोई गोपि गोविंदहिं लागी, इनहि हमारी मेथनि भोगी
एतह मोल देउ आलिंगन, ना तो न आवहु मम आंगन।

हिन्दी के विकास के साथ साथ इस भाषा में संगीत प्रधान रचनायें लिखी जाने लगी। जैन कवियों ने प्रारम्भ में छोटी छोटी रचनायें लिख कर हिन्दी साहित्य को विकसित होने में पूर्ण सहयोग दिया। हिन्दी में सर्व प्रथम पद की उत्पत्ति कब हुई, अभी खोज का विषय है। वैसे पदों के प्रधान रचयिता कबीर, मीरा, सूरदास, तुलसीदास आदि माने जाते हैं। ये सब भक्त कवि थे इसलिये अपनी रचनायें गाकर सुनाया करते थे। पद विभिन्न छन्दों से मुक्त होते हैं और उन्हें राग रागनियों में गाया जाता

है इसलिये सभी हिन्दी कवियों ने विभिन्न राग वाले पदों को अधिक निबद्ध किया। इनसे इन पदों का इतना अधिक प्रचार हुआ कि कबीर, मीरा एव सूर के पद घर घर में गाये जाने लगे।

जैन कवियों ने भी हिन्दी में पद रचना करना बहुत पहिले से प्रारम्भ कर दिया था क्योंकि वैराग्य एवं भक्ति का उपदेश देने में ये पद बहुत सहायक सिद्ध हुये हैं। इसके अतिरिक्त जैन शास्त्र सभाओं में शास्त्र प्रवचन के पश्चात् पद एवं भजन बोलने की प्रथा सैकड़ों वर्षों से चल रही है इसलिये भी जनता इन पदों की रचना में अत्यधिक रुचि रखती आ रही है। राजस्थान के सम्पूर्ण भण्डारों की एव विशेषत: सागवाड़ा, ईडर आदि के शास्त्र भण्डारों की पूरी छानबीन न होने के कारण अभी सबसे प्रथम कवि का नाम तो नहीं लिया जा सकता लेकिन इतना अवश्य है कि १५ वीं शताब्दी में हिन्दी पदों की रचना सामान्य बात हो गई थी। १५ वीं शताब्दी के प्रमुख सन्त सकलकीर्ति द्वारा रचित एक पद देखिये—

तुम बोलमो नेम जी दोय घटीया
जादव वस जब व्याहन आये, उग्रसेन धी लाडलीया।
राजमती विनती कर जोरें, नेम मनाव मानत न हीया।
राजमती सखीयन सुं बोले, गीरनार भूधर ध्यान धरीया।
सकलकीर्त्ति प्रभु दास चारी, चरणे चीत लगाय रहीया। [1]

सकलकीर्ति के पश्चात् ब्रह्म जिनदास के पद भी मिलते हैं।

---

[1] आमेर शास्त्र भण्डार गुटका संख्या ३ – पत्र संख्या ६३

आदिनाथ के स्तवन के रूप में लिखा हुआ इनका एक पद बहुत सुन्दर एवं परिष्कृत भाषा में है। इसी तरह १६ वीं शताब्दी में होने वाले छीहल, पूनो, बूचराज, आदि कवियों के पद भी उल्लेखनीय हैं। प्रस्तुत संग्रह में हमने संवत् १६०० से लेकर १६०० तक होने वाले कवियों के पदों का समह किया है। वैसे तो इन ३०० वर्षों में सैकड़ों ही जैन कवि हुये है जिन्होने हिन्दी में पद साहित्य लिखा है। अभी हमने राजस्थान के शास्त्र भण्डारों की ग्रथ सूची चतुर्थ भाग [१] में जिन ग्रंथों की सूची दी है उनमें २४० से भी अधिक जैन कवियों के पद उपलब्ध हुये हैं किन्तु पद संग्रह में जिन कवियों के पदो का संकलन किया गया है वे अपने युग के प्रतिनिधि कवि हैं। इन कवियों ने देश में आध्यात्मिक एव साहित्यिक चेतना को जाग्रत किया था और उसके प्रचार में अपना पूरा योग दिया था। १७वीं शताब्दी में और इसके पश्चात् हिन्दी जैन साहित्य में अध्यात्मवाद की जो लहर दौड गयी थी इस लहर के प्रमुख प्रवर्तक हैं कविवर रूपचन्द एवं बनारसीदास। इन दोनों के साहित्य ने समाज में जादू का कार्य किया। इनके पश्चात् होने वाले अधिकांश कवियों ने अध्यात्म एवं भक्ति धारा में अपने पद साहित्य को प्रवाहित किया। भक्ति एवं अध्यात्म का यह क्रम १६वीं शताब्दी तक उसी रूप में अथवा कुछ २ रूप परिवर्तन के साथ चलता रहा।

---

[१] श्री महावीरजी क्षेत्र के जैन साहित्य शोध सस्थान की ओर से प्रकाशित

पदों का विषय-वर्गीकरण

जैन कवियों ने पदों की रचना मुख्यतः जीवात्मा को जाग्रत रखने तथा उसे कुमार्ग से हटा कर सुमार्ग में लगाने के लिये की है। कवि पहले अपने जीवन को सुधारता है इसलिये बहुत से पद वह अपने को सम्बोधित करते हुये लिखता है और फिर वह यह भी चाहता है कि संसार के प्राणी भी उसी का अनुसरण करें। उसे भगवद् भक्ति के लिए प्रेरित इसी उद्देश्य से करता है कि उसके अवलंबन से उसे सुमार्ग मिल जावे तथा उसके शुद्धोपयोग प्रकट हो सके। यह तो वह स्वयं जानता है कि मुक्तात्मा न तो किसी को कुछ दे सकते हैं और न किसी से कुछ ले ही सकते हैं फिर भी प्रत्येक जैन कवियों ने परमात्मा की भक्ति में पर्याप्त संख्या में पद लिखे हैं; यद्यपि वे सगुण एवं निर्गुण के चक्कर में नहीं पड़े है। क्योंकि उनका जो रूप वे जानते है वही है। तीर्थंकर अवस्था में यद्यपि उनके अनेकों वैभवों की कल्पना की है फिर भी उन्हें शरीराश्रित कह कर अधिक महत्व नहीं दिया है। इन पदों में सरसता, संगीतात्मकता एवं भावप्रवणता इतनी अधिक है कि उन्हे सुनकर पाठकों का प्रभावित होना स्वाभाविक है। पदों के पढने अथवा सुनने से मनुष्य को आत्मिक सुख का अनुभव होता है। उसे अपने किये हुये कार्यों की आलोचना एवं भविष्य में त्यागमय जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरणा मिलती है। सामान्य रूप से इन पदों का निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है :—

१– भक्तिपरक पद
२– आध्यात्मिक पद
३– दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक पद
४– शृंगार एव विरहात्मक पद
५– समाज चित्रण वाले पद

इन का संक्षिप्त परिचय निम्न रूप से दिया जा सकता है :—

भक्तिपरक पद

जैन कवियो ने भक्तिपरक पद खूब लिखे हैं। इन कवियों ने तीर्थंकरों की स्तुति की है जिनकी महिमा वचनातीत है। संसार का यह प्राणी उस प्रभु के विविध रूप देखता है लेकिन उनका यह देखना ऐसा ही है जैसे अन्धे पुरुष अपने मत की पुष्टि के लिए हाथी की विभिन्न प्रकार की कल्पना करके झगडने लगते है........

विविध रूप तव रूप निरुपत, बहुतै जुगति बनाई।
कलपि कलपि गज रूप अन्ध ज्यौं झगरत मत समुदाई।।
कविवर रूपचन्द

कवि बुधजन इतना ही कह सके हैं कि जिनकी महिमा को इन्द्रादिक भी नही पा सकते उनके गुनगान का वह कैसे पार पा सकता है।

प्रभु तेरी महिमा वरणी न जाई।
इन्द्रादिक सब तुम गुण गावत, मैं कछु पार न पाई।।

कविवर रूपचंद ने एक दूसरे पद में प्रभु-मुख का वर्णन करते हुए लिखा है उस मुख की किससे उपमा दी जासकती है वह अपने समान अकेला ही

है चन्द्रमा और कमल दोनों ही दोषों से युक्त हैं उनके समान प्रभु मुख कैसे कहा जा सकता है। चन्द्रमा के लिये कवि कहता है कि वह सदोष एवं कलंक सहित है कभी घटता है कभी बढ़ता है इसी तरह कमल भी कीचड से युक्त है कभी खिल जाता है तो कभी बंद हो जाता है।

प्रभु मुख की उपमा किहि दीजै।
ससि अरु कमल दोय ब्रज दूषित
तिनकी यह सरवरि क्यों कीजै॥
यह जड रूप सदोष कलंकितु
कबहूं बढै कबहूं छिन छीजै।
वह पुनि जड पंकज रज रंजित
सकुचै विगसै अरु हिम भीजै॥

बनारसीदास ने प्रभु की स्तुति करते हुए कहा है कि वह देवों का भी देव है। जिसके चरणों में इन्द्रादिक देव झुकते हैं तथा जो स्वयं मुक्ति को प्राप्त होता है, जिसको न क्षुधा सताती है और न प्यास लगती है, जो न भय से व्याप्त है और न इन्द्रियों के पराधीन है। जन्म-मरण एवं जरा की बाधा से जो रहित हो गये हैं। जिसके न विषाद है और न विस्मय है तथा न आठ प्रकार का मद है। जो राग, मोह एव विरोध से रहित हैं। न जिसको शारीरिक व्याधियां सताती हैं और चिन्ता जिसके पास भी नहीं आ सकती है :—

जगत में सो देवन को देव।
जासु चरन परसै इन्द्रादिक होय मुकति स्वयमेव॥ १॥

जो न छुधित न तृषित न भयाकुल, इन्द्री विषय न वेश ।
जन्म न होय जरा नहि व्यापै, मिटी मरन की टेव ॥ २ ॥
जाके नहि विषाद नहिं विस्मय, नहिं आठों अहमेव ।
राग विरोध मोह नहि जाकें, नहि निद्रा परसेव ॥ ३ ॥
नहि तन रोग न श्रम नहीं चिंता, दोष अठारह मेव ।
मिटे सहज जाके ता प्रभु की, करत 'बनारसि' सेव ॥ ४ ॥

'भक्त भगवान से मुक्ति चाहता है',—यही उसका अन्तिम लक्ष्य है। लेकिन बार बार याचना करने के पश्चात् भी जब उसे कुछ नहीं मिलता है तो भक्त प्रभु को बड़े ही सुन्दर शब्दों में उलाहना देता हुआ कहता है कि वे 'दीन दयाल' कहलाते हैं। स्वयं तो मोक्ष में विराजमान हैं तथा उनके भक्त इसी संसार-जाल में फंस रहे है। तीनों काल भक्त प्रभु का स्मरण करता है लेकिन फिर भी वे महाप्रभु उसे कुछ नहीं देते है। भक्त एवं प्रभु के इस संवाद को स्वयं कवि 'द्यानतराय' के शब्दों में पढ़िये :—

तुम प्रभु कहियत दीन दयाल ।
आपन जाय मुकति में बैठे, हम जु रुलत जग जाल ॥
तुमरो नाम जपैं हम नीके, मन वच तीनों काल ।
तुम तो हमको कछु देत नहि, हमरो कौन हवाल ॥

अन्त में कवि फिर यही याचना करते हुये लिखता है :—

'द्यानत' एक बार प्रभु जगतैं, हमको लेहु निकाल ।

'जगतराम' ने भी प्रभु से अपने चरणों के समीप रखने की प्रार्थना

की है :—

> करो अनुग्रह अब मुझ ऊपर, मेटो अब उरझेरा ।
> 'जगतराम' कर जोड वीनवै, राखो चरणन चेरा ॥

लेकिन कवि दौलतराम ने स्पष्ट शब्दों में भव पीर को हरने की प्रार्थना की है। उन्होंने कहा है "मैं दुख तपित दयामृत सागर लखि आयो तुम तीर, तुम परमेश मोक्ष-मग दर्शक, मोह दवानल नीर ॥"

आध्यात्मिक पद

पं॰ रूपचन्द, बनारसीदास, जगतराम, भूधरदास, द्यानतराय एवं बुधदास आदि कुछ ऐसे कवि हैं जिनके अधिकांश पद किसी न किसी रूप में अध्यात्म विषय से ओत-प्रोत हैं। ये कविगण आत्मा एवं परमात्मा के गुणगान में ऐसे सने हुये हैं कि उनका प्रत्येक शब्द आध्यात्मिकता की छाप लेकर निकला है। ऐसे आध्यात्मिक पदों को पढ़ने से हृदय को शान्ति मिलती है एवं आत्म-सुख का अनुभव होने लगता है।

आत्मा की परिभाषा बतलाते हुये 'जगतराम' ने कहा है कि आत्मा न गोरा है न काला है वह तो ज्ञानदर्शन मय चिदानन्द स्वरूप है तथा वह सभी से भिन्न है :—

> नहिं गोरो नहिं कारो चेतन, अपनो रूप निहारो ।
> दर्शन ज्ञान मई चिन्मूरत, सकल करम ते न्यारो रे ॥

'द्यानतराय' ने दर्पण के समान चमकती हुई आत्म ज्योति को

जानने के लिये कहा है। यह 'आत्म ज्योति' सभी को प्रकाशित करती है-

जैसी उज्वल आरसी रे तैसी आतम जोत।
काया करमनसौं जुदी रे, सबको करै उदोत॥

आत्मा का रूप अनोखा है तथा वह प्रत्येक के हृदय में निवास करता है वह दर्शन ज्ञानमय है तथा जिसकी उपमा तीनों लोकों के किसी पदार्थ से नहीं दी जा सकती है :

आतम रूप अनुपम है घट मांहि विराजै।
केवल दर्शन ज्ञान में थिरता पद छाजै हो।
उपमा को तिहुं लोक में, कोउ वस्तु न राजै हो॥

'कवि द्यानतराय' ने आत्मा को पहिचान करके ही कहा है कि सिद्धक्षेत्र में विराजमान मुक्तात्मा का स्वरूप हमने भली प्रकार जान लिया है :—

अब हम आतम को पहिचाना
जैसे सिद्ध क्षेत्र में राजै, तैसा घट में जाना

'कवि बुधजन' ने भी आत्मा को देखने की घोषणा करदी है। उनके अनुसार आत्मा रूप, रस, गंध, स्पर्श से रहित है तथा ज्ञान दर्शन मय है। जो नित्य निरंजन है। जिसके न क्रोध है न माया है एवं न लोभ न मान है।

अब हम देखा आतम राम।
रूप परस रस गंध न जामें, ज्ञान दरश रस माना।

नित्य निरंजन जाके नाहीं, क्रोध लोभ छल कामा ॥

'कवि भागचन्द' ने तो स्पष्ट शब्दों में कहा है कि जब आत्मा की झलक मिल जाती है तब और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। आत्मानुभव के आगे सब नीरस लगने लगता है तथा इन्द्रियों के विषय अच्छे नहीं लगते हैं। गोष्ठी एव कथा में कोई उत्साह तथा जड पदार्थों से कोई प्रेम नहीं रहता :—

जब आतम अनुभव आवै, तब और कछु ना सुहावें।
रस नीरस हो जात ततछिण, अच्छ विषय नही भावै ॥
गोष्ठी कथा कुतूहल विघटे, पुद्गल प्रीति नशावै ॥
राग दोष जुग चपल पक्षयुत मनपक्षी मर जावै।
ज्ञानानन्द सुधारस उमगै, घट अन्तर न समावै।
भागचन्द ऐसे अनुभव को, हाथ जोरि सिर नावै ॥

'आध्यात्मिकता की उत्कर्ष-सीमा का नाम रहस्यवाद है' इस सग्रह के कुछ पदों में तो अध्यात्म अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया है ऐसे कुछ पद रहस्यवाद की कोटि में रखे जा सकते हैं। कविवर 'बुधजन' ने होली के प्रसंग को लेकर अध्यात्मवाद का अच्छा चित्र उतारा है। आज आत्मा में होली खेलने की उत्कृष्ट इच्छा हो रही है:— एक ओर हर्षित होकर 'आत्माराम' आये दूसरी ओर 'सुबुद्धि' रूपी नारी आयी। दोनों ने लोकलाज एवं अपनी काण खोकर 'ज्ञान' रूपी गुलाल से उसकी झोली भर दी। 'सम्यक्त्व' रूपी केशर का रंग बनाया तथा 'चारित्र' की पिचकारी छोडी गयी। जो भी बुद्धिमान व्यक्ति आत्मा की इस होली को देखने आये वे भी भीग गये :—

निजपुर में आज मची होरी।

उमंगि चिदानंदजी इत आये, इत आई सुमती गोरी ॥
लोकलाज कुलकानि गमाई, ज्ञान गुलाल भरी झोरी ।
समकित केसर रंग बनायो, चारित की पिची छोरी ॥
देखन आये 'बुधजन' भीगे, निरख्यौं ख्याल अनोखोरी ॥

'भूधरदासजी' ने भी उक्त भावों को ही निम्न पद में व्यक्त किया है :—

होरी खेलूंगी घर आये चिदानन्द ॥
शिशर मिथ्यात गई अब, आइ काल की लब्धि बसंत ।
पीय संग खेलनि कौं, हम सइये तरसी काल अनन्त ॥
भाग जग्यो अब फाग रचानौ, आयो विरह को अंत ।
सरधा गागरि में रुचि रूपी केसर घोरि तुरन्त ।
आनन्द नीर उमग पिचकारी छोडूंगी नीकी भंत ॥

'बख्तराम' आत्मा को समझा रहे हैं कि उसे 'कुमति' रूपी पर-नारी से स्नेह नहीं करना चाहिये । 'सुमति' नामक सुलक्षणा स्त्री से तो वह आत्मा प्रेम नहीं करता है, इतना ही नहीं उस श्रेष्ठ नारी से रुष्ट भी रहता है :—

चेतन वरज्यो न मानै उरझ्यो कुमति पर नारी सौं ।
सुमति सी सुखिया सौं नेह न जोरत,
रुसि रह्यो वर नारिसौं ॥

इस प्रकार इन कवियोंने आत्मा का स्पष्ट रूप से वर्णन किया है

जो किसी भी पाठक के सहज ही समझ में आ सकता है आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति हैं लेकिन वह अपनी शक्ति को पहिचान नहीं पाता है। इसके लिये इन कवियों ने अपनी आत्मा को सम्बोधित करते हुए भी कितने ही पद लिखे हैं। कवि 'रूपचन्द' ने एक पद में कहा है:–
हे जीव! तू व्यर्थ ही में क्यों उदास हो रहा है? तू अपनी स्वाभाविक शक्तियों को सम्भाल करके मोक्ष क्यों नहीं चला जाता? एक दूसरे पद में उसी कवि ने लिखा है कि हे जीव! तू पुद्गल से क्यों स्नेह बढ़ा रहा है। अपने विवेक को भूलकर अपना २ ही करता रहता है :—

चेतन काहे कौं अरसात।
सहज सकित सम्हारि आपनी, काहे न सिवपुर जात।

* * * * * *

चेतन परस्यौं प्रेम बढ्यो।
स्वपर विवेक बिना भ्रम भूल्यो, में में करत रह्यो।

एक अन्य पद में भी इस जीवात्मा को कवि गंवार कह कर सम्बोधित करता है तथा उसे शक्ति सम्हाल कर कुछ उद्यम करने के लिये प्रोत्साहित करता है।

बनारसीदास जी ने इस जीवात्मा को मौंदू कह कर सम्बोधित किया है तथा उसे हृदय की आंखें न खोलने के लिये काफी फटकारा है। वे कहते हैं कि यथार्थ में जो वस्तु इन आंखों से देखी जाती है उससे इस जीव का कुछ भी सम्बन्ध नहीं।

मौंदू भाई देखि हिये की आंखैं।
जो करपै अपनी सुख संपति, भ्रम की संपति नाखैं॥

* * * * * *

मौंदू भाई समुझ सबद यह मेरा।
जो तू देखैं इन आंखिन सौं, तामैं कछू न तेरा।

बनारसीदास आगे चल कर कहते हैं कि यह जीव सदा अकेला है। यह जो कुटुंब उसे दिखाई देता है वह तो नदी नाव के संयोग के समान है। यह सारा ससार ही असार है तथा जुगनू के खेल (चमक) के समान है। सुख सम्पत्ति तथा सुन्दर शरीर जल के बुदबुदे के समान थोड़े समय में नष्ट हो जाता है।

चेतन तू तिहुँकाल अकेला।
नदी नाव संजोग मिले, ज्यों त्यों कुटंब का मेला।
यह ससार असार रूप सब, ज्यों पेखन खेला।
सुख सम्पत्ति शरीर जल बुदबुद, विनसत नाहीं वेल।

लेकिन जगतराम ने इसे मौंदू न कहकर सयाना कहा है तथा प्यार दुलार के साथ जड चेतन का सम्बन्ध बतलाया है।

रे जिय कौन सयाने कीना।
पुदगल के रस भीना॥
तुम चेतन ये जड जु विचारा।
काम भया अति हीना॥
तेरे गुन दरसन ग्यानादिक।
मूरति रहे प्रवीना॥

आत्मा की वास्तविक स्थिति बतला कर तथा भला बुरा कहने के पश्चात् उसे सुकृत्य करने के लिये संसार का स्वरूप समझाते हैं तथा कहते है कि यह ससार घन की छाया के समान है। स्त्री, पुत्र, मित्र, शरीर एव सम्पत्ति तो कर्मोदय से एकत्रित हो गये हैं। इन्द्रियों के विषय उस बिजली की चमक के समान है जो देखते २ नष्ट हो जाती है।

जगत सब दीखत धन की छाया।
पुत्र कलत्र मित्र तन सम्पत्ति,
उदय पुदगल जुरि आया।
इन्द्रिय विषय लहरि तडता है,
देखत जाय विलाया ॥

कवि फिर समझाते हैं कि यह संसार तो असार है ही पर इस प्रकार का (मानव) जन्म भी बार २ नहीं मिलता। यह मनुष्य भव बड़ी ही कठिनता से प्राप्त हुआ है और वह चिन्तामणि रत्न के समान है जिसको यह अज्ञानी जीव (कौवे के उड़ाने हेतु) सागर में डाल देता है। इसी तरह यह उस अमृत के समान है जिसे यह प्राणी पीने के बजाय पांव धोने के काम में लेता है। कवि द्यानतराय ने उक्त भावों को सुन्दर शब्दों में लिखा है उन्हें पढिये :—

नहिं ऐसो जनम बारम्बार।
कठिन कठिन लह्यो मानुष भव,
विषय तजि मतिहार।
पाय चिन्तामन रतन शठ,
छिपत उदधि मझार ॥

पाय अमृत पांव धोवे,
कहत सुगुरु पुकार ।
तजो विषय कषाय 'द्यानत'
ज्यों लहो भव पार !!

और जब इस प्राणी को आत्मा, परमात्मा, संसार तथा मनुष्य जन्म के बारे में इतना समझाते हैं तो उसमें कुछ सुबुद्धि आती है और वह अपने किये हुये कार्यों की आलोचना करने लगता है तथा उसे अनुभव होने लगता है कि उसने यह मनुष्य भव व्यर्थ ही में खो दिया। जप, तप, व्रत आदि कुछ भी नहीं किये और न कुछ भला काम ही किया। कृपण होकर दिन प्रतिदिन अधिक जोड़ने में ही लगा रहा, जरा भी दान नहीं किया। कुटिल पुरुषों की संगति को अच्छा समझा तथा साधुओं की संगति से दूर रहना ही ठीक समझा। कुमुदचन्द्र के शब्दों में पढ़िये :—

मैं तो नरभव बाधि गमायो ॥
न कियो तप जप व्रत विधि सुन्दर
काम भलो न कमायो ॥

* * * * * *

कृपण भयो कछु दान न दीनों
दिन दिन दाम मिलायो ।

* * * *

विटल कुटिल शठ संगति बैठो,
साधु निकट विघटायो

वह फिर सोचता है कि यह जन्म बेकार ही चला गया। धर्म अर्थ एवं काम इन तीनों में से एक को भी उसने प्राप्त नहीं किया।

जनमु अकारथ ही जु गयौ ।
धरम अरथ काम पद तीनौं,
एकौ करि न लयौ ॥

पश्चात्ताप के अतिरिक्त उसे यह दुःख होता है कि वह अपने वास्तविक घर कभी न आया। दौलतराम कहते हैं कि दूसरों के घर फिरते हुये बहुत दिन बीत गये और वहां वह अनेक नामों से सम्बोधित होता रहा। दूसरे के स्थान को ही अपना मान उसके साथ ही लिपटा रहा है वह अपनी भूल स्वीकार कर रहा है लेकिन अब पश्चात्ताप करने से क्या प्रयोजन। ऐसे प्राणियों के लिये दौलतराम ने कहा है कि अब भी विषयों को छोड़कर भगवान की वाणी को सुनो और उस पर आचरण करो :—

हम तो कबहू न निज घर आये ।
पर घर फिरत बहुत दिन बीते,
नाम अनेक धराये ।
पर पद निज पद मान मगन ह्वै
पर परणति लिपटाये ॥

* ● * ● * *

यह बहु भूल भई हमरी फिर,
कहा काज पछताये ।
'दौल' तजो अजहूं विषयन को,
सतगुरु बचन सुनाये ॥

श्रृंगार एवं विरहात्मक पद

जैन साहित्य में ही नहीं किन्तु सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में नेमिनाथ का तोरण द्वार पर आकर वैराग्य धारण कर लेने की अकेली घटना है। इसी घटना को लेकर जैन कवियों ने पयाप्त साहित्य लिखा है। इस सम्बन्ध में उनके कुछ पद भी काफी संख्या में मिलते हैं जिनमें से थोड़े पदों का प्रस्तुत सग्रह में संकलन किया गया है। यद्यपि ये अधिकांश पद हैं किन्तु कहीं कहीं उनमें शृंगार रस का वर्णन भी मिलता है।

नेमिनाथ २२ वें तीर्थकर थे। उनका विवाह उग्रसेन राजा की राजकुमारी राजुल से होना निश्चित हुआ था। जब नेमिनाथ तोरण द्वार पर आये तो राजप्रासाद के निकट एकत्रित बहुत से पशुओं को देखा। पूछने पर मालूम हुआ कि सभी पशु बरातियों के भोजन के लिए लाये गये हैं। परम अहिंसक नेमिनाथ यह हिंसा कार्य कब सहने वाले थे। वे संसार से उदासीन हो गये और वैराग्य धारण करके पास ही में जो गिरिनार पर्वत था उस पर जाकर तपस्या करने लगे। नेमिनाथ के तोरण द्वार पर आकर वैराग्य धारण कर लेने के पश्चात् जब राजुल के माता पिता ने अन्य राजकुमार के साथ उसका विवाह करने का प्रस्ताव रखा तो राजुल ने प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया।

राजुल नेमि के विरह से संतप्त रहने लगी। पहिले तो उसे यही समझ में नहीं आया कि वे गिरिनार क्यों कर चले गये तथा किस प्रकार उसके पवित्र प्रेम को ठुकरा कर वैराग्य धारण कर लिया।

नेमि तुम कैसे चले गिरिनारि।
कैसे विराग धर्‌यो मन मोहन,
प्रीत विसारि हमारी ।'

उसकी दृष्टि में पशुओं की पुकार तो एक बहाना था वास्तव में तो उन्होंने मुक्ति रूपी वधू को वरण करने के लिये राजुल जैसी कुमारी को छोड़ा था—

मन मोहन मडप ते बोहरे,
पसु पोकार बहाने ।

* * * * *

रतन कीरति प्रभु छोरी राजुल,
मुगति बधू विरमाने ॥

नेमि के विरह में राजुल को चन्दन एवं चन्द्रमा दोनों ही विपरीत प्रभाव दिखाते हैं। कोयल एव पपीहा के सुन्दर बोल भी विरहाग्नि को भड़काने वाले मालूम होते हैं इसलिए वह सखियों से नेमि से मिलाने की प्रार्थना करती है ।

सखि को मिलावो नेमि नरिंदा ।
ता बिन तन मन योवन रजत है,
चारु चन्दन अरु चन्दा ।
कानन भुवन मेरे जीया लागत,
दुसह मदन का फंदा ॥

* * * *

सखी री ! सावनि घटाई सतावें ।
रिम झिम बूंद बदरिया बरसत,
नेमि नेरे नहि आवे ।
कूंजत कीर कोयला बोलत,
पपीया बचन न भावे ।

कवि शुभचन्द्र ने तो नेमिनाथ की सुधि लाने के लिए सखियों को उनके पास भेज भी दिया । वे जाकर राजुल की सुन्दरता एवं उसके विरह की गाथा भी गाने लगी लेकिन सारा सन्देशा यों ही गया और अन्त में उन्हे निराश हो वापिस आना पड़ा—

कोन सखी सुध लावे श्याम की ।
कोन सखी सुध लावे ॥

* * * *

सब सखी मिल मनमोहन के ढिग ।
जाय कथा जु सुनावे ॥
सुनो प्रभु श्री 'कुमुदचन्द्र' के साहिब ।
कामिनी कुल क्यों लजावे ॥

विरह में राजुल इतनी अधिक पागल हो जाती है तथा वह अपनी सखियों से कहने लगती है कि अब तो नेमि के विना वह एक क्षण भी नहीं रह सकती । उनकी प्रीति को वह भुलाना चाहती है तथा क्षण क्षण में उसका शरीर शुष्क होता जाता है । उनके वियोग में न भूख लगती है और न प्यास । रात्रि को नींद भी नहीं आती है तथा उसका चिन्तन

करते करते ही प्रभात हो जाता है। कवि 'कुमुदचन्द्र' के शब्दों में देखिये—

सखी री अबतो रह्यो नहिं जात।
प्राणनाथ की प्रीत न विसरत,
क्षण क्षण छीजत जात (गात)।
नहि न भूख नहीं तिसु लागत,
घरहि घरहि मुरझात।

* * * *

नहिं नींद परती निशिवासर,
होत विसरत प्रात।

राजुल की इसी भावना को 'जगतराम' ने उन्हीं शब्दों में लिखा है—

सखी री बिन देखे रह्यो न जाय।
ये री मोहि प्रभु को दरस कराय॥

राजुल नेमि से प्रार्थना करती है कि वे एक घड़ी के लिये ही घर आ जावे तथा प्रातः होते ही चाहे वे वैराग्य धारण कर लेवें। 'रत्नकीर्ति' ने इस पद में राजुल की सम्पूर्ण इच्छाओं का निचोड़ कर रख दिया है—

नेमि तुम आओ घरिय घरे,
एक रयनि रही प्रातः पियारे।
बोहरी चारित धरे॥

'भूधरदास' ने भी नेमि के बिना राजुल का हृदय कितना गर्म रहता है इन्हीं भावों को अपने पद में व्यक्त किया है।

नेमि बिना न रहै मेरो जियरा।
'भूधर' के प्रभु नेमि पिया बिन,
शीतल होय न राजुल हियरा।

जब किसी भी तरह नेमि प्रभु वैराग्य छोड़ कर राजुल की सुधि लेने नहीं आते हैं तब वह अपना सन्देशा उनके पास भेजती है तथा कहती है कि वे थोड़ी देर ही उसका इन्तजार करें क्योंकि वह भी उन्हीं के साथ तपस्या करने के लिये जाना चाहती है—

म्हारा नेम प्रभु सौं कहज्यो जी।
म्हे भी तप करवा संग चालां,
प्रभु घडियक उभा रहिज्यो जी॥

राजुल की प्रार्थना करते २ जब सारी आशायें टूट जाती हैं तब अपनी सखियों से उसी स्थान पर जहां नेमि प्रभु ध्यान कर रहे थे ले चलने की प्रार्थना करती है। बख्तराम ने राजुल के असीम हृदय को टटोल कर मानो यह पद लिखा है—उसका रसास्वादन स्वयं पाटक करें—

सखी री जहां लै चल री।
अरी जहां नेमि धरत है ध्यान॥
उन बिन मोहि सुहात न पल हूं।
तलफ़त हैं मेरे प्राण॥

कुटुम्ब काज सब लागत फीके।
नैक न भावत आन ॥
अब तो मन मेरो प्रभु ही के।
लग्यो है चरन कमलान ॥
तारन तरन विरद है जिनको।
यह कीनी परमान ॥
बख्तराम हमकूं हूँ तारोगे।
करुणा कर भगवान ॥

इस प्रकार राजुल नेमि का यह वर्णन अध्यात्म एवं वैराग्य के गुण गाने वाले साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक पद

भक्ति एवं अध्यात्म के अतिरिक्त बहुत से पदों में दार्शनिक चर्चा की गयी है क्योंकि दर्शन का धर्म से घनिष्ट सम्बन्ध है तथा धर्म की सत्यता दर्शन-शास्त्र द्वारा सिद्ध की जाती रही है। जैन दर्शन के अनुसार आत्मा अनादि है पुद्गल कर्मों के साथ रहने से इसे ससार का परिभ्रमण करना पड़ता है। किन्तु यदि इनसे छुटकारा मिल जावे तो फिर दुबारा शरीर धारन करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। जैन दर्शन के मुख्य सिद्धान्तों को लेकर रचे हुये बहुत से पद इस सग्रह में मिलेंगे। अनेकान्त द्वारा वस्तु के स्वभाव को सम्यक् रीति से जानाजा सकता है। इसी का वर्णन करते हुये 'छत्र' कवि ने अनेकान्त के रहस्य को अपने पदों में समझाया है। आत्मा का वास्तविक ज्ञान होने के पश्चात्

इस जीवात्मा के जो विचार उत्पन्न होते हैं—उनको निम्न पद में देखियेः—

अब हम अमर भए न मरेंगे।
तन कारन मिथ्यात दियो तजि, क्यों करि देह धरेंगे ॥
उपजै मरै काल तैं प्रानी, तातैं काल हरेंगे।
राग दोष जग बंध करत है, इनको नाम करेंगे ॥
देह विनासी मैं अविनासी, भेद ज्ञान करेंगे।
नासी जासी हम थिरवासी, चोखे हो निखरेंगे ॥

'रूपचन्द' ने–जीव का आत्मा से स्नेह लगाने का क्या फल होता है इसका आलंकारिक रीति से वर्णन किया है। जीवात्मा एकाकार हो जाता है तो वह अपने वास्तविक स्वरूप को भी प्राप्त कर लेता है।

चेतन सौं चेतन लौं लाई।
चेतन अपनु सु फुनि चेतन, चेतन सौं बनि आई।

* * * * * *

चेतन मौन बनै अब चेतन, चेतन मौं चेतन ठहराई।
'रूपचन्द' चेतन भयो चेतन, चेतन गुन चेतनमति पाई ॥

और जब आत्मा का वास्तविक स्वरूप जान लिया जाता है तो वह प्राणी किसी का कुछ अहित करना नहीं चाहता। 'बनारसीदास' के शब्दों में इस रहस्य को समझिये :—

हम बैठे अपने मौन सौं।
दिन दस के मिहमान जगत जन, बोलि बिगारे कौन सौं।

* * * * * *

रहै अथाय पाप सुख सम्पत्ति, को निकसैं निजमौनसौं।
सहज भाव सद् गुरु की संगति, सुरझै आवागौनसौं॥

'बनारसीदास' ने एक दूसरे पद में जीव के विभिन्न रूपों के सम्बन्ध का वर्णन किया है। यह जीव जिस समय जिस रस में लिप्त हो जाता है वहां वह उसी रूप का बन जाता है। 'अस्ति' और 'नास्ति' तथा एक और अनेक रूपों वाला बनने में इसे कुछ भी समय नहीं लगता। लेकिन इतना होते हुये भी यह आत्मा जैसा का तैसा ही रहता है इसके वास्तविक रूप में कोई अन्तर नहीं आता :—

मगन ह्वै आराधो साधो, अलख पुरुष प्रभु ऐसा।
जहाँ जहाँ जिस रस सौं राचै, तहा तहां तिम भेसा॥

* * * * * *

नाही कहत होइ नाहीं सा, है कहिये तो हैसा।
एक अनेक रूप है वरता कहीं कहां लौ कैसा॥

'तीर्थङ्करों' की वाणी को चार अनुयोगों में विभाजित किया जाता है। ये चारों वेदों के समान है। 'जगतराम' ने इन चारों अनुयोगों का वेदों के रूप में वर्णन किया है:—

तीर्थकरादि महापुरुषनिकी, जामे कथा सुहानी।
प्रथम वेद यह भेद जाय कौ, सुनत होय अछ हानी॥
जिनकी लोक अलोक काल जुत, च्यारौं गति सहनानी।
दुतिय वेद इह भेद सुनत होय, मूरख हू सरधानी॥

मुनि श्रावक आचार बतावत, तृतीय वेद यह ठानी ।
जीव अजीवादिक तत्वनि की, चतुर्थ वेद कहानी ॥

जैन कवि 'मोर मुकुट पीताम्बर सोहे गल वैजन्ती माल' के स्थान पर 'ता जोगी चित लावो मेरे' का उपदेश देते हैं। उसने योगी—'संयम' की डोरी बनाकर 'शील' की लंगोटी बांध रखी है तथा उसमें संयम एवं शील एकाकार होकर घुलमिल गये हैं। गले में ज्ञान के मणियों की माला पड़ी हुई है। इस पद की कुछ पंक्तियां देखिये:—

ता जोगी चित लावो मेरे बाला ।
संयम डोरी शील लंगोटी, घुल घुल गांठ लगाने मोरे बाला ॥
ग्यान गुदड़िया गल बिच डाले, आसन दृढ़ जमावे ।
'अलखनाथ' का चेला होकर, मोह का कान फड़ावे. मोरे बाला ॥
धर्म शुक्ल दोऊ मुद्रा डाले, कहत पार नहीं पावे मोरे बाला ॥

एक दूसरे पद में 'दौलतराम' ने भगवान की मूर्त्ति का जो चित्र खींचा है उससे तीर्थंकरों की ध्यान-मुद्रा एवं उसीके समान बनी हुई मूर्त्तियों की स्पष्ट झलक मिल जाती है। भगवान ने हाथ पर हाथ रख कर 'थिर' आसन लगा रखा है तथा वे संसार के समस्त वैभव को धूलि के समान छोड़कर परमानन्द पद आत्मा का ध्यान कर रहे हैं:—

देखो जी आदीश्वर स्वामी कैसा ध्यान लगाया है ।
कर-ऊपर-कर सुभग विराजै आसन थिर ठहराया है ।
जगत विभूति भूति सम तजि कर निजानन्द पद ध्याया है ।

'सामाजिक वर्णन'

जैन कवियों ने अपने पदों में तत्कालीन समाज की अवस्था एवं रीति रिवाजों का कोई विशेष वर्णन नहीं किया है। वास्तव में उन्हें तो वैराग्य, अध्यात्म एवं भक्ति की 'त्रिवेणी' बहानी थी इसलिये वे अन्य विषयों की ओर ध्यान दे ही नहीं सके लेकिन फिर भी कहीं-कहीं एक दो कवियों के पदों में तत्कालीन समाज का कुछ चित्रण मिलता है। 'बनारसीदास' ने अपने एक पद-"कित गये पंच किसान हमारे" में अपने समय के कृषक समाज का संक्षिप्त रूप में चित्र खींचा है।- जिससे पता चलता है कि किसानों के साथ अन्य लोग भी खेती कर लिया करते थे लेकिन खेती जब अच्छी नहीं होती थी तो वे किसानों को छोड़कर अलग हो जाया करते थे और फिर सरकार किसानों को पकड़ लिया करती थी और उन्हें सताया करती थी। इसको कवि के शब्दों में देखिये—

कित गये पंच किसान हमारे ॥
बोयो बीज खेत गयो निरफल, भर गये खार पनारे।
कपटी लोगों से साझा कर, कर हुये आप विचारे ॥
आप दिवाना गह गह बैठो, लिख लिख कागद डारे।
बाकी निकसी पकरे मुकद्दम, पांचो हो गये न्यारे ॥

बनारसीदास के बहुत कुछ उक्त भावों को लेकर ही घासीराम ने भी एक ऐसा ही पद लिखा है जिसमें अप्रत्यक्ष रूप से वहां के प्रतिदिन के दुर्व्यवहार के कारण नगर में न रहना ही उत्तम समझा गया है।

इस नगरी में किस विधि रहना,
नित उठ तलब लगावेरी रहैना।

इसी प्रकार अन्य कवियों के पदों में भी जहाँ तहाँ सामाजिक चित्रण मिलता है।

भाषा शैली एवं कवित्व

भाषा : इन कवियों की पद रचना का उद्देश्य वैराग्य एवं अध्यात्म का अधिक से अधिक प्रचार करना था इसलिये ये पद भी जनता की सीधी सादी भाषा में लिखे गये। इन कवियों की किसी विशेष भाषा में दिलचस्पी नहीं थी किन्तु सम्वत् १६५० तक हिन्दी का काफी प्रचार हो चुका था तथा वही बोलचाल की भाषा बन गई थी इसलिये इन कवियों ने भी उसी भाषा में अपने पद लिखे। कुछ विद्वान कभी कभी जैन कवियों के भाषा का परिष्कृत न होने की शिकायत भी करते रहते हैं लेकिन यदि पदों की भाषा देखी जावे तो वह पूर्णतः परिष्कृत भाषा है। इनके पदों में यद्यपि अपने अपने प्रदेशों की बोलियों का व्यवहार भी हो गया है। रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र बागड एवं गुजरात प्रदेश में विहार करते थे इसलिये इनके पदों में कहीं कहीं गुजराती का प्रभाव भी आ गया है। इसी तरह रूपचन्द, बनारसीदास, भूधरदास, द्यानतराय, जगतराम आदि विद्वान आगरे के रहने वाले थे इसलिये इनके पदों में उस प्रदेश की बोली के शब्दों का प्रयोग हुआ है जो स्वाभाविक भी है। बनारसीदास ने अपने अर्द्धकथानक की भाषा को मध्य प्रदेश की बोली कहा है। इस प्रकार ये सभी पद बोल चाल की भाषा में लिखे हुये हैं,

हां, उनमें कहीं कही गुजराती, ब्रज एवं राजस्थानी का प्रभाव झलकता है। राजस्थानी भाषा के बोलचाल के शब्द जैसे जामण (१०४), थांकौं (१०२, हीयौ (३०), दरसण (१३), म्हे भी (२०३), उभा रहिज्यो (२०३), थाने(२०३) कांई करसी (२४०) आदि कितने ही शब्दों का यत्र तत्र प्रयोग हुआ है इसी तरह नेक (२०५) जैहे (८०) जाके, (११३) कितउ (१४४) कितते (२१२) आदि ब्रज भाषा के शब्दों का कहीं कहीं प्रयोग मिलता है।

कुछ पदों पर पंजाबी भाषा का भी प्रभाव है। सबंध की 'दा' विभक्ति जोड़ कर हिन्दी के शब्दों को पजाबी रूप देने की जो प्रथा मध्य युग में प्रचलित थी, उसको जैन कवियों ने भी अच्छी तरह अपनाया। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं —

१. सुपनेदा संसार वन्या है हटवाडेदा मेला (३४८)

२. अणी में निस दिन ध्यावांणी, यदि तू साडी रहदी मन में,
तुजि विन मनु और न दिसवा, चित रहदा दरसण में
(२२६)

३. इन करमों ते मेरा जीव डरदा हो (१६८)

४. हो मन मेरा तू धरम ने जांणदां।

शैली

जैन कवियों की वर्णन शैली अपनी ही एक शैली है। कबीर, मीरा, सूरदास, तुलसीदास, नानक आदि सभी कवि साधु थे और साधु होकर आत्मा, परमात्मा, भगवद् भक्ति तथा जगत की असारता की बात कही

लेकिन इस संग्रह में आये हुये रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द आनन्द घन, आदि को छोड़कर शेष सभी कवि गृहस्थ थे फिर भी जिस शैली में उन्होंने पद लिखे हैं वह सब साधुओं के कहने की शैली है। गृहस्थ होते हुये भी वे वैराग्य तथा आत्मानुभव में इतने मस्त हो गये थे कि पदों में उनकी आत्मा की पुकार ही व्यक्त होती थी। उन्होंने जो कुछ कहा है वह बिना किसी लाग लपेट के तथा निर्भिक होकर कहा है। जगत को जो भक्ति एव वैराग्य का उपदेश दिया है उसमें किंचित अयथार्थ नहीं है तथा वह आत्मा तक सीधी चोट करने वाला है। रूपचन्द, बनारसीदास, भूधरदास, द्यानतराय, छत्रदास तथा दौलतराम सभी सत कवि थे इनको किसी का डर नहीं था तथा वे गृहस्थ होते हुए भी साधु जीवन व्यतीत करने वाले थे। उन्होंने कितने ही पद तो अपने को ही सम्बोधित करके कहे हैं। बनारसीदास ने 'भौंदू' शब्द का कितने ही पदों में प्रयोग किया है जो उनके स्वयं के लिये भी लागू होता था, क्योंकि उन्हें सदा ही जीवन में असफलताओं का सामना करना पडा। वे न तो पूर्ण व्यापारी बन सके और न साधु जीवन ही धारण कर सके। इस तरह जैन कवियो की वर्णन शैली में स्पष्टता एव यथार्थता दिखाई देती है। उसमें न पांडित्य का प्रदर्शन है और न अलंकारों की भरमार। शब्दाडम्बरों से वह एक दम परे है उन्होंने गागर में सागर भरा है।

काव्यत्व—लेकिन वर्णन शैली सरल तथा पांडित्य प्रदर्शन से रहित होने पर भी इन पदों में काव्यत्व के दर्शन होते हैं। इन पदों के पढ़ने से ऐसा मालूम नहीं होता कि ये कवि अनपढ़ थे और उन्होंने पद न लिखकर केवल तुकबन्दी कर दी है। सरल एवं बोलचाल के

शब्दों का प्रयोग करके भी उन्होंने पदों को काव्यत्व से वंचित नहीं रखा है। इन कवियों ने लोक प्रचलित भाषा के रूप का इस प्रकार प्रयोग किया है जिससे भाषा की स्वाभाविकता में किंचित भी कमी नहीं हुई है। उन्होंने प्रसाद एवं माधुर्य गुण युक्त पद-योजना पर अधिक ध्यान दिया है। किसी २ पद में तो एक ही शब्द का प्रयोग किया है लेकिन उसके अर्थ विभिन्न हैं। कुमुदचन्द्र का 'राजुल गेहे नेमि आय, हरिवदनी के मन भाय' (१०) तथा रूपचन्द का 'चेतन सौं चेतन लौं लाई' इसके सुन्दर उदाहरण हैं। प्रथम पद में हरि शब्द तथा दूसरे पद में 'चेतन' शब्द विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं। कविता वह जीवन तत्व है जिसमें साधारण अनुभूति को भी असाधारण व्यक्तीकरण का बल मिलता है तथा जिसमें भावना एवं कल्पना के मिश्रण में सरसता का सन्निवेश किया जाता है। जैन कवियों की इन पदों में अपनी आत्मानुभूति के आधार पर उनका सुन्दर शब्द विन्यास पदों को पूर्णतः सरसता और कोमलता से सजा देता है।

पूर्ववर्ती आचार्यों का प्रभाव

जैन अध्यात्म के प्रस्तुतकर्ता आ० कुन्दकुन्द, उमास्वाति, योगीन्द्र गुणभद्राचार्य, अमृतचन्द्र, शुभचन्द्र, मुनिरामसिंह आदि विद्वान हो चुके हैं जिन्होंने भगवान महावीर के पश्चात् अध्यात्म की अबाधित धारा बहाई और यही कारण है कि इन के बाद होने वाले प्रायः सभी कवि पक्के आध्यात्मी बने रहे और उन्होंने अपने साहित्य में वही सन्देश प्रचारित किया जो पूर्ववर्ती आचार्यों ने किया था। इन

आचार्यों ने आत्मा एवं परमात्मा का जो रूप प्रस्तुत किया है उसमें संकीर्णता, कट्टरता तथा अन्य धर्मों के प्रति जरा भी विद्वेष की गन्ध नहीं मिलती। इनका लक्ष्य मानव मात्र को सन्मार्ग पर लगा कर उसके जीवन को उच्चस्तर पर उठाना था। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्-चारित्र मोक्ष प्राप्ति का उपाय है। जीव आत्मा का ही नामान्तर है जो आचार्य नेमिचन्द्र के शब्दों में उपयोगमय है, अमूर्त है, कर्त्ता है, स्वदेहप्रमाण है, भोक्ता है, संसारी है, सिद्ध एवं स्वभाव से उर्ध्वगामी है। आत्मा देह से भिन्न है किन्तु इसी देह में रहता है। इसी की अनुभूति से कर्मों का क्षय होता है[1]। योगीन्द्र के शब्दों में यह आत्मा अक्षय निरंजन एवं ज्ञानमय समचित्त में है[2]।

पाहुड दोहा में मुनि रामसिंह ने कहा कि जिसने आत्मज्ञान रूपी माणिक्य को पा लिया वह संसार के जंजाल से पृथक होकर आत्मानुभूति में रमण करता है।[3]

आचार्य कुन्दकुन्द कृत समयसार का तो बनारसीदास के जीवन पर तो इतना प्रभाव पड़ा कि वे उसकी स्वाध्याय से पक्के अध्यात्मी बन

---

१. जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो,
मोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥

२. अखउ णिरंजणु णाणमउ सिउ संठिउ समचित्ति ।

३. जाइ लद्धउ माणिक्कडो जोइय पुहवि भमंत,
बंधिज्जइ णिय कप्पडइ जोइज्जइ एक्कंत ।

गये। वे उसकी प्रतिदिन चर्चा करने लगे। आगरे में घर घर में समयसार नाटक की बात का बखान होने लगा और समय पाकर अध्यात्मियों की सैली बन गई। [४]

इन जैन आचार्यों के अतिरिक्त संवत् १६०० के पहिले जैनेतर कवियों में कबीरदास, मीरा और सूरदास जैसे हिन्दी के महाकवि हो चुके थे जिन्होंने अध्यात्म एवं भक्ति की धारा बहायी थी। कबीर निर्गुणोपासक एवं मीरां तथा सूरदास सगुणोपासक कवि थे। इन्होंने भारतीय वातावरण में ईश्वर भक्ति की जो धारा बहाई उससे जैन कवि अप्रभावित नहीं रह सके और इनकी रचनाओं का भी थोड़ा बहुत प्रभाव तो इन कवियों पर अवश्य पड़ा। तुलसीदास के बनारसीदास एवं रूपचन्द समकालीन कवि थे। तुलसीदास रामोपासक थे और इन्होंने रामायण के माध्यम से रामकथा का प्रचार घर घर कर दिया था इसलिये तुलसी भक्ति का भी जैन कवियों पर थोड़ा प्रभाव अवश्य पड़ा।

अब यहां संक्षिप्त रूप में कबीर, मीरा एवं तुलसीदास के साथ जैन कवियों के पदों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

माया को कबीर एव भूधरदास दोनों कवियो ने ठगिनी शब्द से सम्बोधित किया है। कबीर ने इस माया के विभिन्न रूप दिखलाये हैं जबकि भूधरदास ने उसे बिजली की आभा के समान माना है जो

---

४ इह विधि बोध बचनिका फैली, समै पाई अध्यातम सैली,
प्रगटी जगमांहि जिनवानी, घर घर नाटक कथा बखानी।

मूख प्राणियों को ललचाती रहती है। जो मनुष्य इसका जरा भी विश्वास कर लेता है उसे अन्त में पश्चाताप के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं लगता तथा वह नरक में गमन करता है। कबीर ने उसके कमला, भवानी, मूरति, पानी, आदि विचित्र नाम दिये हैं तो भूधरदास ने "केते कंथ किये तैं कुलटा तो भी मन न अघाया" कह करके सारे रहस्य को समझा दिया है। कबीर ने माया की अकथ कहानी लिखकर छोड़दी है लेकिन भूधरदास ने उसका "जो इस ठगनी को ठग बैठे मैं तिनको शिरनायो" कहकर अच्छा अन्तकिया है। दोनों पद पाठकों के अवलोकनार्थ दिये जा रहे हैं।

कबीरदास :

माया महा ठगिनी हम जानी।
निरगुन फाम लिये कर डोले, बोले मधुरी बानी,
केसव के कमला ह्वै बैठी, शिव के भवन शिवानी।
पंडा के मूरति ह्वै बैठी तीरथ में भई पानी,
जोगी के जोगिन ह्वै बैठी, राजा के घर रानी।
काहू के हीरा ह्वै बैठी, काहू के कौड़ी कानी,
भगतन के भगतिन ह्वै बैठी ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहत कबीर सुनो हो संतो, यह सब अकथ कहानी।

भूधरदास:

सुनि ठगनी माया, तैं सब जग ठग खाया।
टुक विश्वास किया जिन तेरा, सो मूरख पछताया॥
आभा तनक दिखाय बिज्जु, ज्यों मूढमती ललचाया।
करि मद अंध धर्म हर लीनों, अन्त नरक पहुँचाया॥

केते कथ किये तैं कुलटा, तो भी मन न अघाया।
किसहीसौं नहिं प्रीति निभाई, वह तजि और लुभाया॥
'भूधर' छलत फिरत यह सबकों, भौंदू करि जग पाया।
जो इस ठगनी को ठग बैठे, मैं तिनको शिर नाया॥

कबीरदास ने एक पद में "यह प्राणी सारी आयु बातों में ही व्यतीत कर देता है" इसका सुन्दर चित्रण किया है। छत्त कवि ने भी इसी के समान एक पद लिखा है जिसमें उसने "आयु सब यों ही बीती जाय" के लिये पश्चाताप किया है। दोनों कवियों के पदों की प्रथम दो पंक्तियां पढ़िये।

कबीरदास :

जन्म तेरा बातों ही बीत गया, तूने कबहु न कृष्ण कह्यो।
पांच बरस का भोला भाला अब तो बीस भयो।
मकर पचीसी माया कारन, देश विदेश गयो।

छत्तकवि :

आयु सब यों ही बीती जाय,
बरस अयन रितु मास महूरत, पल छिन समय सुभाय,
बंन न सकत जप तप व्रत संजम, पूजन भजन उपाय।
मिथ्या विषय कषाय काज में फसो न निकसो जाय॥ २॥

यदि कबीरदास प्रभु के भजन करने में आनन्द का अनुभव करते हैं तो जगतराम कवि 'भजन सम नहीं काज दूजो'' इसी की माला जपते रहते हैं। दोनों ही कवियों ने भगवद् भजन की अपूर्व महिमा गायी है। कबीर का पद देखिये :

भजन में होत आनन्द आनन्द,
बरसै शब्द अमी के बादल, भींजै महरम सन्त
कर अस्नान मगन होय बैठे, चढा शब्द का रंग,
अगर वास जहां तत की नदियां, बहत धारा गंग
तेरा साहिब है तेरे मांही, पारस परसे अंग,
कहत कबीर सुनो भाई साधो जपले ओऽम् सोऽहं

* * * *

भजन सम नहीं काज दूजो ॥
धर्म अंग अनेक यामें, एक ही सिरताज।
करत जाके दुरत पातक, जुरत संत समाज ॥
भरत पुण्य भण्डार यातैं, मिलत सब सुख साज ॥१॥
भक्त को यह इष्ट ऐसो, ज्यों क्षुधित को नाज।
कर्म ईंधन को अगनि सम, भव जलधि को पाज ॥२॥
इन्द्र जाकी करत महिमा, कहो तो कैसी लाज ॥
जगतराम प्रसाद यातैं, होत अविचल राज ॥३॥

दौलतराम ने भगवान महावीर से संसार की पीर हरने तथा कर्म बेडों को काटने की प्रार्थना की है तो कबीरदास ने भगवान से निवेदन किया है कि उनके बिना भक्त की पुकार कौन सुन सकता है।

हमारी पीर हरो भव पीर — दौलतराम

आप विन कौन सुने प्रभु मोरी — कबीरदास

इसी तरह यदि कबीरदास ने "साधो मूतन बेटा जायो, गुरु परताप साधु की संगत खोज कुटुम्ब सब खायो"–के पद में बालक का नाम 'ज्ञान' रखा है तो बनारसीदास ने बालक का नाम 'भौंदू' रखकर नाम रखने वाले पंडित को हीं बालक द्वारा खा लेने की अच्छी कल्पना की है। इसमें बनारसीदास की कल्पना निसंदेह उच्चस्तर की है। दोनों पदों का अन्तिम भाग देखिये।

कबीरदास :

'ज्ञान' नाम धरयो बालक का, शोभा वरणी न जाई
कहै कबीर सुनो भाई साधो घर घर रहा समाई।

बनारसीदास :

नाम धरयो बालक को 'भौंदू,' रूप वरन कछु नाही।
नाम धरंते पांडे खाये, कहत बनारसी भाई।

मीरा ने एक ओर "मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई" के रूप में जन साधारण को भक्ति की ओर आकर्षित किया तो बनारसीदास ने "जगत में सो देवन को देव, जासुचरन इन्द्रादिक परसे होय मुकति स्वयमेव" का अलाप लगाया। इसी तरह एक ओर मीरा ने प्रभु से होली खेलने के लिये निम्न शब्द लिखे।

होली पिया बिन लागत खारी. सुनो री सखी मेरी प्यारी।
होरी खेलत है गिरधारी।

तो दूसरी ओर जैन कवि आत्मा से ही होली खेलने को आगे बढ़े और उन्होंने निम्न शब्द में अपने भावों को प्रकट किया।

होरी खेलूंगी घर आए चिदानन्द ।

शिशर मिथ्यात गई अब, आई काल की लब्धि बसंत।
इसी प्रकार महाकवि तुलसीदास ने यदि,

राम जपु राम जपु राम जपु बावरे,
घोर भव नीर निधि नाम निज नाव रे।

का सन्देश फैलाया तो रूपचन्द ने जिनेन्द्र का नाम जपने के लिये तो प्रोत्साहित किया ही किन्तु अपने खराब परिणामों को पवित्र करने के लिये और मन में से कांटे को निकाल कर उनके स्मरण के लिए भी कहा।

पद संग्रह के सम्बन्ध में—

प्रस्तुत पद संग्रह में ४०१ पदों का संकलन है। ये पद ४० जैन कवियों के हैं जिनमें १५ प्रमुख कवियों के ३४६ पद तथा शेष २५ कवियों के ५५ पद हैं। इन पदों का संग्रह प्राचीन ग्रन्थों एवं गुटकों में से तथा कुछ पदों का प्रकाशित पुस्तकों के आधार पर किया गया है। ४० कवियों में बहुत से कवि तो ऐसे हैं जिनके पद पाठकों को प्रथम बार पढ़ने को प्राप्त होंगे। ऐसे कवियों में

भ. रत्नकीर्ति, कुमुदचन्द्र, छुत्तदास, वखतराम आदि के नाम प्रमुख रूप से गिनाये जा सकते हैं। सभी कवि साहित्य के महारथी थे। उन्होंने अपने अगाध ज्ञान से हिन्दी साहित्य के वृक्ष को पल्लवित किया था। पद्रह कवियों का जिनके इस सग्रह में प्रमुख रूप से पद दिये हैं उनका संक्षिप्त परिचय भी पदों के साथ ही दे दिया गया है। परिचय के साथ २ उन कवियों का एक निश्चित समय भी देने का प्रयास किया गया है। जो जहाँ तक हो सका है निश्चित प्रमाणों के आधार पर ही आधारित है। १५ प्रमुख कवियों के अतिरिक्त शेष २५ कवियों में टोडर, शुभचन्द्र, मनराम, साहिबराम, आनन्दघन, सुरेन्द्रकीर्ति, देवाब्रह्म, माणिकचन्द्र, धर्मपाल, देवीदास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। कवि टोडर बादशाह अकबर के उच्चपदस्थ अधिकारी थे। इन्हीं के पुत्र रिषिदास द्वारा लिखवायी हुई ज्ञानार्णव की सस्कृत टीका अभी हमें प्राप्त हुई है[1]। शुभचन्द्र भट्टारक सकलकीर्ति की परम्परा में होने वाले भ० विजयकीर्ति के शिष्य थे मनराम १७ वीं शताब्दी के हिन्दी के अच्छे विद्वान थे तथा जिनकी अभी ८ रचनायें प्रकाश में आ चुकी है। आनन्दघन, देवाब्रह्म अपने समय के अच्छे विद्वान थे। इनके बहुत से पद एवं रचनाएँ मिलती है। सुरेन्द्रकीर्ति आमेर के भट्टारक थे जिनको साहित्य से विशेष अभिरूचि थी। इसी प्रकार धर्मपाल, माणिकचन्द एव देवीराम आदि भी अपने समय के अच्छे विद्वान् थे।

---

[1] देखिये लेखक द्वारा सम्पादित "राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची" चतुर्थ भाग पृष्ठ सख्या ३२

राग रागनियों के नामों से पता चलता है कि सभी जैन कवि संगीत के अच्छे ज्ञाता थे। वे अपने पदों को स्वयं गाते थे तथा जनता को अध्यात्म एवं भगवद् भक्ति की ओर आकर्षित करते थे। प्राचीन काल में इन पदों के गाने का खूब प्रचार था तथा वे भजनानन्दियों को कंठस्थ रहते थे। आज भी जयपुर में ७-८ शैलियां हैं जिनका कार्यक्रम सप्ताह में एक दिन सामूहिक रूप से पद एवं भजनों के गाने का रहता है। सभी जैन कवि एक ही राग के गायक नहीं थे किन्तु उनकी अलग रागें थी। वैसे जैन कवियों ने केदार, सारंग, बिलावल, सोरठ, मांढ, आसावरी, रामकली, जिलो, मालकोश, ख्याल, तमाशा आदि रागों में अधिक पद लिखे हैं

आभार—

सर्व प्रथम मैं क्षेत्र की प्रबन्ध कारिणी कमेटी के सभी माननीय सदस्यों एवं मुख्यतः भूतपूर्व मंत्री श्री केसरलाल जी बख्शी, बाबू सुमद्रकुमार जी पाटनी तथा वर्त्तमान मत्री श्री गैंदीलाल जी साह एडवोकेट का अत्यधिक आभारी हूँ जिनके सद् प्रयत्नों से श्री महावीर क्षेत्र की ओर से प्राचीन साहित्य की खोज एवं उसके प्रकाशन जैसे महत्वपूर्ण कार्य का सम्पादन हो रहा हैं वास्तव में क्षेत्र कमेटी ने समाज को इस ओर नई दिशा प्रदान की है। आशा है भविष्य में साहित्य प्रकाशन का कार्य और भी शीघ्रता से कराया जावेगा। विश्वभारती शान्तिनिकेतन के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष एवं अपभ्रंश साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान, डा. रामसिंह

तोमर का मैं पूर्णतः आभारी हूँ जिन्होंने समय न होते हुये भी इस संग्रह पर प्राक्कथन लिखने की कृपा की है। गुरुवर्य्य पं० चैनसुखदास जी सा० का भी मैं पूर्ण कृतज्ञ हूँ जिनके निर्देशन में जयपुर में साहित्य शोध का यह कार्य हो रहा है।

अन्त में मैं अपने सहयोगी भाई अनूपचंद जी न्यायतीर्थ एवं श्री सुगनचंद जी जैन का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने इसके सम्पादन एवं प्रकाशन में पूर्ण सहयोग दिया है।

कस्तूरचन्द कासलीवाल

पदानुक्रमणिका

पद	पद संख्या	पृष्ठ संख्या
भट्टारक रत्नकीर्ति व उनके पद		
१. कहां थे मंडन करूं कजरा नैन भरूं	८	७
२. कारण कोउ पिया को जाने	३	४
३. नेम तुम कैसे चले गिरिनारि	२	३
४. नेम तुम आओ घरिय घरे	१४	१०
५. राजुल गेहे नेमि आय	१०	८
६ राम ! स्तावे रे मोहि रावन	१३	६
७. वरज्यो न माने नयन निठोर	७	६
८. वृषभ जिन सेवो बहु सुखकार	१	३
६. सखी री नेम न जानी पीर	४	४
१०. सखी री सावनि घटाई सतावे	६	५
११. सखि को मिलावो नेम नरिन्दा	५	५
१२. सरद की रयनि सुन्दर सोहात	१२	६
१३ सुदर्शन नाम के मैं वारी	६	७
१४ सुन्दरी सकल सिगार करे गोरी	११	८

पद	पद संख्या	पृष्ठ संख्या

भ० कुमुदचन्द्र

पं० रूपचन्द

बनारसीदास

पद | पद संख्या | पृष्ठ संख्या

जगजीवन

(झ)

भूधरदास

बुधजन

दौलतराम

भागचन्द

विविध कवियों के पद

भट्टारक रत्नकीर्त्ति

(संवत् १५६०–१६५६)

रत्नकीर्त्ति जैन सन्त थे तथा सूरत गादी के भट्टारक थे। इनका जन्म संवत् १५६० के आसपास घोघा नगर (गुजरात) में हुआ था। इनके पिता का नाम देवीदास एवं माता का नाम सहजलदे था। आरम्भ से ही ये व्युत्पन्न मति थे एवं साहित्य की ओर इनका झुकाव था। भट्टारक अभयचन्द के पश्चात् संवत् १६४३ में इनका पट्टाभिषेक हुआ। इस पद पर ये संवत् १६५६ तक रहे।

रत्नकीर्त्ति अपने समय के प्रसिद्ध कवि एवं साहित्यिक विद्वान् थे। अब तक इनके ४० हिन्दी पद एवं नेमिनाथ फाग, नेमिनाथ

बारहमासा, नेमीश्वर हिण्डोलना एवं नेमिश्वर रास आदि रचनाएँ प्राप्त हो चुकी हैं। इनके पदों में नेमिनाथ के विरह से राजुल की दशा एवं उसके मनोभावों का अच्छा चित्रण मिलता है। हिन्दी के साथ में ये गुजराती, मरहठी एव संस्कृत के भी अच्छे ज्ञाता थे। गुजराती का इनकी रचनाओं पर प्रभाव है एवं मरहटी भाषा में इनके कुछ पद मिलते हैं।

इनके शिष्य परिवार में भ० कुमुदचन्द्र, गणेश एवं राघव के नाम उल्लेखनीय हैं। इन विद्वानों ने इनके बारे में काफी लिखा है।

राग-गुज्जरी

वृषभ जिन सेवो बहु सुखकार ॥
परम निरंजन भव भय भंजन
संसारार्णवतार ॥ वृषभ० ॥१॥
नाभिराय कुल मंडन जिनवर ।
जनम्या जगदाधार ॥
मन मोहन मरूदेवी नंदन ।
सकल कला गुणधार ॥ वृषभ० ॥२॥
कनक कांति सम देह मनोहर।
पांचसै धनुष उदार ॥
उज्वल रत्नचंद सम कीरति ।
विस्तरी भवन मझार ॥ वृषभ० ॥३॥

[१]

राग-नट नारायण

नेम तुम कैसे चले गिरिनारि ॥
कैसे विराग धरयो मन मोहन, प्रीत[1] विसारि हमारी ॥१॥
सारंग देखि सिधारे सारंगु, सारंग नयनि निहारी ॥
उनपे तंत मंत मोहन है, वेसो नेम[2] हमारी ॥ नेम० ॥२॥
करो रे संभार सांवरे सुन्दर, चरण कमल पर वारि ॥
रतनकीरति प्रभु तुम बिन राजुल विरहानलहु जारी ॥
॥ नेम० ॥३॥

[२]

---

१. मूलपाट-परिति २. तेम

राग-कंनड़ो

कारण कोउ पिया को न जाने ॥
मन मोहन मंडप ते बोहरे, पसु पोकार बहाने ॥ कारण० ॥१॥
मो थे चूक पड़ी नहि पजरति, भ्रान ताज के ताने ॥
अपने उर की आली बरजी, सजन रहे सब छाने ॥ कारण० ॥२॥
आये बहोत दिवाजे राजे, सारंग मय धूनी ताने ॥
रतनकीरति प्रभु छोरी राजुल, मुगति बधू विरमाने ॥कारण०॥३॥

[३]

राग-देशाख

सखी री नेम न जानी पीर ॥
बहोत दिवाजे आये मेरे घरि,
संग लेर हलधर वीर ॥ सखी० ॥ १ ॥
नेम मुख निरखी हरषीयन मूं,
अब तो होइ मन धीर ॥
तामें पशूय पुकार सुनि करि,
गयो गिरिवर के तीर ॥ सखी० ॥ २ ॥
चद्रवदनी पोकारती डारती,
मंडन हार उर चीर ॥
रतनकीरति प्रभू भये वैरागी,
राजुल चित कियो थीर ॥ सखी० ॥ ३ ॥

[४]

राग-देशाख

राखि को मिलाओ नेम नरिंद ॥
ता बिन तन मन योवन रजत है,
चारु चंदन अरु चंदा ॥ सखि० ॥ १ ॥
कानन भुवन मेरे जीया लागत,
दुसह मदन को फंदा ।
तात मात अरु सजनी रजनी ॥
वेअति दुख को कंदा ॥ सखि० ॥ २ ॥
तुम तो संकर सुख के दाता,
करम काट किये मंदा ॥
रतनकीरति प्रभु परम दयालु,
सेवत अमर नरिंदा[१] ॥ सखि० ॥ ३ ॥

[५]

राग-मल्हार

सखी री सावनि घटा ई सतावे ।
रिमि झिमि बूंद बदरिया बरसत,
नेमि नेरे नहिं आवे ॥ सखी री० ॥ १ ॥
कूंजत कीर कोकिला बोलत,
पपीया वचन न भावे ॥

---

१ मूलपाठ-वरिंदा

दादुर मोर घोर घन गरजत,
इंद्र-धनुष डरावे ॥ सखी री० ॥ २ ॥
लेख लिखू री गुपति वचन को,
जदुपति कु जु सुनावे ॥
रतनकीरति प्रभु अब निठोर भयो ।
अपनो वचन बिसरावे ॥ सखी री० ॥ ३ ॥

[६]

राग-केदार

वरज्यो न माने नयन निठोर ॥
सुमिरि सुमिरी गुन भये सजल घन,
उमंगी[1] चले मति फोर ॥ वर० ॥ १ ॥
चंचल चपल रहत नहीं रोके,
न मानत जु निहोर ॥
नित उठि चाहत गिरि को मारग,
जेहिं विधि चंद-चकोर ॥ वर० ॥ २ ॥
तन मन धन योवन नहीं भावत,
रजनी न भावत[2] भोर ॥
रतनकीरति प्रभु वेगें मिलो,
तुम मेरे नयन के चोर ॥ वर० ॥ ३ ॥

[७]

१ उमागी २ जावत

राग-केदार

कहां थे मंडन करूं कजरा नैन भरूं
होऊं रे वैरागन नेम की चेरी ॥
शीस न मंजन देउं, मांग मोती न लेउं ।
अब पोरहुं तेरे गुननी बेरी ॥ १ ॥
काहूं सूं बोल्यो न भावे, जीया में जु ऐसो आवे ।
नहीं गमे तात मात न मेरी ॥
आली को कह्यो न करे, बावरी सी होइ फिरे ।
चकित कुरंगिनी युं सर घेरी ॥ २ ॥
निठुर न होइ ए लाल, वलिहुं नैन विशाल ।
कैसे री तस दयाल भले भलेरी ॥
रतनकीरति प्रभु तुम्ह बिना राजुल ।
यों उदास गृहे क्युं रहेरी ॥ ३ ॥

[८]

राग-कंनडो

सुदर्शन[1] नाम के मैं वारी ॥
तुम बिन कैसे रहूँ दिन रयणी ।
मदन सतावे भारी ॥ सुदर्शन० ॥ १ ॥
जाओ मनावो आनो गृह मोरे ।
यो कहे अभिया रानी ॥

---

१ सुंदरण

रतनकीरति प्रभु भये जु विरागी ।
सिद्ध रहे जीया ध्याई[1] ॥ सुदर्शन ॥ २ ॥

[९]

राग–कल्याण चर्चरी

राजुल गेहे नेमि आय ॥
हरि वदनी के मन भाय ।
हरि को तिलक हरि सोहाय ॥ राजुल० ॥ १ ॥
कंवरी को रंग हरी, ताके सगे सोहे हरी,
तां टंक को तेज हरि दोइ श्रवनि ॥ राजुल० ॥ २ ॥
हरि सम दो नयन सोहे, हरि लता रंग अधर सोहे ।
हरि सुतासुत राजित, द्विज चिबुक भवनि ॥
हरि सम दो मृनाल, राजित इसी राजु बार ।
देही को रंग हरि, बिशार हरी गवनी ॥ राजुल० ॥ ३ ॥
सकल हरि अंग करी, हरि निरखती प्रेम भरी ।
तत नन नन नीर, तत प्रभु अवनी ॥
हरि के कुहरि कुंपेखि, हरि लंकी कुं वेधी ।
रतनकीरति प्रभु वेगें हरि जवनी ॥ राजुल० ॥ ४ ॥

[१०]

राग–केदार

सुन्दरी सकल सिगार करे गोरी ॥
कनक वरन कंचुकी कसो तनि ।

---

१ धाई

पेनीले आदि नर पटोरी ॥ सुंदरी० ॥ १ ॥
निरखती नेह भरि नेम नो साहं कुं ।
रथ बैठे आये संग हलधर जोरी ॥
रतनकीरति प्रभु निरखि सारंग ।
वेग दे गिरि गये मानमरोरी ॥ सुंदरी० ॥ २ ॥

(११)

राग–केदार

सरद की रयनि सुंदर सोहात ॥ टेक ॥
राका शशधर जारत या तन ।
जनक सुता बिन भ्रात ॥ सरद० ॥ १ ॥
जब याके गुन आवत जीया में ।
बारिज बारी बहात ॥
दिल बिदर की जानत सीश्रा ।
गुपत मते की बात ॥ सरद० ॥ २ ॥
या बिन या तन सह्यो न जावत ।
दुःसह मदन को जात ॥
रतनकीरति कहे बिरह सीता के ।
रघुपति रह्यो न जात ॥ सरद० ॥ ३ ॥

(१२)

राग–केदार

राम ! सतावे रे मोहि रावन ॥
दस मुख दरस देखें डरती हूँ ।

बेग करो तुम आवन ॥ राम० ॥ १ ॥
निमिष पलक छिनु होत वरिषमो ।
कोई सुनावो जावन ॥
सारंगधर सौं इतनो कहियो ।
अब तो गयो है आवत ॥ राम० ॥ २ ॥
करुनासिंधु ! निशाचर लागत ।
मेरे तन कुं डरावन ॥
रतनकीरति प्रभु वेगे मिलो किन ।
मेरे जीया के भावन ॥ राम० ॥ ३ ॥

(१३)

राग—केदार

नेम तुम आओ[1] धरिय धरे ॥ टेक ॥
एक रयनि रही प्रात पियारे ।
बोहोरी चारित धरे ॥ नेम० ॥ १ ॥
समुद्र विजय नंदन नृप तुंही बिन ।
मनमथ मोही न रे ॥
चन्दन चीर चारु इंदु सें ।
दाहत अंग धरे ॥ नेम० ॥ २ ॥
बिलखती छारि चले मन मोहन ।
उज्ज्वल गिरि जा चरे ॥
रतनकीरति कहे मुगति सिधारे ।
अपनो काज करे ॥ नेम० ॥ ३ ॥

(१४)

१. मूलपाठ—आयो

भट्टारक कुमुदचन्द्र

(सं० १६२५–१६८७)

कुमुदचन्द्र भट्टारक रत्नकीर्ति के शिष्य थे। इनके पिता का नाम 'सदाफल' एवं माता का नाम 'पद्माबाई' था। यह 'गोमंडल' के रहने वाले थे तथा मोढ वंश में उत्पन्न हुये थे। बचपन से ये उदासीन रहने लगे और युवावस्था आने के पूर्व ही इन्होंने संयम ले लिया। ये शरीर से सुन्दर, वाणी से मधुर एवं मन से स्वच्छ थे। अध्ययन की ओर इनका प्रारम्भ से ही झुकाव था। इसलिये इन्होंने बाल्यावस्था में ही व्याकरण, छंद, नाटक, न्याय, आगम एवं अलङ्कार शास्त्र का गहरा अध्ययन कर लिया। कुछ समय के पश्चात् ये भट्टारक रत्नकीर्ति के शिष्य

बन गये और उन्हीं के साथ रहने लगे। इनकी विद्वता एवं अगाध ज्ञान को देखकर रत्नकीर्ति इन पर मुग्ध होगये और इन्हें अपना प्रमुख शिष्य बना लिया। सवत् १६५६ में बारडोली नगर में इन्हें भट्टारक दीक्षा दी गई।

कुमुदचन्द्र अपने समय के बड़े भारी विद्वान थे। हिन्दी में इनकी कितनी ही रचनायें मिलती हैं। इनकी प्रमुख रचनाओं में- नेमिनाथ बारहमासा, नेमीश्वर गीत, हिन्दोलना गीत, बणजारा गीत, दशधर्म गीत, सप्तव्यसन गीत, पार्श्वनाथ गीत, चिन्तामणि पार्श्वनाथ गीत आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी तरह इनके ५० से अधिक छोटे बड़े पद भी अब तक मिल चुके हैं।

कुमुदचन्द्र की भाषा राजस्थानी है तथा उस पर कहीं कही मराठी, एवं गुजराती का प्रभाव है। इन्हे सीधी-सादी भाषा में लिखने का अधिक चाव था। इनके पद अध्यात्म, स्तवन, शृंगार एवं विरह पर मिलते हैं। कुछ पद तो इनके बहुत ही ऊँची श्रेणी के हैं।

राग-नट नारायण

आजु मैं देखे पास जिनेंदा ॥
सांवरे गात सोहामनि मूरति, शोभित शीस फणेंदा ॥
आजु० ॥ १ ॥

कमठ महामद भंजन रंजन भविक चकोर सुचंदा ।
पाप तमोपह भुवन प्रकाशक, उदित अनूप दिनेंदा ॥
आजु ॥ २ ॥

भुविज-दिविज पति दिनुज दिनेसर सेवितपद अरविन्दा ।
कहत कुमुदचन्द्र होत सबे सुख, देखत वामानंदा ॥
आजु० ॥ ३ ॥

[१५]

राग-सारंग

जो तुम दीन दयाल कहावत ॥
हमसे अनाथनि हीन दीन कूं काहे न नाथ निवाजत ।
जो तुम० ॥ १ ॥

सुर नर किन्नर असुर विद्याधर सब मुनिजन जस गावत ॥
देव महीरुह कामधेनु ते अधिक जपत सच पावत ॥
जो तुम० ॥ २ ॥

चंद चकोर जलद जुं सारंग मीन सलिल ज्युं ध्यावत ॥
कहत कुमुद पति पावन तूहि, तुहिं हिरदे मोहि भावत ॥
जो तुम० ॥ ३ ॥

[१६]

राग-धन्यासी

मैं तो नरभव बाधि गमायो ॥
न कियो तप जप व्रत विधि सुंदर ॥
काम भलो न कमायो ॥ मैं तो० ॥ १ ॥
धिकट लोभ तें कपट कूट करी ।
निपट विषै लपटायो ॥
विटल कुटिल शठ संगति बैठो ।
साधु निकट विघटायो ॥ मैं तो० ॥ २ ॥
कृपण भयो कछु दान न दीनों ।
दिन दिन दाम मिलायो ॥
जब जोवन जंजाल पड्यो तब ।
परत्रिया तनु चित लायो ॥ मैं तो० ॥ ३ ॥
अंत समै कोउ संग न आवत ।
झूठहि पाप लगायो ॥
कुमुदचन्द्र कहे चूक परी मोही ।
प्रभु पद जस नहीं गायो ॥ मैं तो० ॥ ४ ॥

[१७]

राग-धन्यासी

प्रभु मेरे तुम कुं ऐसी न चाहिये ॥
सघन विघन घेरत सेवक कुं ।
मौन धरी किउं रहिये ॥ प्रभु० ॥ १ ॥

विघन-हरन सुख-करन सबनिकुं ।
चित चिंतामनि कहिये ।।
अशरण शरण अबंधु बंधु कृपासिंधु-
को विरद निबहिये ।। प्रभु० ।। २ ।।
हम तो हाथ बिकाने प्रभु के ।
अब जो करो सोई सहिये ।।
तो फुनि कुमुदचन्द्र कहे शरणा-
गति की सरम जु गहिये ।। प्रभु० ।। ३ ।।

[१८]

राग-सारंग

नाथ अनाथनि कूं कछु दीजे ।।
विरद संभारी धारी हठ मनतें, काहे न जग जस लीजे ।
नाथ० ।। १ ।।
तुही निवाज कियो हूँ मानष, गुण अवगुण न गणीजे ।
व्याल बाल प्रतिपाल सविषतरु, सो नहीं आप हणीजे ।।
नाथ० ।। २ ।।
में तो सोई जो ता दीन हूतो, जा दिन को न छूईजे ।
जो तुम जानत और भयो है, बाधि बाजार बेचीजे ।।
नाथ० ।। ३ ।।
मेरे तो जीवन धन सब तुमहि नाथ तिहारे जीजे ।
कहत कुमुदचन्द्र चरण शरण मोहि, जे भावे सो कीजे ।।
नाथ० ।। ४ ।।

[१९]

(१६)

राग–सारंग

सखी री अबतो रह्यो नहि जात।
प्राणनाथ की प्रीत न बिसरत, छण छण छीजत जात।
सखी० ॥ १ ॥

नहि न भूख नहीं तिसु लागत, घरहि घरहि मुरझात।
मन तो उरझी रह्यो मोहन सुं, सेवन ही सुरझात ॥
सखी० ॥ २ ॥

नाहि ने नींद परती निसिवासर, होत विसुरत प्रात।
चन्दन चन्द्र सजल नलिनी दल, मन्द मरुत न सुहात ॥
सखी० ॥ ३ ॥

गृह आंगनु देख्यो नहीं भावत, दीन भई विललात।
विरही बाउरी, फिरत गिरि गिरि, लोकन ते न लजात ॥
सखी० ॥ ४ ॥

पीउ विन पलक कल नहीं जीउ कूं, न रुचित रसिक गु बात।
कुमुदचन्द्र प्रभु सरस दरस कूं, नयन चपल ललचात ॥
सखी० ॥ ५ ॥

राग-मलार

आली री अ विरखा ऋतु आजु आई।
आवत जात सखी तुम कितहु, पीउ आवन सुध पाई॥
आली०॥ १॥

देखत तस भर बादर दरकारे, बसंत[1] हेम झर लाई।
बोलत मोर पपीईया दादुर, नेमि रहे कत छाई॥
आली०॥ २॥

गरजत मेह उदित अरु दामिनी, मोपे रह्यो नहीं जाई।
कुसुदचन्द्र प्रभु सुगति बधू सूं, नेमि रहे विरमाई॥
आली०॥ ३॥

[२१]

राग-प्रभाति

आवो रे सहिय सहिलडी संगे।
विघन हरण पूजिये पास मन रंगे॥ आवो०॥
नील वरण तनु सुन्दर सोहे।
सुर नर किन्नर ना मन मोहे॥ आवो०॥ १॥
जे जिन बंदित वांछित पूरे।
नाम लेत सहू पातक चूरे॥ आवो०॥ २॥
सुप्रभाति उठि गुण जो गाये।
तेहने घरि नव निधि सुख थाये॥ आवो०॥ ३॥

---

१. मूलपाठ बसत

भव 'भय' वारण त्रिभुवननायक ।
दीन दयाल ए शिव सुख दायक ।। आवो० ।। ४ ।।
अतिशयवंत ए जग मांहि गाजे ।
विघन हरण वारू विरद विराजे ।। आवो० ।। ५ ।।
जेहनी सेव करे धरणेंद्र ।
जय जिनराज तु कहे कुमुदचन्द्र ।। आवो० ।। ६ ।।

[२२]

राग-धन्यासी

आज सबनि में हूँ बड भागी ।।
लोडणपास पाय परसन कुं ।
मन मेरो अनुरागी ।। आजु० ।। १ ।।
वामा नंदन वृजिनि विहंडन ।
जगदा नंदन जिनवर ।
जनम जरा मरणादि निवारण,
कारण सुख को सुंदर ।। आजु० ।। २ ।।
नील वरण सुर नर मन रंजन,
भव भंजन भगवंत ।
कुमुदचन्द्र कहे देव देवनि को,
पास भजहु सब संत ।। आजु० ।। ३ ।।

[२३]

राग-कल्याण

जनम सफल भयो भयो सुकाज रे ॥
तन की तपत टरी सब मेरी,
देखत लोडणपास आज रे ॥ जनम०॥ १ ॥
संकट हर श्री पास जिनेसर,
वंदत जिनि जिते रजनी राज रे ॥
अङ्क अनोपम अहिपति राजित,
श्याम बरन भव जलधिराज रे ॥ जनम०॥२॥
नरक निवारण शिव सुख कारण,
सब देवनि को है शिरताज रे ॥
कुमुदचन्द्र कहे बांछित पूरन,
दुख चूरन तुही गरीबनिवाज रे ॥जनम० ॥३॥

[२४]

राग-देशाख प्रभाति

जागि हो, भोर भयो कहा सोवत ॥
सुमिरहु श्री जगदीश कृपानिधि,
जनम बाधि क्यों खोवत ॥ जागि हो ॥ १ ॥
गई रजनी रजनीस सिधारे,
दिन निकसत दिनकर फुनि डूबत ॥
सकुचित कुमुद, कमल बन विकसत,

संपति विपति नयननि दोउ जोवत ॥ जागि हो० ॥ २ ॥
सजन मिले सब आप सवारथ ।
तूंहि बुराई आप शिर ढोवत ।
कहत कुमुदचन्द्र यान भयो तूंहि,
निकसत घीउ न नीर विलोवत ॥ जागि हो ॥३॥

[२५]

राग--कल्याण

चेतन चेतत किउं बावरे ॥
विषय विषे लपटाय रह्यो कहा,
दिन दिन छीजत जात आपरे ॥१॥
तन धन योवन चपल सपन को,
योग मिल्यो जेस्यो नदी नाउ रे ॥
काहे रे मूढ न समझत अजहूं,
कुमुदचन्द्र प्रभु पद यश गाउं रे ॥२॥

[२६]

पं० रूपचन्द

(संवत् १६३०–१७००)

पं० रूपचन्द १७ वीं शताब्दी के प्रसिद्ध अध्यात्मिक विद्वान् थे कविवर बनारसीदास ने अर्द्धकथानक में इनका अपने गुरु के रूप में उल्लेख किया है। कवि आगरे के रहने वाले थे और वहीं अपने मित्रों के साथ मिल कर अध्यात्म चर्चा किया करते थे। उन्होंने किस कुल में जन्म लिया एवं उनके माता पिता कौन थे इस सम्बन्ध में इनकी रचनायें मौन है।

रूपचन्द अध्यात्म रसिक थे। इनकी अधिकांश रचनायें इसी रस से ओतप्रोत हैं। अब तक इनके विभिन्न पदों के अतिरिक्त परमार्थ-दोहाशतक, परमार्थ गीत, पंचमंगल, नेमिनाथरासो, अध्यात्मदोहा,

अध्यात्मसवैया, परमार्थ हिंडोलना, खटोलना गीत आदि कितनी ही रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं। बनारसीदास का अध्यात्मवाद की ओर झुकने का प्रमुख कारण संभवतः इनकी रचनायें एवं आत्मिक चर्चायें थी। कवि ने जो कुछ लिखा है वह अपने अन्तःकरण की प्रेरणा से ही लिखा है। इनकी आन्तरिक अभिलाषा स्वोद्बोधन के अतिरिक्त मनुष्य मात्र को आत्मा-परमात्मा के चिन्तन एवं जड चेतन के वास्तविक भेद को समझाना रहा है। वे नहीं चाहते थे कि कठिनता से प्राप्त नर भव को यह मनुष्य ऐसे ही गवां दे। इसलिए "संपति सकल जीवन अरु जोबनु दस दिन को जैसी साहरी रे" आदि का सन्देश देना पड़ा। कवि के सभी पद एक से एक सुन्दर हैं। भाषा, शैली एवं विषय वर्णन की दृष्टि से भी कवि की रचनायें हिन्दी की उच्चकोटि की रचनाये हैं।

राग-गूजरी

प्रभु तेरी महिमा जानि न जाई ॥
नय विभाग विन मोह मूढ जन मरत बहिर्मुख धाई ॥
प्रभु० ॥ १ ॥

विविध रूप तव रूप निरूपत, बहुतै जुगति बनाई ॥
कलपि कलपि गज रूप अंध ज्यौं झगरत मत समुदाई ॥
प्रभु० ॥ २ ॥

विश्वरूप चिद्रूप एक रस, घट घट रह्यउ समाई ॥
भिन्न भाव व्यापक जल थल ज्यौं अपनी दुति दिनराई ॥
प्रभु० ॥ ३ ॥

मारयउ मनं जारयउँ मनमथु, अरु प्रति पाले खटुकाई ॥
विनु प्रसाद विन सासति सुर नर फणिपत सेवत पाई ॥
प्रभु० ॥ ४ ॥

मन वच करन अलख निरंजन, गुण सागर अति साई ॥
रूपचन्द अनुभव करि देखहुँ, गगन मंडल मनु लाई ॥
प्रभु० ॥ ५ ॥

[२७]

राग-देवगंधार

प्रभु तेरी परमविचित्र मनोहर मूरति रूप बनी ॥
अङ्ग अङ्ग की अनुपम सोभा, वरन न सकतु फनी ॥
प्रभु तेरी० ॥ १ ॥

सकल विकार रहितु बिनु अंबर, सुन्दर सुभ करनी ।
निराभरण भासुर छवि लाजत, कोटि तरुन तरनी ॥
प्रभु तेरी० ॥ २ ॥

वसु रस रहित सांत रस राजित, वलि इहि साधु पनी ।
जाति विरोधि जंतु जिहि देखत, तजत प्रकृति अपनी ॥
प्रभु तेरी० ॥ ३ ॥

दरसनु दुरितु हरे चिर संचितु, सुर नर मन मोहनी ।
रूपचन्द कहा कहौं महिमा, त्रिभुवन मुकट मनी ॥
प्रभु तेरी० ॥ ४ ॥

[२८]

राग–रामकली

प्रभु मुख की उपमा किहि दीजै ॥
ससि अरु कमल दोष व्रज दूषित ।
तिनकी यह सरवरि क्यौं कीजे ॥ प्रभु० ॥ १ ॥
वह जड रूप सदोष कलंकितु ।
कबहूँ बढै कबहूँ छिन छीजे ॥
वह पुनि जड पंकज रज रंजित ।
सकुचै विगसै अरु हिम भीजै ॥ प्रभु० ॥ २ ॥
अनूपम परम मनोहर मूरति ।
अमृत श्रवनि सिरि वसनि लहीजै ॥

रूपचन्द भव तपति तपनु जनु ।
दरसनु देखत ज्यों सुख लीजै ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥

[२९]

राग-बिलावल

दरसनु देखत हीयौ सिराइ ॥
होइ परम आनंदु अंतरगत ।
अरु मम नयन जुगलु सइताइ ॥ दरसनु० ॥ १ ॥
सहज सकल संताप हरे तन,
भव भव पाप पराछित जाइ।
दारुन दुसह दुसह दुख नासइ,
सुख सुख रासि हृदै समाइ ॥ दरसनु० ॥ २ ॥
श्री ह्री धृति कीरति मति विजया,
सो ति तुष्टि ए होइ सहाइ ।
सकल घोर उपसर्ग परीसह,
नासहि प्रभु के परम पसाइ ॥ दरसनु० ॥ ३ ॥
सकल विघन उपसमहि निरन्तर,
चोर मारि रिपु प्रमुख सुभाइ ।
रूपचन्द प्रसन्न परिनामनि,
असुभ करम निरजरहि तु काइ ॥ दरसनु० ॥ ४ ॥

[३०]

राग–आसावरी

प्रभु के चरन कमल रमि रहियै ॥
सक्र चक्रधर धरन प्रमुख सुख,
जो मन वंछित चहियै ॥ प्रभु० ॥ १ ॥
कत वहिरंग संग सब परिहरि,
दुभर चरन भरु वहियै ।
अरु कत बारह विधि तपु तप करि,
दुसह परिसह सहियै ॥ प्रभु० ॥ २ ॥
परम विचित्र भगति की महिमा,
कहत कहा लगि कहियै ।
रूपचन्द चित निश्चै अैसो,
तुरित परम पद लहियै ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥

[३१]

राग–कल्याण

प्रभु तेरी महिमा को पावै ॥
पंच कल्यानक समय सचीपति,
ताकौ करन महोछौ आवै ॥ प्रभु० ॥ १ ॥
तजि साम्राज्य जोगमुद्रा धरि,
सिव मारगु को प्रगटि दिखावै ।

वसु दस दोष रहितु को इहि विधि,
को तेरी सरि औरु गनावै ॥ प्रभु० ॥ २ ॥
समोसरन सिरि राज विराजति,
और निरंजनु कौनु कहावै ।
केवल दृष्टि देखि चराचर,
तत्व भेद को [1]ज्ञान जनावै ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥
को वरनै अनंत गुन गरिमा,
को जल निधि घट मांहि समावै ।
रूपचन्द भव सागर मज्जत,
को प्रभु बिन पर तीर लगावै ॥ प्रभु० ॥ ४ ॥

[३२]

राग–गूजरी

प्रभु की मूरति विराजै, अनुपम सोभा यह और न छाजै ॥
निरंवर मनोहर निराभरन भासुर,
विकार रहित मुनिजन मनु राजै ॥ प्रभु० ॥ ॥ १ ॥
सुन्दर सुभग सोहै सुर नर मनु मोहै,
रूप अनुपम मदन मद भाजै ॥ प्रभु० ॥ २ ॥
प्रहसित वन्यौ मुख भ्रकुटिन भ्रू धनुष,
तपन कटाख सर संधान न लाजै ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥
तम तेज दूरि करै तपति जडता हरै,
चन्द्रमा सूरजु जाकी ज्योति करि लाजै ॥ प्रभु० ॥ ४ ॥

---

१. बनानि

रूपचन्द गुण बरणौ कहत कहां लौ,
दरसन करत सकल दुरित दुख भाजै ॥ प्रभू ॥ ५ ॥

[३३]

राग–सारंग

हमहि कहा एती चूक परी ॥
सासति इतनी हमरी कीजै,
हमतै नाथ कहा बिगरी ॥ हमहि० ॥ १ ॥
किधौ जीव वधु कीयौ किधौ–
हम बोल्यो मृषा नीति विचारी ॥
किधौ पर द्रव्य हर्यौ तृष्णा वस,
किधौ परम नर तरुणि हरी ॥ हमहि० ॥ २ ॥
किधौ बहुत आरम्भ परिग्रह,
कह जू हमारी दृष्टि पसरी ॥
किधौ जुवा मधु मांसु रम्यो,
किधौ वित्त वधू चित्त धरी ॥ हमहि० ॥ ३ ॥
अनादि अविधा संतान जनित,
राग द्वेष परनति न टरी ॥
सुनौ सर्व साधारन संसारी,
जीवनि कोइ घरी घरी ॥ हमहि० ॥ ४ ॥
तू समरथ दयालु जग जीवन,
असरण सरण संसार तरी ।

लीजे राखि सरन अपने प्रभु,

रूपचन्द जनु कृपा करी ॥ हमहिं० ॥ ५ ॥

[३४]

राग-एही

प्रभु मुख चन्द अपूरव तेरौ ॥

संतत सकल कला परिपूरन,

पारे तुम तिहुँ जगत उजेरौ ॥ प्रभु० ॥ १ ॥

निरुप राग निरदोष निरंजनु,

निरावरनु जड जाड्य निवेरौ ॥

कुमुद विरोधि कृसी कृत सागरु,

अहि निसि अमृत श्रवै जु घनेरौ ॥ प्रभु० ॥ २ ॥

उदै अस्त वेन रहितु निरन्तरु,

सुर नर मुनि आनन्द जनेरौ ॥

रूपचन्द इमि नैनन देखति,

हरषित मन चकोर भयो मेरौ ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥

[३५]

राग-कान्हरौ

मानस जनमु वृथा तैं खोयो ॥

करम करम करि आइ मिल्यौ हो,

निद करम करि र सु विगोयो ॥ मानस० ॥ १ ॥

भाग विसेस सुधा रस पायो,
सो लै चरननिकौ मल धोयो।
चिंतामनि फैंक्यौं वाइस को,
कुंजर भरि भरि ईंधन ढोयो॥ मानस०॥ २॥
धन की तृषा प्रीति बनिता की,
भूलि रह्यो वृष तैं मुख गोयो।
सुख कै हेत विषय-रस सेये,
घिरत कै कारन सलिल विलोयो॥ मानस०॥ ३॥
माति रह्यो प्रसाद मद मदिरा,
अरु कंदर्प्प सर्प्प विष भोयो।
रूपचन्द चेत्यो न चितायो,
मोह नींद निश्चल ह्वै सोयो॥ मानस०॥ ४॥

[३६]

राग-कल्याण

चेतन काहे कौं अरसात॥
सहज सकति सम्हारि आपनी, काहे न सिवपुर जात॥
चेतन०॥ १॥
इहिं चतुरगति विपति भीतरि, रह्यो क्यों न सुहात॥
अरु अचेतन असुचि तन मैं, कैसे रह्यौ विरमात॥
चेतन०॥ २॥
अछत अनुपम रतन मांगत, भीख क्यौं न लजात।

तू त्रिलोकपति वृथा अब कत रंक ज्यौं बिललात ॥
चेतन० ॥ ३ ॥

सहज सुख बिन, विषय सुख रस भोगवत न अघात।
रूपचंद चित चेत ओसनि प्यास तौं न बुझात ॥
चेतन० ॥ ४ ॥

[३७]

राग-कल्याण

चेतन सौं चेतन लौं लाई ॥

चेतन अपनु सु फुनि चेतन, चेतन सौं बनि आई ।
चेतन० ॥ १ ॥

चेतन तैं अब चेतन उपज्यौं सुचेतन कौं चेतन क्यों जाई ।
चेतन गुन अरु गुनि फुनि चेतन, चेतन चेतन रह्यो समाई ॥
चेतन० ॥ २ ॥

चेतन मौन बनैअब चेतन, चेतन मौं चेतन ठहराई ।
रूपचंद चेतन भयो चेतन, चेतन गुन चेतन मति पाई ॥
चेतन० ॥ ३ ॥

[३८]

राग-केदार

जिय जिन करहि पर सौं प्रीति ।

एक प्रकृति न मिलै जासौं, को मरे तिहि नीति ॥
जिय० ॥ १ ॥

तू महंत सुजान, यहु जड, एक ठौर बसीति ।
भिन्न भाव रहै सदा पर, तऊ तोहि परतीति ॥
जिय० ॥ २ ॥

यह सुद्दौ अरु द्दौ सुयहु, ऐसी अतीव समीति ।
जोहि मोहि वसिकै जु राख्यौ, सुतोहि पायो जीति ॥
जिय० ॥ ३ ॥

प्रीति आपु समान स्यौं करि ज्यौं करन की रीति ।
रूपचंद चि चेत चेतन, कहां बहकै फीति ॥
जिय० ॥ ४ ॥

[३६]

राग–कान्हरौ

प्रभु तेरे पद कमल निज न जानै ॥
मन मधुकर रस रसि कुबसि, कुभयो अब अनत न रति मानै ।
प्रभु० ॥ १ ॥

अब लगि लीन रह्यो कुवासना, कुविसन कुसम सुहानै ।
मीज्यो भगति वासना रस वश अवस वर सयाहि भुलानै ॥
प्रभु० ॥ २ ॥

श्री निवास संताप निवारन निरुपम रूप मरूप बखाने ।
मुनि उन राजहंस जु सेवित, सुर नर सिर सनमाने ॥
प्रभु० ॥ ३ ॥

भव दुख तपनि तपत जन पाए, अंग अंग सहलाने।
रूपचंद चित भयो अनंदसु नाहि नै बनतु बखाने॥
प्रभु० ॥ ४ ॥

[४०]

राग-कल्याण

आध्यात्मिक Page 27

चेतन परस्यौं प्रेम बढयो ॥
स्वपर विवेक बिना भ्रम भूल्यो, मे मे करत रह्यो।
चेतन० ॥ १ ॥
नरभव रतन जतन बहु तैं करि, कर तेरे आइ चढयो।
सुक्यौं विषय-सुख लागि हारिए, सब गुन गढनि गढयो॥
चेतन० ॥ २ ॥
आरभ के कुसियार कीट ज्यौं, आपुहि आपु मढयो।
रूपचंद चित चेतत नाहितैं, सुक ज्यौं वादि पढयो॥
चेतन० ॥ ३ ॥

[४१]

राग-विभास

चरन रस भीजे मेरे नैन ॥
देखि देखि आनंद अति पावत, श्रवन सुखित सुनि बैन।
चरन० ॥ १ ॥
रसना रसि नाम रस भीजि, तन मन को अति चैन।

सब मिलि ललित जगत भूषन को, अब लागे सुख देन ॥
चरन० ॥ २ ॥

[४२]

राग–केदार

मन मानहि किन समझायो रे ॥
जब तब आजु कल्हि जु मरण दिन देखत सिरपर आयो रे ।
मन० ॥ १ ॥

बुधिबल घटत जात दिन दिन, सिथल होत यह कायो रे ।
करि कछु लैं जु करथउ चाहतु है, फुनि रहि है पछितायो रे ॥
मन० ॥ २ ॥

नरभव रतन जतन बहुतनि तैं, करम करम करि पायो रे ।
विषय विकार काच मणि बदलै, सु अहलै जान गवायो रे ॥
मन० ॥ ३ ॥

इत उत भ्रम भूल्यौ कित भटकत, करतु आपनौ भायो रे ।
रूपचंद चलहि न तिहिं पंथ जु, सद्गुर प्रगटि दिखायो रे ॥
मन० ॥ ४ ॥

[४३]

राग-सारंग

हौं जगदीस कौ उरगानौ ॥
संतत उरग रह्यौ चरननि की और प्रभु हि न पिछानौ ।
हौं जगदीश० ॥ १ ॥

मोह शत्रु जिहि जीत्यौ, तप बल आसनि मदनु छपानौ।
ज्ञान राजु निकंटकु पायौ, सिवपुरि अविचल थानौं॥
हौं जगदीश० ॥ २ ॥

वसु प्रतिहार जु प्रभु लक्षण के मेरे हृदै समानौं।
अनंत चतुष्टय श्रीपति चौतिस अतिसय गुन जु खानौं॥
हौं जगदीश० ॥ ३ ॥

समोसरन राउर सुर नर मुनि सोभत सभहि सुहानौं।
धर्म नीति सिव मारगु चाल्यो तिहूं भुवन कौ रानौं॥
हौं जगदीश० ॥ ४ ॥

दीन दयाल भगत जन वच्छल जिहि प्रभु कौ यह बानौं।
रूपचंद जन होइ दुखी क्यों मनु इह भरम भुलानौ॥
हौं जगदीश० ॥ ५ ॥

[४४]

राग–सारंग

कहा तू वृथा रह्यो मन मोहि॥
तू सरवज्ञ सरवदरसी कों कहि समुझावहि तोहि।
कहा० ॥ १ ॥

तजि निज सुख स्वाधीनपनौ कत, रह्यो पर बस जड जोहि।
घर पंचामृत मांगतु भीख जु, यह अचिरज चित मोहि॥
कहा० ॥ २ ॥

सुख लवलेस लह्यउ न कहूं फिरि देखे सब पद टोहि।
रूपचंद चित चेति चतुर मति स्व पद लीन किन होहि ॥
कहा० ॥ ३ ॥

[४५]

राग-विभास

प्रभु मोकौं अब सुप्रभात भयो ॥
तुव दरिसन दिनकर उग्यो, अनुपम मिथ्या ससि विसयो।
प्रभु० ॥ १ ॥

सुपर प्रकास भयो जिन स्वामी, भ्रम तम दूरि गयो।
मोह नींद गई काल निसानई, कुनय भगनु अथयो ॥
प्रभु० ॥ २ ॥

असुभ चोर क्रोधादि पिशाचादि, गंतर गमनु ठयो।
जडि मांगई तप तेज प्रबल बल, काम विकार नयो ॥
प्रभु० ॥ ३ ॥

चेतन चक्रवाक मति चकई, विषय विरहु विलयो।
रूपचंद चित्त कमल प्रफुल्लित सिव सिरि वास लयो ॥
प्रभु ॥ ४ ॥

[४६]

राग-जैतश्री

चेतन अनुभव घट प्रतिभास्यौ ॥
अनय पक्ष कौ मोह अंधियारौ जारौ सारौ नास्यौ।
चेतन० ॥ १ ॥

अनेकांत किरना छवि राजि, विराजत भान विकास्यौ ॥
सत्तारूप अनूपम अद्भुत ज्ञेयाकार विकास्यौं ॥
चेतन० ॥ २ ॥

आनंद कंद अमंद अमूरति सूरति मैं मन वास्यो ॥
चतुर 'रूप' के दरसत जो सुख, जानै वाकूं वास्यो ॥
चेतन० ॥ ३ ॥

[४७]

राग—जैतश्री

चेतन अनुभव घन मन भीनौं ॥
काल अनादि अविद्या बंधन सहज हुवौ बल छीनौ।
चेतन० ॥ १ ॥

घट घट प्रकट अनत नट नाटक, एक अनेकन कीनौ।
अंग अंग रंग विरंग विराजत, वाचक बचन विहीनौ ॥
चेतन० ॥ २ ॥

आपुन भोगी भुगतिन भुगता, करता भाव विलीनौं।
चतुर 'रूप' की चित्र चतुरता चीन्ही चतुर प्रवीनौ ॥
चेतन० ॥ ३ ॥

[४८]

प्रभु मेरो अपनी खुशी को दानि ॥
सेवा करि कैसी उमरो कोऊ, काहू को नहीं कानि।
प्रभु० ॥ १ ॥

स्वान समान आन को पापी, देखहु प्रभु की बानि।
भयो निहाल अमर पदुपायो, खिन इक की पहिचानि ॥
प्रभु० ॥ २ ।

सिगरौ जनमु करी प्रभु सेवा, श्रेणिक जन जिय जानि।
इतनी चूक न बकसी साहिब, भई मूल पद हानि ॥
प्रभु० ॥ ३ ॥

ऐसे प्रभु को कौन भरोसो, कीजे हरषु मन मानि ॥
रूपचंद चित सावधान पै, रहिये प्रभुहि पिछानि ॥
प्रभु० ॥ ४

[४६]

राग–केदार

नरक दुख क्यौं सहिहै तू गंवार ॥

पंच पाप नित करत न संकतु, तज परत्र की मार।
नरक० ॥ १

किंचित असुभ उदय जब आवउ, होति कत न पीर।
सोऊ न सहिन सकतु अति बिलपतु कुल हुदै सरीर ॥
नरक० ॥ २

पूरव कृत सुभ असुभ तनौ फलु, देखत दृष्टि तु हार।
तदपि न समुझ तुहि तु अनहितु मोह मदनउ जार ॥
नरक० ॥ ३

सकति संभारि महाव्रत अब, मत करहि कछु तकसीर।
रूपचंद जि सकल परिग्रह, संयम धुर धर धीर ॥
नरक० ॥ ४ ॥

[५०]

राग-केदार

जिन जिन जपति किनि दिन राति ॥
करि कलुष परिनाम निर्मल, सकल सल्यनिपाति ।
जिन० ॥ १ ॥

जपति जिहि वसु सिद्धि नव निधि, संपदा बहु भांति।
हरइ विघन अरु हरइ पातकु, होइ नित सुभ सांति ॥
जिन० ॥ २ ॥

कहा किंचित पाइ संपति, रहे वसु मदमाति।
रूपचंद चित चेति निज हित, पर हरहि परतीति ॥
जिन० ॥ ३ ॥

[५१]

राग-केदार

गुसइंया तोहि कहा जनु जाचै ॥
तूं दाता समरथु प्रभु ऐसो, जाकै लोक सबु राचै।
गुसइयां० ॥ १ ॥

सुर नर फनिपति प्रमुख अमरपद, मेरौ मनु नाहि राचै।
विविध भेष धरि धरि प्रभु नट ज्यौं, कौनु नाच सौ नाचै ॥
गुसइयां० ॥ २ ॥
तुछ त्याग लैं करो कहा जिहि, दिन दश धौकलु मांचै।
रूपचंद कहि सु कछु दीजै, जु जम वैरी सौ बांचै ॥
गुसइयां ॥ ३ ॥

[५२]

राग–बिलावल

जनमु अकारथ ही जु गयौ ॥
धरम अरथ काम पद तीनौं, एको करि न लयौ।
जनमु० ॥ १ ॥
पूरव ही सुभ करमु न कीनौं, जु सब विधि हीनु भयौ ॥
औरो जनमु जाइ जिहि इहि विधि, सोई बहुरि ठयो ॥
जनमु० ॥ २ ॥
विषयनि लागि दुसह दुख देखत, तबहूं न तनकु नयो।
रूपचंद चित चेत तू नाहीं, लाग्यौं हो तोहि दयौ ॥
जनम० ॥ ३ ॥

[५३]

राग–बिलावल

अपनौ चित्यौ कछू न होइ ॥
बिनु कृत कर्म न कछू पाईयै, आरति करि मरै भले कोइ।
अपनौ० ॥ १ ॥

लसुन कै पात्र कि वास कपूर की, कपूर के पात्र कि लसुन की होइ।
जो कछु सुभासुभ रचि राख्यौ है, वर वस अपुन ही है सोइ ॥
अपनौ० ॥ २ ॥

बाल गोपाल सबै कोइ जानत, कहा काहू कछु राख्यौ गोइ।
रूपचंद दिष्टान्त देखियत, लुनियै सोई जु राख्यौ बोइ ॥
अपनौ० ॥ ३ ॥

[५४]

राग—कल्याण

तोहि अपनपौ भूल्यौ रे भाई ॥
मोह मुगुधु हुइ रह्यौ निपट ही, देखि मनोहर वस्तु पराई ॥
तोहि० ॥ १ ॥

तैं परु, मूढ आपु करि जान्यौ, अपनी सब सुधि बुधि बिसराई।
सधन दारादि कनक करि देखत, कनक मत्त ज्यउ जनु बौराई ॥
तोहि० ॥ २ ॥

परि हरि सहज प्रकृति अपनी ते, परहि मिले जड जाति न साई।
भयो दुखी गुणु सीलु गवायौ, एको कछू भई न भलाई ॥
तोहि० ॥ ३ ॥

एक मेक हुई रह्यउ तोहि मिलि, कनक रजत व्यवहार की नाई।
लछन भेद भिन्न यह पुद्गल, कस न तेरी कसठ हराई ॥
तोहि० ॥ ४ ॥

जानि बूझि तूं इत उत खोजत, वस्तु मूठि तै धरी छिपाई।
रूपचंद वंचियै अपने पढे, इयौ कहौ कहा चतुराई॥
तोहि० ॥ ५ ॥

[५५]

राग-सारंग

देखि मनोहर प्रभु मुख चंदु ॥
लोचन नील कमल ए विगसे,
मुंचत है मकरंदु ॥ देखि० ॥ १ ॥

देखत देखत तृपति होत नहिं,
चितु चकोरु अति करतु आनन्दु।
सुख समुद्र बाढयौ सुन जानो,
कहां गयो ता महि दुख दंदु ॥ देखि० ॥ २ ॥

अंधकार जु हुतो अंतरगत,
सोऊ निपट परयौ यह मंदु।
सुपर प्रकास भयौ सबसू भन्यौ,
मेरो बन्यौ सबहि विधि चंदु ॥ देखि० ॥ ३ ॥

बरसतु बचन सुधारस बूंदनि,
भयो सकल संताप निकंदु।
रूपचन्द तन मन सहृतानै,
सु कहत बनई यह सबु छंदु ॥ देखि० ॥ ४ ॥

[५६]

राग-गूजरी

तरसत हैं ए नैननि तारे ॥

कबसु महूरत ह्वै है जिहि हौं,

जागि देखि हौ जगत उजारे ॥ तरसत० ॥ १ ॥

कैसी करो करम इहि पापी,

क्षेत्र छुडाइ दूरि करि डारे ।

जो लगि आउ प्रतिबंधक–

तौ लगि प्रभु परनाम न रहत हमारे ॥ तरसत ॥ २ ॥

अतरंग मौजूद विराजत,

ज्ञान परोक्ष न देखत सारे ।

मनु अकुलात प्रतिक्ष दरिस कहु,

कैसी करौ अवरन है भारे ॥ तरसत० ॥ ३ ॥

धन्य वह क्षेत्र काल धन्य ह्वांके,

प्रभु जे रहत समीप सुखारे ।

रूपचन्द चितावं कहा मोहि,

पायो है मारगु जिहि जन तारे ॥ तरसत० ॥ ४ ॥

[५७]

राग-सारंग

भरयौ मंद करतु बहुत अपराध,

मूढ जन नाहि न करतु कह्यौ ।

धरन कलप तर तोरन करि,
ज्यौं फिरतु कुवड़ निवह्यौ ॥ भरयौ० ॥ १ ॥
सील साल अरु संजम मन्दिर,
वर बस मारि ढह्यौ ।
किंचित इंद्रिनि के सुख कारण,
भव वनु भूल रह्यौ ॥ भरयौ० ॥ २ ॥
नरक निगोद वारि बंधन परि,
दारुण दुःख लह्यौ ।
करम महारथ कर चढि परवश,
अति संतापु सह्यौ ॥ भरयौ० ॥ ३ ॥
सुमिरि सुमिरि स्वाधीन सहज,
अन्तर अधिकु डह्यो ।
रूपचन्द प्रभु पद सेवा तदु,
इहि दुख भाजि गयौ ॥ भरयौ० ॥ ४ ॥

[५८]

राग–गौरी

राखि लै प्रभु राखिलै बड़े भाग तू पायौ ॥
नाथ अनाथ भए अब तांई,
वादि अनादि गवायौ ॥ राखिलै० ॥ १ ॥
मिथ्या देव बहुत मैं सेये,

मिथ्या गुरु भरमायौ ।
काज कछू ना सरयौ काहू तैं,
चित्त रह्यौ परिभायौ ॥ राखिलै० ॥ २ ॥
सुख की करै लालसा भ्रम तैं,
जहां तहां डहकायौ ।
सुख कौ हेतु एक तू साहिब,
ताहि न मैं मनि लायौ ॥ राखिलै ॥ ३ ॥
हौं प्रभु परम दुखी इहि–
करम कुसंगति बहुत सतायौ ।
रूपचन्द प्रभु दुख निवेरहि,
तेरै सरनै अब आयौ ॥ राखिलै० ॥ ४ ॥

[५६]

राग–एही

असदृस बदन कमल प्रभु तेरौ ॥
अमलिनु सदा सहज आनन्दितु,
लछमी कौ जु विलास बसेरौ ॥ असदृस० ॥ १ ॥
राजसु अति रज रहितु मनोहरु,
ताप विधि प्रताप बडेरौ ।
सीतल अरु जन जडता नासुन,
कोमल अति तप तेज करेरौ ॥ असदृस० ॥ २ ॥
नहि जड जनितु नहीं पुन पंकजु,

पसरयउ जस परिमलु जिस केरौ ।
रूपचन्द रस रमि रहे लोचन,
अलि ए अन करत नही फेरौ ॥ असद्दस० ॥ ३ ॥

[६०]

राग-कल्याण

काहे रे भाई भूल्यौ स्वारथ ॥
आउ प्रमान घटति दिन हूँ दिन,
जातु जु है जड जनमु अकारथ ॥ कांहे० ॥ १ ॥
काल पाइ बीते कितने नर,
सुर नर फनिपति प्रमुख महारथ ।
हम तुम सो जु बापुरो आपु,
तिहि सुथिर मन तन गुनत परमारथ ॥ कांहे० ॥ २ ॥
कुसुमित फलि तजि देखत सुन्दर,
जानि अनित्य ति सकल पदारथ ।
रूपचन्द नर भव फल लीजै,
कीजै जानि कछु परमारथ ॥ कांहे० ॥ ३ ॥

[६१]

राग-केदार

चेतन चेति चतुर सुजान ॥
कहा रंग रचि रह्यौ परसौं,
प्रीति करि अति वान ॥ चेतन० ॥ १ ॥

तू महंतु त्रिलोकपति जिय,
ग्यान गुन परधानु ।
यह अचेतन हीन पुद्‌गलु,
नाहि न तोहि समान ॥ चेतन० ॥ २ ॥
हुइ रह्यौ असमरथु आपुनु,
परु कियौ पजवान ।
निज सहज सुख छोडि परवस,
परयौ है किहिं जान ॥ चेतन० ॥ ३ ॥
रह्यौ मोहि जु मूढ यामैं,
कहा जानि गुमान ।
रूपचन्द चित चेति नर,
अपनौ न होइ निदान ॥ चेतन० ॥ ४ ॥

[६२]

राग-बिलावल

मूरति की प्रभु सूरति तेरी, कोउ नहिं अनुहारी ॥
रूप अनुपम सोभित सुंदर,
कोटि काम बलिहारी ॥ मूरति० ॥ १ ॥
सांत रूप मुनि जन मनु मोहिति,
सोहति निज उजियारी ।
जाकी जोति सूर ससि जीते,
सुर नर नयन पियारी ॥ मूरति० ॥ २ ॥

दरिसन देखत पातगु नासै,
मन वंछित सुखकारी ।
रूपचन्द त्रिभुवन चूडामनि,
पटितर कौनु तिहारी ॥ मूरति० ॥ ३ ॥

[६३]

राग–आसावरी

हौ नटवा जू मोह मेरौ नाइक ।
सो न मिल्यो जू पूरे देई लाइकु ॥ हौ० ॥ १ ॥
भव विदेस लए मोहि फिरावै,
बहु बिधि काछ कछाइन चावै ।
ज्यौं ज्यौं करम पखावजु बाजु,
त्यौं त्यौं नटत मोहि पै छाजे ॥ हौ० ॥ २ ॥
करम मृदंग रंग रस राच्यौ,
लख चौरासी स्वांग धरि नाच्यौ ॥
धरत स्वांग दारुणु दुख पायौ,
नटत नटत कछु हाथ न आयौ ॥ हौ० ॥ ३ ॥
रागादिक पर परिनति संगै,
नटत जीउ भूल्यौ भ्रम रंगै ।
हरि हरादि कू नृपति भुलाज्यौ,
जिन स्वामी तेरौ मरमु न जान्यौ ॥ हौ० ॥ ४ ॥

अब मोहि सदगुरु कहि समझायौ,
तो सौ प्रभु बडे भागनि पायौ।
रूपचन्द नटु बिनवै तोही,
अब दयाल पूरौ दै मोही ॥ हौ० ॥ ५ ॥

[६४]

राग–गंधार

मन मेरे की उलटी रीति ॥
जिनि जिनि तें तू दुख पावत है,
तिन हीं सौं पुनि प्रीति ॥ मन० ॥ १ ॥
वर्ग विरोधउ होइ आपुसौं,
परुसौं अधिक समीति ।
डहकतु बार बारजि परिग्रह,
तिन ही की परतीति ॥ मन० ॥ २ ॥
गफिल भयौ रहतु यह संतत,
बहुतै करतु अनीति ।
इतनी संका मानतु नाही,
जु वैरनि माहि वसीति ॥ मन० ॥ ३ ॥
मेरे कहै सुने नहीं मानतु,
हौ इहि पायौ जीति ।
रूपचन्द अब हारि दाउ दयौ,
कहा बहुत कैफीति ॥ मन० ॥ ४ ॥

[६५]

राग–नट नारायण

तपतु मोह प्रभु प्रबल प्रताप ॥
उतरत चढत गुननि प्रति मुनि,
फुनि जाके उदितउ ताप ॥ तपतु० ॥ १ ॥
जीते जिहि सुर नर फणपति,
सब वि असि बिनु सरचाप ।
हरि हर ब्रह्मादिक फुनि जाके,
ते न तजत निज दाप ॥ तपतु० ॥ २ ॥
जाके बस बल प्रमुख पुरुष,
बहु विधि करत विलाप ।
रूपचन्द जिन देउ एक तजि,
कौनु दुखित इहि पाप ॥ तपतु० ॥ ३ ॥

[६६

राग–नट नारायण

हौ बलि पास सिव दातार ॥
पास विस हरउ सह जिनवर,
जगत प्राण आधार ॥ हौ० ॥ १ ॥
थावर जंगम रूप विसहर,
मूल अत्तर सार ।
भूत प्रेत पिसाच डाकिनि,
साकिनी भयहार ॥ हौ० ॥ २ ॥

रोग सोग वियोग भयहर,
मोह मल्ल विदार ।
कमठ कृत उपसर्ग सर्गनि,
अचलित योग विचार ॥ हौ० ॥ ३ ॥
फणिप पद्मावती पूजित,
पाद पद्म दयालु ।
रूपचन्द जनु राख लीजें,
सरण ऊभाँ बालु ॥ हौ० ॥ ४ ॥

[६७]

राग–नट नारायण

मोहत है मनु सोहत सुन्दर ।
प्रभु पद कमल तिहारो ॥
पाटल छवि सुर नर नत सेखर
पदुम राग मनुहारे ॥ मोहत० ॥ १ ॥
जाड्य दमन संताप निवारन,
तिमिर हरन गुन भारे ।
वचन मनोहर वर नख की दुति,
चंद सूर वलि डारे ॥ मोहत० ॥ २ ॥
दरिसन दुरित हरैं चिर संचित,
मुनि हंसनि मन प्यारे ।
रूपचन्द ए लोचन मधुकर,
दरिसन होत सुखारे ॥ मोहत० ॥ २ ॥

[६८]

बनारसीदास

संवत् १६४३–१७०१)

बनारसीदास १७ वीं शताब्दी के कवि थे। इनका जन्म संवत् १६४३ में जौनपुर नगर में हुआ था। इनके पिता का नाम खरगसेन था। प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् ये व्यापार करने लगे। कभी कपड़े का, कभी जवाहरात का एवं कभी किसी वस्तु का लेन देन किया लेकिन उसमें इन्हें कभी सफलता नहीं मिली। इसीलिए डा॰ मोतीचन्द ने इन्हें असफल व्यापारी के नाम से सम्बोधित किया है। दरिद्रता ने इनका कभी पीछा नहीं छोड़ा और अन्त तक ये उससे जूझते रहे।

साहित्य की ओर इनका प्रारम्भ से ही झुकाव था। सर्व प्रथम ये शृंगार रस की कविता करने लगे और इसी चक्कर में

इश्कबाजी में भी फंसे लेकिन अचानक ही इनके जीवन में एक मोड़ आया और उन्होंने शृंगार रस पर लिखी हुई सभी कविताओं की पांडुलिपि को गोमती में बहा दिया। इश्कबाजी से निकल कर ये अध्यात्मी बन गये और जीवन भर अध्यात्म के गुण गाते रहे। ये अपने समय में ही प्रसिद्ध कवि हो गये और समाज में इनकी रचनाओं की मांग बढ़ने लगी। इनकी रचनाओं में नाममाला, नाटक समयसार, बनारसी विलास, अर्द्धकथानक, मांझा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। नाटक समयसार कवि की प्रसिद्ध अध्यात्मिक रचना है। बनारसी विलास इनकी छोटी छोटी रचनाओं का संग्रह ग्रंथ है। अर्द्धकथानक में इनका स्वयं का आत्मचरित है।

बनारसीदास प्रतिभा संपन्न एवं धन के पक्के कवि थे। हिन्दी साहित्य को इनकी देन निराली है। कवि की वर्णन करने की शक्ति अनूठी है। इनकी प्रत्येक रचना में अध्यात्म रस टपकता है इसलिए इनकी रचनायें समाज में अत्यधिक आदर के साथ पढ़ी जाती हैं।

राग-सारंग वृंदावनी

जगत में सो देवन को देव ॥
जासु चरन परसै इन्द्रादिक होय मुकति स्वयमेव ॥
जगत में० ॥ १ ॥

जो न छुधित न तृषित न भयाकुल, इन्द्री विषय न वेव ॥
जनम न होय जरा नहिं व्यापै, मिटी मरन की टेव ॥
जगत में० ॥ २ ॥

जाकै नहिं विषाद नहिं विस्मय, नहिं आठों अहमेव ॥
राग विरोध मोह नहिं जाकें, नहिं निद्रा परसेव ॥
जगत में० ॥ ३ ॥

नहि तन रोग न श्रम नहिं चिंता दोष अठारह भेव ॥
मिटे सहज जाके ता प्रभु की, करत 'बनारसि' सेव ॥
जगत में० ॥ ४ ॥

[६६]

राग—रामकली

म्हारे प्रगटे देव निरंजन ॥
अटकौ कहा कहा सर भटकत, कहा कहूँ जन रंजन ॥
म्हारे० ॥ १ ॥

खंजन दृग दृग नयनन गाऊं चाऊं चितवत रंजन ॥
सजन घट अंतर परमात्म, सकल दुरित भय रंजन ॥
म्हारे० ॥ २ ॥

वोही कामदेव होय काम घट वोही सुधारस मंजन ॥
और उपाय न मिले बनारसी, सकल करमखय खंजन ॥
म्हारे० ॥ ३ ॥

[७०]

राग–सारंग

कित गये पंच किसान हमारे ॥ कित० ॥
बोयो बीज खेत गयो निरफल, भर गये खाद पनारे ॥
कपटी लोगों से साझा कर कर हुये आप विचारे ॥
कित० ॥ १ ॥

आप दिवाना गह गह बैठो, लिख लिख कागद डारे ॥
बाकी निकसी पकरे मुकद्दम, पांचों होगये न्यारे ॥
कित० ॥ २ ॥

रूक गयो शबद नहिं निकसत, हा हा कर्म सों हारे ॥
बनारसि या नगर न बसिये, चल गये सीचन हारे ॥
कित० ॥ ३ ॥

[७१]

राग–जंगला

वा दिन को कर सोच जिय मनमें ॥
बनज किया व्यापारी तूने, टांडा लादा भारी रे ।
ओछी पूंजी जूआ खेला, आखिर बाजी हारी रे ॥

आखिर बाजी हारी, करले चलने की तय्यारी ।
इक दिन डेरा होयगा वन में ॥ वा दिन० ॥ १ ॥
झूंठे नैना उलफत बांधी, किसका सोना किसकी चांदी ॥
इक दिन पवन चलेगी आंधी, किसकी बीबी किसकी बांदी ॥
नाहक चित्त लगावै धन में ॥ वा दिन० ॥ २ ॥
मिट्टी सेती मिट्टी मिलियो, पानी से पानी ।
मूरख सेती मूरख मिलियो, ज्ञानी से ज्ञानी ॥
यह मिट्टी है तेरे तन में ॥ वा दिन० ॥ ३ ॥
कहत बनारसि सुनि भवि प्राणी, यह पद है निरवाना रे ॥
जीवन मरन किया सो नांही, सिर पर काल निशाना रे ॥
सूझ पड़ेगी बुढापे पन में ॥ वा दिन० ॥ ४ ॥

[७२]

मूलन बेटा जायो रे साधो, मूलन० ॥
जानै खोज कुटुम्ब सब खायो रे साधो० ॥
मूलन० ॥ १ ॥
जन्मत माता ममता खाई, मोह लोभ दोई भाई ।
काम क्रोध दोई काका खाये, खाई तृषना दाई ॥
साधो० ॥ २ ॥
पापी पाप परोसी खायो, अशुभ करम दोइ माया ।

मान नगर को राजा खायो, फैल परो सब गामा ॥
साधो० ॥ ३ ॥

दुरमति दादी खाई दादो, मुख देखत ही मूओ ।
मंगलाचार बधाये बाजे, जब यो बालक हूओ ॥
साधो० ॥ ४ ॥

नाम धरयों बालक को भोंदू, रूप बरन कछु नाहीं ।
नाम धंरते पांडे खाये, कहत 'बनारसि' भाई ॥
साधो० ॥ ५ ॥

[७३]

रागअष्ट-पदी मल्हार

देखो भाई महाविकल संसारी ॥
दुखित अनादि मोह के कारन, राग द्वेष भ्रम भारी ॥
देखो भाई० ॥ १ ॥

हिंसारंभ करत सुख समझै, मृषा बोलि चतुराई ।
परधन हरत समर्थ कहावै, परिग्रह बढत बडाई ॥
देखो भाई० ॥ २ ॥

वचन राख काया दृढ राखै, मिटै न मन चपलाई ।
यातैं होत और की औरैं, शुभ करनी दुख दाई ॥
देखो भाई० ॥ ३ ॥

जोगासन करि कर्म निरोधै, आतम दृष्टि न जागै ।
कथनी कथत महंत कहावै, ममता मूल न त्यागै ॥
देखो भाई० ॥ ४ ॥

आगम वेद सिद्धान्त पाठ सुनि, हिये आठ मद आनै ।
जाति लाभ कुल बल तप विद्या, प्रभुता रूप बखानै ॥
देखो भाई० ॥ ५ ॥

जड सौं राचि परम पद साधै, आतम शक्ति न सूझै ।
बिना विवेक विचार दरब के, गुण परजाय न बूझै ॥
देखो भाई० ॥ ६ ॥

जस वाले जस सुनि संतोषै, तप वाले तन सोषैं ।
गुन वाले परगुन को दोषैं, मतवाले मत पोषैं ॥
देखो भाई० ॥ ७ ॥

गुरु उपदेश सहज उदयागति, मोह विकलता छूटै ।
कहत 'बनारसि' है करुनारसि, अलख अखय निधि लूटै ॥
देखो भाई० ॥ ८ ॥

[७४]

राग-काफी

चिन्तामन स्वामी सांचा साहिब मेरा ॥
शोक हरै तिहुँ लोक को, उठ लीजतु नाम सबेरा ॥
चिन्तामन० ॥ १ ॥

सूरसमान उदोत हैं, जग तेज प्रताप घनेरा ।
देखत मूरत भाव सौं, मिट जात मिथ्यात अंधेरा ॥
चिन्तामन० ॥ २ ॥

दीनदयाल निवारिये, दुख संकट जो निस वेरा ।
मोहि अभय पद दीजिये, फिर होय नहीं भव फेरा ॥
चिन्तामन० ॥ ३ ॥

बिब विराजत आगरे, थिर थान थयो शुभ वेरा ।
ध्यान धरै विनती करैं, 'बनारसि' बंदा तेरा ॥
चिन्तामन० ॥ ४ ॥

[७५]

राग–गौरी

भौंदू भाई, देखि हिये की आंखैं ॥
जे करषैं अपनी सुख संपति, भ्रम की संपति नाखैं ॥
भौंदू भाई० ॥ १ ॥

जे आंखै अमृतरस वरसैं, परखैं केवलि वानी ।
जिन्ह आंखिन विलोकि परमारथ, होहिं कृतारथ प्रानी ॥
भौंदू भाई० ॥ २ ॥

जिन आंखिन्ह मैं दशा केवलि की, कर्म लेप नहिं लागै ।
जिन आंखिन के प्रगट होत घट, अलख निरंजन जागै ॥
भौंदू भाई० ॥ ३ ॥

जिन आंखिन सौं निरखि भेद गुन, ज्ञानी ज्ञान विचारै ।
जिन आंखिन सौं लखि स्वरूप मुनि, ध्यान धारणा धारै ॥
भौंदू भाई० ॥ ४ ॥

जिन आंखिन के जगे जगत के, लगैं काज सब झूठैं।
जिन सौं गमन होइ शिव सनमुख, विषय-विकार अपूठे ॥
भौंदू भाई० ॥ ५ ॥

जिन आंखिन में प्रभा परम की, पर सहाय नहिं लेखैं।
जे समाधि सौं तकै अखंडित, ढकै न पलक निमेखैं ॥
भौंदू भाई० ॥ ६ ॥

जिन आंखिन की ज्योति प्रगटिकै, इन आंखिन मैं भासैं।
तब इनहूँ की मिटै विषमता, समता रस परगासैं ॥
भौंदू भाई० ॥ ७ ॥

जे आंखैं पूरन स्वरूप धरि, लोकालोक लखावैं।
अब यह वह सब विकलप तजिकैं, निरविकलप पद पावैं ॥
भौंदू भाई० ॥ ८ ॥

[७६]

राग-गौरी

भौंदू भाई, समुझ सबद यह मेरा ॥
जो तू देखै इन आंखिन सौं, तामैं कछु न तेरा ॥
भौंदू भाई० ॥ १ ॥

ए आंखैं भ्रम ही सौं उपजी, भ्रम ही के रस पागी।
जहँ जहँ भ्रम तहँ तहँ इनको श्रम, तू इनही कौ रागी ॥
भौंदू भाई० ॥ २ ॥

ए आंखें दोउ रची चामकी, चामहि चाम विलोवै।
ताकी ओट मोह निद्रा जुत, सुपन रूप तू जोवै ॥
भौंदू भाई० ॥ ३ ॥

इन आंखिन कौ कौन भरोसौ, ए विनसैं छिन माहीं।
है इनको पुदगल सौं परचै, तू तो पुद्गल नाहीं ॥
भौंदू भाई० ॥ ४ ॥

पराधीन बल इन आंखिन कौ, विनु प्रकाश न सूझै।
सो परकाश अगनि रवि शशि को, तू अपनौं कर बूझै ॥
भौंदू भाई० ॥ ५ ॥

खुले पलक ए कछु इक देखहि, मुंदे पलक नहि सोऊ।
कबहूँ जाहि होंहि फिर कबहूँ, भ्रामक आंखें दोऊ ॥
भौंदू भाई० ॥ ६ ॥

जंगम काय पाय ए प्रगटै, नहि थावर के साथी ।
तू तो मान इन्हें अपने दृग, भयौ भीमको हाथी ॥
भौंदू भाई० ॥ ७ ॥

तेरे दृग मुद्रित घट-अन्तर, अन्ध रूप तू डोलै ।
कै तो सहज खुलै वे आंखें, कै गुरु संगति खोलै ॥
भौंदू भाई, समुझ शबद यह मेरा ॥ ८ ॥

राग–सारंग वृन्दावनी

विराजै 'रामायण' घटमाहि ॥

मरमी होय मरम सो जाने, मूरख मानै नाहिं ।

विराजै० ॥ १ ॥

आतम 'राम' ज्ञान गुन 'लछमन', 'सीता' सुमति समेत ।
शुभपयोग 'बानरदल' मंडित, वर विवेक 'रण खेत' ॥

विराजै० ॥ २ ॥

ध्यान 'धनुष टँकार' शोर सुनि, गई विषय दिति भाग ।
भई भस्म मिथ्यामत 'लंका', उठी धारणा 'आग' ॥

विराजै० ॥ ३ ॥

जरे अज्ञान भाव 'राक्षसकुल', लरे निकांछित 'सूर' ।
जूझे रागद्वेष सेनापति, संसै 'गढ' चकचूर ॥

विराजै ॥ ४ ॥

बलखत 'कुम्भकरण' भव विभ्रम, पुलकित मन 'दरयाव' ॥
थकित उदार वीर 'महिरावण', सेतुबंध सम भाव ॥

विराजै ॥ ५ ॥

मूछित 'मंदोदरी' दुराशा, सजग चरन 'हनुमान' ।
घटी चतुर्गति परणति 'सेना', छुटे छपक गुण 'बान' ॥

विराजै० ॥ ६ ॥

निरखि सकति गुन 'चक्र सुदर्शन' उदय 'विभीषण' दीन ।
फिरै 'कबंध' मही 'रावण की', प्राण भाव शिरहीन ॥

विराजै० ॥ ७ ॥

इह विधि सकल साधु घट, अन्तर होय सहज़ 'संग्राम'।
यह विवहार दृष्टि 'रामायण' केवल निश्चय राम॥
विराजै० ॥ ८ ॥

[७८]

राग-सारंग

हम बैठे अपनी मौन सौं॥
दिन दस के मिहमान जगत जन, बोलि बिगारैं कौनसौं।
हम० ॥ १ ॥
गये विलाय भरम के बादर, परमारथ-पथ-पौनसौं ॥
अब अन्तर गति भई हमारी, परचे राधारौनसौं ॥
हम० ॥ २ ॥
प्रगटी सुधापान की महिमा, मन नहिं लागै बौनसौं।
छिन न सुहाय और रस फीके, रुचि साहिब के लौनसौं॥
हम० ॥ ३ ॥
रहे अघाय पाय सुख संपति, को निकसै निज भौनसौं।
सहज भाव सद्‌गुरु की संगति, सुरझै आवागौनसौं॥
हम० ॥ ४ ॥

[७९]

राग-सारंग

दुविधा कब जैहै या मन की॥
कब निजनाथ निरंजन सुमिरों, तज सेवा जन-जन की॥
दुविधा० ॥ १ ॥

कब रुचि सौं पीवैं दृग चातक, बूंद अखयपद धन की।
कब सुभ ध्यान धरौं समता गहि, करूं न ममता तन की॥
दुविधा०॥ २॥

कब घट अन्तर रहै निरन्तर, दिढता सुगुरु-वचन की।
कब सुख लहौं भेद परमारथ, मिटै धारना धन की॥
दुविधा०॥ ३॥

कब घर छाँडि होहुं एकाकी, लिये लालसा वन की।
ऐसी दशा होय कब मेरी, हौं बलि बलि वा छन की॥
दुविधा०॥ ४॥

[८०]

राग–धनाश्री

चेतन तोहि न नेक संभार॥
नख सिख लों दिढ बंधन बेढे कौन करै निरवार॥
चेतन०॥ १॥

जैसैं आग पखान काठ में, लखिय न परत लगार।
मदिरापान करत मतवारो, ताहि न कछू विचार॥
चेतन०॥ २॥

ज्यों गजराज पखार आप तन, आपहि डारत छार।
आपहि उगलि पाट को कीरा, तनहिं लपेटत तार॥
चेतन०॥ ३॥

सहज कबूतर लोटन को सो, खुले न पेच अपार।
और उपाय न बनै बनारसि सुमिरन भजन अधार॥
चेतन०॥ ४॥

[८१]

राग—आसावरी

रे मन! कर सदा सन्तोष,
जातैं मिटत सब दुख दोष॥ रे मन०॥ १॥
बढत परिग्रह मोह बाढत,
अधिक तृषना होति।
बहुत ईंधन जरत जैसे,
अगनि ऊंची जोति॥ रे मन०॥ २॥
लोभ लालच मूढ जन सो,
कहत कंचन दान।
फिरत आरत नहिं विचारत,
धरम धन की हान॥ रे मन०॥ ३॥
नारकिन के पाय सेवत,
सकुचि मानत संक।
ज्ञान करि बूझै 'बनारसी'
को नृपति को रंक॥ रे मन०॥ ४॥

[८२]

राग–आसावरी

तू आतम गुण जानि रे जानि,
साधु वचन मनि आनि रे आनि ॥ तू आतम० ॥ १ ॥
भरत चक्रवर्ति षटखंड साधि,
भावना भावति लही समाधि ॥ तू आतम० ॥ २ ॥
प्रसन्नचन्द्र-रिषि भयो सरोष,
मन फेरत फिर पायो मोख ॥ तू आतम० ॥ ३ ॥
रावन समकित भयो उदोत,
तब बांध्यो तीर्थंकर गोत ॥ तू आतम० ॥ ४ ॥
सुकल ध्यान धरि गयो सुकुमाल,
पहुंच्यो पंचमगति तिहिं काल ॥ तू आतम० ॥ ५ ॥
दिढ अहार करि हिंसाचार,
गये मुकति निज गुण अवधार ॥ तू आतम० ॥ ६ ॥
देखहु परतछ भृंगी ध्यान,
करत कीट भयो ताहि समान ॥ तू आतम० ॥ ७ ॥
कहत 'बनारसि' बारम्बार,
और न तोहि छुडावण हार ॥ तू आतम० ॥ ८ ॥
[८३]

राग–बिलावल

ऐसैं यों प्रभु पाइये, सुन पंडित प्रानी।
ज्यों मथि माखन काढिये, दधि मेलि मथानी ॥
ऐसैं० ॥ १ ॥

ज्यों रसलीन रसायनी, रसरीति अराधै ।
त्यों घट में परमारथी, परमारथ साधै ॥
ऐसें० ॥ २ ॥

जैसे वैद्य विथा लहै, गुण दोष विचारै ।
तैसे पंडित पिंड की, रचना निरवारै ॥
ऐसें० ॥ ३ ॥

पिंड स्वरूप अचेत है, प्रभुरूप न कोई ।
जानै मानै रवि रहै, घट व्यापक सोई ॥
ऐसें० ॥ ४ ॥

चेतन लच्छन जीव है, जड लच्छन काया ।
चंचल लच्छन चित्त है, भ्रम लच्छन माया ॥
ऐसें० ॥ ५ ॥

लच्छन भेद विलोकिये, सुविलच्छन वेदै ।
सत्तसरुप हिये धरै, भ्रमरूप उछेदै ॥
ऐसें० ॥ ६ ॥

ज्यों रज सोधै न्यारिया, धन सौ मनकीलै ।
त्यों मुनिकर्म विपाक में, अपने रस झीलै ॥
ऐसें० ॥ ७ ॥

आप लखै जब आपको, दुविधा पद मेटै ।
सेवक साहिब एक हैं, तब को किहि भेंटै ॥
ऐसें० ॥ ८ ॥

राग–बिलावल

ऐसैं क्यों प्रभु पाइये, सुन मूरख प्राणी।
जैसे निरख मरीचिका, मृग मानत पानी॥
ऐसैं० ॥ १ ॥

ज्यों पकवान चुरैल का, विपयारस त्यों ही।
ताके लालच तू फिरै, भ्रम भूलत यों ही॥
ऐसैं० ॥ २ ॥

देह अपावन खेहकी, अपको करि मानी।
भाषा मनसा करम की, तें निज कर जानी॥
ऐसैं० ॥ ३ ॥

नाव कहावति लोक की, सो तो नहीं भूलै।
जाति जगत की कल्पना, तामैं तू भूलै॥
ऐसैं० ॥ ४ ॥

माटी भूमि पहार की, तुह संपति सूझै।
प्रगट पहेली मोह की, तू तउ न बूझै॥
ऐसैं० ॥ ५ ॥

तैं कबहूँ निज गुन विषैं, निज दृष्टि न दीनी।
पराधीन परवस्तुसों अपनायत कीनी॥
ऐसैं० ॥ ६ ॥

ज्यों मृगनाभि सुवास सों, ढूंढत बन दौरे।
त्यों तुझ मैं तेरा धनी, तू खोजत औरे॥
ऐसैं० ॥ ७ ॥

करता भरता भोगता, घट सो घट माहीं।
ज्ञान बिना सदगुरु बिना, तू समुझत नाहीं ॥
ऐसैं० ॥ ८ ॥

[८५]

राग–रामकली

मगन है आराधो साधो अलख पुरष प्रभु ऐसा।
जहां जहां जिस रस सौं राचै, तहां तहां तिस भेसा ॥
मगन है० ॥ ॥ १ ॥

सहज प्रवान प्रवान रूप में, संसै में संसैसा।
धरै चपलता चपल कहावै, लै विधान में लैसा ॥
मगन है० ॥ २ ॥

उद्यम करत उद्यमी कहिये, उदयसरुप उदैसा।
व्यवहारी व्यवहार करम में, निहचै में निहचैसा ॥
मगन है० ॥ ३ ॥

पूरण दशा धरै सम्पूरण, नय विचार में तैसा।
दरवित सदा अखै सुखसागर, भावित उतपति खैसा ॥
मगन है० ॥ ४ ॥

नाहीं कहत होइ नाहींसा, है कहिये तो हैसा।
एक अनेक रूप है वरता, कहौं कहां लौं कैसा ॥
मगन है० ॥ ५ ॥

वह अपार ज्यौ रतन अमोलिक बुद्धि विवेक ज्यौं ऐसा,
कल्पित वचन विलास 'बनारसि' वह जैसे का तैसा ॥
मगन० ॥ ६ ॥

[८६]

राग–रामकली

चेतन तू तिंहुकाल अकेला

नदी नाव संजोग मिले ज्यों
त्यों कुटंब का मेला ॥ चेतन० ॥ १ ॥

यह संसार असार रूप सब
ज्यों पटपेखन खेला ।
सुख सम्पति शरीर जल बुद बुद
बिनसत नाहीं बेला ॥ चेतन० ॥ २ ॥

मोह मगन आतम गुन भूलत,
परि तोहि गल जेला ॥
मैं मैं करत चहूँ गति डोलत,
बोलत जैसे छेला ॥ चेतन० ॥ ३ ॥

कहत 'बनारसि' मिथ्यामत तज,
होइ सुगुरु का चेला ।
तास वचन परतीत आन जिय,
होइ सहज सुरझेला ॥ चेतन० ॥ ४ ॥

[८७]

राग–भैरव

या चेतन की सब सुधि गई,
व्यापत मोहि विकलता गई ॥
है जड रूप अपावन देह,
तासौं राखै परम सनेह ॥ १ ॥
आइ मिले जन स्वारथ बंध,
तिनहि कुटम्ब कहै जा बंध ॥
आप अकेला जनमै मरै,
सकल लोक की ममता धरै ॥ २ ॥
होत विभूति दान के दिये,
यह परपंच विचारै हिये ॥
भरमत फिरै न पावइ ठौर,
ठानै मूढ और की और ॥ ३ ॥
बंध हेत को करै जु खेद,
जानै नहीं मोक्ष को भेद ।
मिटै सहज संसार निवास,
तब सुख लहै बनारसीदास ॥ ४ ॥

[८८]

राग–धनाश्री

चेतन उलटी चाल चले ॥
जड संगत तैं जडता व्यापी निज गुन सकल टले ।
चेतन० ॥ १ ॥

हित सों विरचि ठगनि सों रचि, मोह पिशाच छले।
हंसि हंसि फंद सवारि आप ही. मेलत आप गले॥
चेतन० ॥ २ ॥

आये निकसि निगोद सिंधुतें, फिर तिह पंथ टले।
कैसे परगट होय आग जो दबी पहार तले॥
चेतन० ॥ ३ ॥

भूले भव भ्रम बीचि, 'बनारसी' तुम सुरज्ञान भले।
धर शुभ ध्यान ज्ञान नौका चढ़ि, बैठें तें निकले॥
चेतन० ॥ ४ ॥

[८६]

राग आसावरी

साधो लीज्यो सुमति अकेली,
जाके समता संग सहेली॥ साधो० ॥
ये हैं सात नरक दुख हारी,
तेरे तीन रतन सुभकारी।
ये हैं अष्ट महा मद त्यागी,
तजे सात व्यसन अनुरागी ॥ साधो० ॥१ ॥
तजै क्रोध कषाय निदानी,
ये हैं मुक्तिपुरी की रानी॥
ये हैं मोहस्यों नेह निवारै,
तजे लोभ जगत उधारै ॥ साधो० ॥ २ ॥

ये हैं दर्शन निरमल कारी,
गुरू ज्ञान सदा सुभकारी ॥
कहै बनारसी श्रीजिन भजले,
यह मति है सुखकारी ॥ साधो० ॥३॥

[६०]

जगजीवन

(संवत् १६५०–१७२०)

कवि जगजीवन आगरे के रहने वाले थे। ये अग्रवाल जैन थे तथा गर्ग इनका गोत्र था। इनके पिता का नाम अभयराज एवं माता का नाम मोहनदे था। अभयराज जाफरखां के दीवान थे जो बादशाह शाहजहां के पांच हजारी उमराव थे। ये बड़े कुशल शासक थे। इनके पिता अभयराज सर्वाधिक सुखी व्यक्ति थे इनके अनेक पत्नियां थी जिनमें से सबसे छोटी मोहनदे से जगजीवन का जन्म हुआ था।

जगजीवन स्वयं विद्वान् थे और बनारसीदास के प्रशंसकों में से थे इनकी एक शैली भी थी जो अध्यात्म शैली कहलाती थी। पं० हेमराज रामचन्द्र, संघी मथुरादास, भवालदास, भगवतीदास एवं पं० जगजीवन

इस शैली के प्रमुख सदस्य थे। पं० हीरानन्द ने समवसरणविधान की रचना सम्वत् १७०१ में की थी। उन्होंने अपनी रचना में जगजीवन का परिचय निम्न प्रकार लिखा है—

> अब सुनि नगरराज आगरा, सकल सोभ अनुपम सागरा।
> साहजहां भूपति है जहां, राज करै नयमारग तहां ॥ ७५ ॥
>
> * * * * *
>
> ताकौ जाफरखां उमराउ, पंच हजारी प्रगट कराउ।
> ताकौ अगरवाल दीवान, गरग गोत सब विधि परधान ॥७६॥
>
> संघही अभैराज जानिए, सुखी अधिक सब करि मानिए।
> वनितागण नाना परकार, तिनमैं लघु मोहनदे सार ॥ ८० ॥
>
> ताकौ पूत पूत सिरमौर, जगजीवन जीवन की ठौर ॥
> सुंदर सुभगरूप अभिराम, परम पुनीत धरम धन-धाम ॥८१॥

जगजीवन ने सम्वत् १७०१ में बनारसीविलास का सम्पादन किया। इसमें बनारसीदास की छोटी-छोटी रचनाओं का संग्रह है। ये स्वयं भी अच्छे कवि थे और अब तक इनके ४५ पद उपलब्ध हो चुके हैं। इन छोटे छोटे पदों में ही इन्होंने अपने संक्षिप्त भावों को लिखने का प्रयास किया है। अधिकांश पद स्तुति परक है। 'जगत सब दीखत घन की छाया' इनका बहुत ही प्रिय पद है। कवि ने और कितनी रचनायें लिखी यह अभी खोज का विषय है।

राग–मल्हार

जगत सब दीसत घन की छाया ॥
पुत्र कलत्र मित्र तन संपति,
उदय पुद्गल जुरि आया ।
भव परनति वरषागम सोहै,
आश्रव पवन बहाया ॥ जगत० ॥ १ ॥
इन्द्रिय विषय लहरि तडता है,
देखत जाय विलाया ।
राग दोष वगु पंकति दीरघ,
मोह गहल घरराया ॥ जगत० ॥ २ ॥
सुमति विरहनी दुख दायक है,
कुमति संजोग ति भाया ।
निज संपति रतनत्रय गहि कर,
मुनि जन नर मन भाया ॥
सहज अनंत चतुष्टय मंदिर,
जगजीवन सुख पाया ॥ जगत० ॥ ३ ॥

[६१]

राग–रामकली

आछी राह बताई, हो राज म्हानै ॥ आछी० ॥
निपट अन्धेरो भव वन मांही ।
ज्ञान दीपका दिखाई ॥ हो राज० ॥ १ ॥

समकित तो बटसारी दीनी ।
चारित्र सिवका दिवाई ॥ हो राज० ॥ २ ॥
यातैं प्रभु अब सिवपुर पास्यां ।
जगजीवण सुखदाई ॥ हो राज० ॥ ३ ॥

[६२]

राग-रामकली

आजि मैं पायो प्रभु दरसण सुखकार ॥
देखि दरस जीव असी आई ।
कबहूँ न छांडू लार ॥ आजि मैं० ॥ १ ॥
दरसण करत महा सुख उपजत ।
ततछिन कटै भौ भार ॥
चैन विजय करता दुख हरता ।
जगजीवण आधार ॥ आजि मैं० ॥ २ ॥

[६३]

राग–बिलावल

करिये प्रभु ध्यान, पाप कटै भव भव के ।
या मै वहोत भलाई हो ॥ करिये । ० ॥
धरम कारिज की, या बिरिया है वो प्यारे ।
आलसी नींद निवारी हो ॥ करिये प्रभु० ॥ १ ॥

तन सुध करिकै, मन थिर कीज्ये हो प्यारे।
जिन प्रभु का नाम उचारी हो ॥ करिये प्रभु० ॥ २ ॥
जगजीवन प्रभु को, या विधि ध्यावो हो प्यारे।
येही शिव सुखकारी हो ॥ करिये प्रभु० ॥ ३ ॥

[६४]

राग-सिन्दूरिया

थे म्हारै मन भाया जी, नेम जिनंद ॥
अद्भुत रूप अनूपम राजित ।
कोटि मदन किये मंद ॥ थे म्हारै मन० ॥ १ ॥
राग दोष तैं रहित हो स्वामी।
तारे भविजन वृन्द ॥ थे म्हारै मन० ॥ २ ॥
जगजीवण प्रभु तेरे गुण गावै।
पावै सिव सुखकंद ॥ थे म्हारै मन० ॥ ३ ॥

[६५]

राग-सिन्दूरिया

दरसण कारण आया जी महाराज,
प्रभूजी थांका दरसण कारण आया जी महाराज ॥
दरसण की अभिलाष भई जब,
पुन्य वृक्ष उपजाया जी ॥
प्रभू जी० ॥ १ ॥

तुम समीप आवे कूं धायो.
कूंपल पुष्प सुथाया जी ॥
प्रभू जी० ॥ २ ॥

तुम मुखचन्द विलोकत जाकै,
फल अमृत फलि आया जी ॥
प्रभू जी० ॥ ३ ॥

जगजीवण यातै शिव सुख लहै,
निश्चै ये उर ल्याया जी ॥
प्रभू जी० ॥ ४ ॥

[६६]

राग-रामकली

निस दिन ध्याइलो जी, प्रभु को,
जो नित मंगल गाइलो जी ॥

अष्ट द्रव्य उत्तम कूं लेकरि,
प्रभु पद पूज रचाइलो जी ॥
निस दिन० ॥ १ ॥

अति उछाह मन वच तन सेती,
हरषि हरषि गुण गाइलो जी ॥
निस दिन० ॥ २ ॥

इनही सूं सुरपदवी पावै,
अनुक्रम सिवपुर जाइलो जी ॥
निस दिन० ॥ ३ ॥

श्री गुरुजी ये सिक्षा बताई,
जगजीवण सुखदाइलोजी ॥
निस दिन० ॥ ४ ॥

[६७]

राग–मल्हार

प्रभूजी आजि मैं सुख पायो
अघ नाशन छवि समता रस भीनी,
सो लखि मैं हरषायो ॥
प्रभु जी० ॥ १ ॥
भव भव के मुझि पाप कटे हैं,
ज्ञान भान दरसायो ॥
प्रभु जी० ॥ २ ॥
जगजीवण के भाग जगे हैं,
तुम पद सीस नवायो ॥
प्रभु जी० ॥ ३ ॥

[६८]

राग–मल्हार

प्रभु जी म्हारो मन हरष्यो छै आजि ॥
मोह नींद मैं सूतो छो मैं,
थे जगायो आजि प्रभु जी।

धरम सुनायो मेरो चित हुलसायो,
थे कीनूं उपगार ॥
प्रभु जी० ॥ १ ॥

निज परणति प्रभू भेद बतायो जी,
भरम मिटायो सुख पायौ थे कीनूं हितसार,
प्रभु जी० ॥ २ ॥

निज चरणा को ध्यान धारयो जी,
करम नसाये सिवपाये, जगजीवण सुखकार ॥
प्रभु जी० ॥ ३ ॥

[६६]

राग–कंनड़ो

हो मन मेरा तू धरम नैं जांणदा
जा सेये तैं शिव सुख पावै,
सो तुम नांहि पिछाणदा ॥

हिंसा कर फुनि परधन बांछा,
पर त्रिय सौं रति चांहदा ॥ हो मन० ॥ १ ॥

झूठ वचनि करि बुरो कियो पर,
परिग्रह भार वंधावदा ॥

आठ पहर तृष्णा अर संकलपै,
रूद्र भाव नै विछणदा ॥ हो मन० ॥ २ ॥

क्रोध मान छल लोभ करवो हो,
मद मिथ्यातैं न छांडिदा ॥
यह अघकरि सुख सम्पति चाहै,
सो कबहूँ न लहांवदा ॥ हो मन० ॥ ३ ॥
इनकूं त्यागि करो प्रभु सुमरण,
रतनत्रय उर लांवदा ॥
जगजीवण तैं वही सुख पावै,
अनुक्रम शिवपुर पांवदा ॥ हो० ॥ ४ ॥
[१००]

राग–बिलावल

मूरत्ति श्री जिनदेव की
मेरै नैंनन माहि वसी जी ॥
अद्‌भुत रूप अनोपम है छवि,
रागदोष न तनकसी ॥
मूरति० ॥ १ ॥
कोटि मदन वारूं या छवि पर,
निरखि निरखि आनन्द भर वरसी ॥
जगजीवन प्रभु की सुनि वांणी,
सुरग मुकति मगदरसी ॥
मूरति० ॥ २ ॥
[१०१]

राग–बिलावल

जिन थांको दरस कीयो जी
म्हारै आजि भयो जी आनन्द ॥
आजि ही नैन सुफल भये मेरे,
मिटे सकल दुख दंद ॥
मोह सुभट सब दूरि भगे हैं,
उपज्यो ज्ञान अमंद ॥ जिन थांको० ॥ १ ॥
फुनि प्रभू पूजा रची अब तेरी,
नसे कर्म सब विघ्न ॥
जगजीवण प्रभु सरण गही मैं,
दीजे सिव सुख वृंद ॥ जिन थांको० ॥ २ ॥
[१०२]

राग–मल्हार

जनम सफल कीजो जी प्रभुजी
अब थांका चरणां आया ॥
म्हे तो म्हाको जनम० ॥
अद्भुत कल्पवृक्ष चिंतामणि,
सो जग मैं हम पाया ॥
तीन लोक नायक सुखदायक,
आदिनाथ पद ध्याया ॥
जिनजी अब० ॥ १ ॥

दरस कीयो सब वांछापूरी,
तुम पद शीश नवाया ॥
जिनवांणी सुणि कै चित हरष्यो,
तत्व भेद दरसाया ॥
जिनजी अब० ॥ २ ॥

यातैं मो हिय सरधा उपजी,
रहिये चरण लुभाया ॥
जगजीवण प्रभु उचित होय सो
जो कीज्ये मन भाया ॥
जिनजी अब० ॥ ३ ॥

[१०३]

राग–बिलावल

जामण मरण मिटावो जी,
महाराज म्हारो जामण मरण० ॥
भ्रमत फिरयो चहुंगति दुख पायो,
सोही चाल छुडावो जी ॥
महाराज म्हारो जामण मरण० ॥ १ ॥
विनही प्रयोजन दीनबन्धु तुम,
सोही विरद निबाहो जी ॥
महाराज म्हारो० ॥ २ ॥

जगजीवण प्रभु तुम सुखदायक
मोकूं शिवसुख द्यावो जी ॥
महाराज म्हारो० ॥ ३ ॥

[१०४]

राग–रामकली

हो दयाल, दया करियो ॥
तनक बूंद नै यह छवि कीन्ही
जाकी लाज गहियो ॥ हो० ॥ १ ॥
मैं अजान कछु जानत नाही
गुन औगुन सब सम्भालियो ॥
राखो लाज सरन आपकी
रविसुत त्रास मिटघो ॥ हो० ॥ २ ॥
मैं अजान भगत नही कीनी
तुम दयाल नित रहियो ॥
जगजीवन की है यह विनती
आप जनसु कहियो ॥ हो० ॥ ३ ॥

[१०५]

राग–बिलावल

ये ही चित धारणां, जपिये श्री अरिहंत ॥
भ्रमत फिरै मति जग मैं जियरा
जिन चरण संग लागणां ॥
येही० ॥ १ ॥

जिन वृष तैं जो तप व्रत संजय
सोही निति-प्रति पालणां ॥
येही० ॥ २ ॥

जगजीवण प्रभु के गुण गाकरि
मुक्ति वधू सुख जाचणां ॥
येही० ॥ ३ ॥

[१०६]

राग-मल्हार

भला तुम सुं नैंनां लगे ॥
भाग बडे मैंरे सांइयां
तुम चरणन मैं पगे ॥ भला० ॥ १ ॥

तिहारो दरस जवलूं नहि पायो,
दुष्ट करम मिलि ठगे ॥ भला० ॥ २ ॥

प्रभु मूरति समता रस भीनीं,
लखि लखि फिर उमगे ॥ भला० ॥ ३ ॥

जगजीवण प्रभु ध्यान तिहारो,
दीजे सिव सुख मगे ॥ भला० ॥ ४ ॥

[१०७]

राग–सारंग

बहोत काल बीते पाये हो मेरे प्रभुदा
तारण तरण जिहाज ॥
दोउ आनन्द भये, इक दरसण,
अर धर्म श्रवण सुख साजै ॥
बहोत० ॥ १ ॥
दोउ मारिग बसे, इक श्रावग,
अर धरम महा मुनिराज ॥
बहोत० ॥ २ ॥
जगजीवण मांगै इह भवसुख,
अर परभव शिवको राज ॥
बहोत० ॥ ३ ॥
[१०८]

जगतराम

(संवत् १६८०-१७४०)

जगतराम का दूसरा नाम जगराम भी था। पद्मनन्दि पंचविंशति भाषा के कर्ता जगतराम भी संभवतः ये जगतराम ही थे जिन्होंने अपनी रचनाओं में विभिन्न नामों का उपयोग किया है। इनके पिता का नाम नदलाल एवं पितामह का नाम माईदास था। ये सिंघल गोत्रीय अग्रवाल थे। पहिले ये पानीपत में रहते थे और बाद में आगरा आकर रहने लगे। आगरा उस समय प्रसिद्ध साहित्यिक केन्द्र था तथा कुछ समय पूर्व ही वहां बनारसीदास जैसे उच्च कवि हो चुके थे।

जगतराम हिन्दी के अच्छे कवि थे। इनका साहित्यिक जीवन सम्वत् १७२० से १७४० तक रहा होगा। सम्वत् १७२२ में इन्होंने

पद्मनन्दि पचविंशिति भाषा की रचना आगरे में ही समाप्त की और इसके पश्चात् सम्यक्त्वकौमुदी कथा, आगमविलास आदि ग्रन्थों की रचना की। पदों के निर्माण की ओर इनकी रुचि कब से हुई इसका तो कोई उल्लेख नहीं मिलता लेकिन सम्भवतः ये अपने अन्तिम जीवन में भजनानन्दी हो गये थे इसलिए इन्होंने 'भजन सम नहीं काज दूजो' पद की रचना की थी। ये पद रचना एवं पद पाठ में इतने लवलीन हो गये कि इन्हें भजन पाठ के सदृश अन्य कार्य फीके नजर आने लगे।

कवि के पद साधारण स्तर के हैं। वे अधिकांशतः स्तुति परक हैं एवं स्वोद्बोधक हैं। पदों की भाषा पर राजस्थानी एवं बृज भाषा का प्रभाव है। अब तक इनके १५२ पद प्राप्त हो चुके हैं।

राग-सोरठ

रे जिय कौन सयाने कीना।
पुदगल कै रस भीना ॥
तुम चेतन ये जड जु विचारा,
काम भया अतिहीना ॥ रे जिय० ॥ १ ॥
तेरे गुन दरसन ग्यानादिक,
मूरति रहित प्रवीना ।
ये सपरस रस गंध वरन मय,
छिनक थूल छिन हीना ॥ रे जिय० ॥ २ ॥
स्वपर विवेक विचार विना सठ,
धरि धरि जनम उगीना ॥
जगतराम प्रभु सुमरि सयानैं,
और जु कछू कमीना ॥ रे जिय० ॥ ३ ॥

[१०६]

राग-रामकली

जतन विन कारज विगरत भाई ॥
प्रभु सुमरन तें सब सुधरत है,
ता मैं क्यौं अलसाई ॥ जतन० ॥ १ ॥
विषे लीनता दुख उपजावत,
लागत जहां ललचाई ॥

चतुरन कौ व्यौहार नय जहां,
समझ न परत ठगाई ॥ जतन० ॥ २ ॥
सतगुरू शिक्षा अमृत पीवौ,
अब करन कठोर लगाई ॥
ज्यौ अजरामर पद कौ पावौ,
जगतराम सुखदाई ॥ जतन० ॥ ३ ॥

[११०]

राग-ललित

कैसे होरी खेलौ खेलि न आवै ॥
प्रथम ही पाप हिंसा जा मांही,
दूजै झूठ जपावै ॥ कैसैं० ॥ १ ॥
तीजे चोर कलाविन जामें,
नैंक न रस उपजावै ॥
चौथौं परनारी सौं परचै,
सील बरत मल लावै ॥ कैसै० ॥ २ ॥
त्रसना पाप पाचवां जामें,
छिन छिन अधिक बढावै ॥
सब विधि अशुभ रूप जो कारिज,
करत ही चित चपलावै ॥ कैसैं० ॥ ३ ॥
अक्षर ब्रह्म खेल अति नीको,
खेलत हो हुलसावै ॥

जगतराम सोई खेलिये,
जो जिन धरम बढावै ॥ कैसैं० ॥ ४ ॥

[१११]

राग–कन्नडो

गुरू जी म्हारो मनरो निपट अजान ॥
बार बार समझावत हौं तुम,
तोऊ न धरत सरधान ॥ गुरू० ॥ १ ॥
विषै भोग अभिलाषा लागी,
सहत काम के वान ॥
अनरथ मूल क्रोध सो लिपटयो,
वहोरि धरै वहु मांन ॥ गुरु० ॥ २ ॥
छल को लिये चहत कारज को,
लोभ पग्यो सब थान ॥
विनासीक सब ठाठ वन्या है,
ता पर करइ गुमान ॥ गुरु० ॥ ३ ॥
गुरु प्रसाद तै सुलट होयगी,
दयो उपदेस सुदान ॥
जगतराम चित को इत ल्यावो,
सुनि सिद्धान्त वखान ॥ गुरु० ॥ ४ ॥

[११२]

(९४)

राग–बिलावल

जिनकी वानी अब मनमानी ॥
जाके सुनत मिटत सब सुविधा,
प्रगटत निज निधि छानी ॥ जिनकी० ॥ १ ॥
तीर्थंकरादि महापुरुषनि की,
जामें कथा सुहानी ॥
प्रथम वेद यह भेद जास कौ,
सुनत होय अघ हानी ॥ जिनकी० ॥ २ ॥
जिनकी लोक अलोक काल–
जुत च्यारौं गति सहनानी ॥
दुतिय वेद इह भेद सुनत होय,
मूरख हू सरधानी ॥ जिनकी० ॥ ३ ॥
मुनि श्रावक आचार बतावत,
तृतीय वेद यह ठांनी ॥
जीव अजीवादिक तत्वनि की,
चतुरथ वेद कहानी ॥ जिनकी० ॥ ४ ॥
ग्रन्थ बंध करि राखी जिन तें,
धन्य धन्य गुरु ध्यांनी ॥
जाके पढत सुनत कछु समझत,
जगतराम से प्रानी ॥ जिनकी० ॥ ५ ॥

राग-ईमन

कहा करिये जी मन वस नांही ॥
अँचि खैंचि तुम चरनन लाऊं,
छिन लागत छिन फिरि जाही ॥ कहा० ॥ १ ॥
नैंक असाता कर्म झकोरै,
सिथिल होत अति मुरझाही ॥ कहा० ॥ २ ॥
साता उदय तनक जब पावत,
तब हरषित ह्वै विकसाहीं ॥ कहा० ॥ ३ ॥
जगतराम प्रभु सुनौ वीनती,
सदा वसौं मेरे उर मांही ॥ कहा० ॥ ४ ॥
[११४]

राग-ईमन

औसर नीको वनि आयो रे ॥
नरभव उत्तम कुल सुभ संगति,
जैन धरम तैं पायो रे ॥ औसर० ॥ १ ॥
दीरघ आयु समझि हूँ पाई,
गुरु निज मन्त्र बतायो रे ॥
वानी सुनत सुनत सहजै ही,
पुन्य पदारथ भायो रे ॥ औसर० ॥ २ ॥

फमी नहीं कारण मिलिवे की,
अब करि ज्यों सुखदायो रे ॥
विषय कषाय त्यागि उर सेती,
पूजा दान लुभायो रे ॥ औसर० ॥ ३ ॥
देव धरम गुरु हो सरधानी,
स्वपर विवेक मिलायो रे ॥
जगतराम मति हूँ गति माफिक,
परि उपदेश जतायो रे ॥ औसर० ॥ ४ ॥

[११५]

राग–रामकली

अब ही हम पायौं विसराम ॥
गृह कारिज को चितवन भूले,
जब आये जिन धाम ॥ अब० ॥ १ ॥
दरसन करियो नैननि सौं,
मुख उचरे जिन नाम ॥
कर जुग जोरि श्रमण वानी सुनि,
मस्तग करत प्रनाम ॥ अब० ॥ २ ॥
सन्मुख रहें रहत चरननि सुख,
हृदय सुमरि गुन ग्राम ॥
नरभव सफल भयो या विधि सौं,
मन बांछित फल

पुन्य उद्योत होत जिय जाके,
सो आवत इह ठाम ॥
साधरमी जन सहज सुखकारी,
रलि मिलि है जगराम ॥ अब० ॥ ४ ॥

[११६]

राग–ईमन

अहो, प्रभु हमरी विनती अब तौ अवधारोगे ॥
जामन मरन महा दुख मोकौं सो तुम ही टारोगे ॥
अहो० ॥ १ ॥

हम टेरत तुम हेरत नाही, यौं तो सुजस विगारौगे ॥
हम हैं दीन, दीन बन्धू तुम यह हित कब पारौगे ॥
अहो० ॥ २ ॥

अधम उधारक विरद तुम्हारो, करणी कहा विचारौगे ॥
चरन सरन की लाज यही है जगतराम निसतारौगे ॥
अहो० ॥ ३ ॥

[११७]

राग–सिन्दूरिया

कैसा ध्यान धरा है, री जोगी ॥
नगन रूप दोऊ हाथ झुलाये,
नासा दृष्टि खरा है ॥
री जोगी० ॥ १ ॥

क्षुधा तृषादि परीसह विजयी,
आतम रंग पग्या है ॥
विषय कषाय त्यागि धरि धीरज,
कर्मन संग अड्या है ॥
री जोगी० ॥ २ ॥

वाहिर तन मलीन सा दीखत,
अंतरंग उजला है ॥
जगतराम लखि ध्यान साधु को,
नमो नमो उचरा है ॥
री जोगी० ॥ ३ ॥

[११८]

राग-बिलावल

चिरंजीवौ यह बालक री,
जो भक्तन की आधार करी ॥ चिरं० ॥
समदविजैनन्दन जग वंदन,
श्रीहरिवंश उजाल करी ॥ चिरं० ॥ १ ॥
जाकौ गरभ समै सुर पूज्यौ,
तब तैं प्रजा सभाल करी ॥
पन्द्रह मास रतन जे वरषे,
प्रगटयो तिनकौं माल करी॥ चिरं० ॥ २ ॥

तब सुरगिरि पर देवोंने जाकी,
कलश हजार प्रत्ताल करी ॥
शची इन्द्र दोऊ नांचैं गावैं,
उनकौ थो वहताल करी ॥ चिरं० ॥ ३ ॥
जाकै वालपने की 'महिमा,
देखन ही इति हाल करी ॥
वय लघु लऊ सवनि के गुरु प्रभु,
जगतराम प्रतिपाल करी ॥ चिरं० ॥ ४ ॥

[११६]

राग-सिन्दूरिया

ता जोगी चित लावो मोरे बाला ॥
संजम डोरी शील लंगोटी घुलघुल, गाठ लगावे मोरे बाला।
ग्यान गुदड़िया गल विच डाले, आसन दृढ जमावे ॥ १ ॥
अलखनाथ का चेला होकर मोहका कान फडावे मोरेवाला।
धर्न शुक्ल दोऊ मुद्राडाले, कहत पार नहीं पावे मोरे ॥ २ ॥
क्षमा की सौति गलै लगावै, करुणा नाद बजावे मोरेबाला।
ज्ञान गुफा में दीपक जोके चेतन अलख जगांवे मोरेवाला ॥ ३ ॥
अष्टकर्म काठ की धूनी ध्यानकी अगनि जलावै मोरेवाला।
उत्तम क्षमा जान भस्मीको, शुद्ध मन अंग लगावे मोरेवाला ॥४॥
इस विधि जोगी बैठ सिंहासन, मुक्तिपुरी की धावे मोरेवाला।
बीस आभूषणधार गुरु ऐसे फेरे न जगमें आवे मोरेयाला ॥ ५ ॥

राग–दरबारी कान्हरो

तुम साहिब मैं चेरा, मेरा प्रभुजी हो ॥
चूक चाकरी मो चेरा की, साहिब ही जिन मेरा ॥१॥
टहल यथाविधि बन नहीं आवे, करम रहे कर घेरा।
मेरो अवगुण इतनो ही लीजे, निश दिन सुमरन तेरा ॥२॥
करो अनुग्रह अब मुझ ऊपर मेटो अव उरझेरा।
'जगतराम' कर जोड वीनवै राखो चरणन नेरा ॥३॥

[१२१]

राग–जंगला

नहिं गोरो नहि कारो चेतन, अपनो रूप निहारो ॥
दर्शन ज्ञान मई चिन्मूरत, सकल करमते न्यारो रे ॥१॥
जाके विन पहिचान जगत में सह्यो महा दुख भारोरे।
जाके लखे उदय हो तत्क्षण, केवल ज्ञान उजारो रे ॥२॥
कर्मजनित पर्याय पायके कीनों तहां पसारो रे।
आपापरको रूप न जान्यो, तातैं भव उरझारो रे ॥३॥
अब निजमें निजकूं अवलोकूं जो हो भव सुलझारो रे।
'जगतराम' सब विधि सुख सागर पद पाऊँ अविकारो रे ॥४॥

[१२२]

राग-मल्हार

प्रभु बिन कौंन हमारो सहाई ॥
और सबै स्वारथ के साथी,
तुम परमारथ भाई ॥ प्रभु० ॥ १ ॥
भूलि हमारी ही हमकौ इह
भई महा दुखदाई ॥
विषय कषाय सरप संग सेयो,
तुमरी सुधि बिसराई ॥ प्रभु० ॥ २ ॥
उन डसियो विष जोर भयो तब,
मोह लहरि चढि आई ॥
भक्ति जडी ताके हरिवे कौं,
गुरु गानउ बताई ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥
यातैं चरन सरन आये हैं,
मन परतीति उपाई ॥
अब जगराम सहाय किये ही,
साहिब सेवक तांई ॥ प्रभु० ॥ ४ ॥

[१२३]

राग-जौनपुरी

भजन सम नहीं काज दूजो ॥
धर्म अंग अनेक यामें, एक ही सिरताज ।

करत जाके दुरत पातक, जुरत संत समाज ॥
भरत पुण्य भण्डार यातैं, मिलत सब सुख साज ॥१॥
भक्त को यह इष्ट ऐसो ज्यों क्षुधित को नाज।
कर्म ईंधन को अगनि सम, भव जलधि को पाज ॥२॥
इन्द्र जाकी करत महिमा, कहो तो कैसी लाज ॥
जगतराम प्रसाद यातैं, होत अविचल राज ॥३॥

[१२४]

राग–रामकली

मेरी कौंन गति होसी हो गुसांई ॥
पंच पाप मोसौं नही छूटै,
विकथा चारयौं भाई ॥ मेरी० ॥ १ ॥
तीन जोग मेरे वस नांही,
रागद्वेष दोऊ थाई ॥
एक निरंजन रूप तिहारो,
ताकी खवर न पाई ॥ मेरी० ॥ २ ॥
एक बार कवहुँ तिहुं सेती,
मन परतीति न आई ॥
याही तैं भव दुख भुगते,
वहु विधि आपद पाई ॥ मेरी० ॥ ३ ॥
मो सों पतित निकट जब टेरत,
कहा अन्तर लौ लाई ॥

पतित उधारक सकति जु अपनी,
राखी कव कै ताई ॥ मेरी० ॥ ४ ॥
इह कलिकाल क्षेत्र व्यापक है,
हौ हम जानत सांई ॥
जगतराम प्रभु रीति विसारी,
तुम हूँ व्याप्यौ कांई ॥ मेरी० ॥ ५ ॥

[१२५]

राग–बिलावल

सखी री विन देखे रह्यौ न जाय ॥
ये री मोहि प्रभु कौ दरस कराय ॥
सुन्दर स्याम सलौनी मूरति,
नैन रहे निरखन ललचाय ॥ सखी री० ॥ १ ॥
तन सुकमाल मार जिह मारयौ,
तासौ मोह रह्यौ थरराय ॥
जग प्रभु नेमि संग तप करनौ,
अव मोहि और न कछु सुहाय ॥ सखी री० ॥ २ ॥

[१२६]

राग–बिलावल

समझि मन इह औसर फिरि नाही ॥
नर भव पाय कहा कहिये तोहि,
रमत विषै सुख मांही ॥ समझि० ॥ १ ॥

जा तन सौं तप तपै सुगति ह्वै,
दुरगति दूरि नसाही ॥
ताकूं तू नित पोषत है रे
आप अकाज कराही ॥ समझि० ॥ २ ॥
धन कौ पाय धरम कारिज,
करि उद्यम लाही ॥
जोवन पाय सील भजिभाई,
ज्यौं अमरापुर जाही ॥ समझि० ॥ ३ ॥
तन धन जोवन पाय लाय इम,
सुमरि देव निज जाही ॥
ज्यौ जगराम अचल पद पावो,
सद्गुरु यौं समझांही ॥ समझि० ॥ ४ ॥

[१२७]

राग–रामकली

सुनि हो अरज तेरै पाय परौं ॥
तुमको दीन दयाल लख्यौ मैं,
तातैं अपनौं दुख उचरौं ॥ सुनि० ॥ १ ॥
अष्ट कर्म मोहि घेरि रहत है,
हौं इनसौं कछु नाहि करौं।
त्यौं त्यौं अति पीडै,
दुष्टनि सौं कहौं क्यौ उवरौं ॥ सुनि० ॥ २ ॥

चहुंगति मैं मो सौं जो कीनी,
सुनि सुनि कहा लौं हृदै धरौं ।।
साथि रहैं अरु दगो देय जे,
तिन संगि कैसैं जनम भरौं ॥ सुनि० ।। ३ ।।
मदीत रावरी सौं करूना निधि,
अब हो इनकौं सिथिल करौं ॥
जगतराम प्रभु न्याय नवेरौं,
कृपा तिहारी मुकति वरौं ॥ सुनि० ॥ ४ ॥

[१२८]

द्यानतराय

(संवत् १७३३-१७८३)

कविवर द्यानतराय उन प्रसिद्ध कवियों में से हैं जिनके पद, भजन, पूजा पाठ एवं अन्य रचनायें जन साधारण में अत्यधिक प्रिय हैं तथा जो सैकड़ों हजारों स्त्री पुरुषों को कण्ठस्थ हैं। कवि आगरे के रहने वाले थे किन्तु बाद में देहली आकर रहने लगे थे। इनके बाबा का नाम वीरदास एवं पिता का नाम श्यामदास था। कवि का जन्म सम्वत् १७३३ में आगरे में हुआ था।

आगरा एवं देहली में जो विभिन्न आध्यात्मिक शैलियां थी उनसे कवि का घनिष्ट सम्बन्ध था। ये बनारसीदासजी के समान विशुद्ध आध्यात्मिक विद्वान् थे तथा इसी की चर्चा में अपने जीवन को लगा

रखा था। हिन्दी के ये बड़े भारी विद्वान थे तथा काव्य रचना की ओर इनकी विशेष रुचि थी। धर्मविलास में इनकी प्रायः सभी रचनाओं का संग्रह है। कवि ने इसे करीब ३० वर्ष में पूर्ण किया था। इसमें उनके ३०० से अधिक पद, विभिन्न पूजा-पाठ एवं ४५ अन्य छोटी बड़ी रचनायें हैं। सभी रचनायें एक से एक सुन्दर एवं उत्तम भावों के साथ गुम्फित हैं।

इनके पद आध्यात्मिक रस से ओतप्रोत हैं। कवि ने आत्म तत्व को पहिचान लिया था इसीलिए उन्होंने अपने एक पद में 'अब हम आतम को पहचाना' लिखा है। आत्मा को पहचान कर उन्होंने 'अब हम अमर भये न मरेंगे' का सन्देश जगत को सुनाया। इनके स्तुति परक पद भी बहुत सुन्दर है। 'तुम प्रभु कहियत दीन दयाल, आप न जाय मुकति में बैठे हम जु रुलत जग जाल' पद कवि के मानसिक भावों का पूर्णतः द्योतक है। कवि के प्रत्येक पद का भाव, शब्द चयन एवं वर्णन शैली अति सुन्दर है। इन पदों में मनुष्य मात्र को सुमार्ग पर चलने के लिये कहा गया है।

राग–मल्हार

हम तो कबहूँ न निज घर आए ॥
पर घर फिरत वहुत दिन बीते
नांव अनेक धराये ॥ हम० ॥ १ ॥
पर पद निज पद मांनि मगन ह्वै,
पर परिणति लपटाये ।
शुद्ध बुद्ध सुख कन्द मनोहर,
आतम गुण नहिं गाये ॥ हम० ॥ २ ॥
नर पसु देवन कौ निज मान्यो,
परजै बुद्धि कहाये ।
अमल अखंड अतुल अविनासी,
चेतन भाव न भाये ॥ हम० ॥ ३ ॥
हित अनहित कछु समझ्यौ नाहीं,
मृग जल बुध ज्यौं धाए ॥
द्यानत अब निज निज पर ह्वै,
सत्‌गुरु बैन सुनाये ॥ हम० ॥ ४ ॥

[१२६]

राग–जंगला

मैं निज आतम कब ध्याऊंगा ॥
रागादिक परिणाम त्याग कै, समता सौं लौ लगाऊंगा ॥
मैं निज० ॥ १ ॥

मन बच काय जोग थिर करकै, ज्ञान समाधि लगाऊंगा।
कब हौं क्षपक श्रेणि चढि ध्याऊं, चारित मोह नशाऊंगा ॥
मैं निज० ॥ २ ॥

चारों करम घातिया हन करि परमातम पद पाऊंगा ॥
ज्ञान दरश सुख बल भण्डारा, चार अघाति बहाऊंगा ॥
मैं निज० ॥ ३ ॥

परम निरंजन सिद्ध शुद्ध पद, परमानन्द कहाऊंगा ॥
द्यानत यह सम्पति जब पाऊं, बहुरि न जग में आऊंगा ॥
मैं निज० ॥ ४ ॥

[१३०]

राग-सारंग

हम लागे आतमराम सों ॥
विनाशीक पुद्गल की छाया, कौन रमैं धन-बाम सों ॥
हम० ॥ १ ॥

समता-सुख घट में परगास्यो, कौन काज है काम सों।
दुविधाभाव जलांजुलि दीनों, मेल भयो निज आतम सों ॥
हम० ॥ २ ॥

भेद ज्ञान करि निज-पर देख्यौ, कौन विलोकै चाम सों।
उरै-परै की बात न भावै, लौ लागी गुणग्राम सों ॥
हम० ॥ ३ ॥

विकलप भाव रंक सब भाजे, झरि चेतन अभिराम सों।
द्यानत आतम अनुभव करिके छूटै भवदुख धाम सों॥
हम० ॥ ४ ॥

[१३१]

राग–आसावरी [232]

आतम अनुभव करना रे भाई॥
जब लौं भेद-ज्ञान नहिं उपजै, जनम मरण दुख भरना रे॥ १॥
आगम–पढ नव तत्त्व बखानै, व्रत तप संजम धरना रे।
आतम–ज्ञान बिना नहिं कारज, जोनी संकट परना रे॥ २॥
सकल ग्रन्थ दीपक हैं भाई, मिथ्या तमको हरना रे।
कहा करैं ते अन्ध पुरुषको, जिन्हैं उपजना मरना रे॥ ३॥
द्यानत जे भवि सुख चाहत हैं, तिनको यह अनुसरना रे।
'सोहं' ये दो अक्षर जपकै, भव–जल पार उतरना रे॥ ४॥

[१३२]

राग–आसावरी

आतम जानो रे भाई॥
जैसी उज्वल आरसी रे, तैसी आतम जोत।
काया करमन सौं जुदी रे, सबको करै उदोत॥
आतम॥ १॥

शयन दशा जागृत दशा रे, दोनों विकलप रूप ।
निर विकलप शुद्धातमा रे, चिदानन्द चिद्रूप ॥
आतम० ॥ २ ॥

तन बच सेती भिन्न कर रे, मनसों निज लवलाय ।
आप आप जब अनुभवै रे, तहा न मन बचकाय ॥
आतम० ॥ ३ ॥

छहों द्रव्य नव तत्त्वतैं रे, न्यारो आतम राम ।
द्यानत जे अनुभव करैं रे, ते पावैं शिव धाम ॥
आतम० ॥ ४ ॥

[१३३]

राग-सारंग

कर कर आतमहित रे प्रानी ॥
जिन परिणामनि बंध होत, सो परनति तज दुखदानी ॥ १ ॥
कौन पुरुष तुम कहां रहत हौ, किहिकी संगति रति मानी ॥
जे परजाय प्रकट पुद्गलमय, ते तैं क्यों अपनी जानी ॥
कर कर० ॥ २ ॥

चेतनजोति झलक तुझ मांहीं, अनुपम सो तैं विसरानी ।
जाकी पटतर लगत आन नहिं, दीप रतन शशि सूरानी ॥
कर कर० ॥ ३ ॥

आपमें आप लखो अपनो पद, 'द्यानत' करि तन मन वानी ।

परमेश्वर पद आप पाइये, यौं भाषैं केवल ज्ञानी ॥
कर कर० ॥ ४ ॥

[१३४]

राग-गौरी

देखौ भाई आतम राम विराजै ॥
छहों दरब नव तत्त्व गेय है, आपसु ग्यायक छाजै ॥
देखौ भाई० ॥ १ ॥
अरिहंत सिद्ध सूरि गुरु मुनिवर, पांचौ पद जिह मांहि ।
दरसन ग्यान चरन तप जिस मैं पटतर कोऊ नाहीं ॥
देखौ भाई० ॥ २ ॥
ग्यान चेतन कहिये जाकी, बाकी पुद्गल केरी ।
केवल ग्यान विभूति जासकै, आतम विभ्रम चेरी ॥
देखौ भाई० ॥ ३ ॥
एकेंद्री पंचेन्द्री पुद्गल, जीव अतिंद्री ग्याता ।
द्यानत ताही सुद्ध दरब कौ, जान पनो सुख दाता ॥
देखौ भाई० ॥ ४ ॥

[१३५]

राग-मांढ

अब हम आतम को पहिचाना ॥
जैसा सिद्ध क्षेत्र में राजै, तैसा घट में जाना ॥ १ ॥

देहादिक परद्रव्य न मेरे, मेरा चेतन बाना ॥
'द्यानत' जो जानै सो सयाना, नहिं जानै सो अयाना ॥ २ ॥
॥ अब हम० ॥

[१३६]

राग–मांढ

अब हम अमर भए न मरेंगे ॥
तन कारन मिथ्यात दियो तजि, क्यों करि देह धरेंगे ॥
अब हम० ॥ १ ॥
उपजैं मरैं काल तैं प्रांनी, तातैं काल हरैंगे ।
राग दोष जग बंध करत है, इनकौं नास करैंगे ॥
अब हम० ॥ २ ॥
देह विनासी मैं अविनासी, भेद ग्यान करैंगे ।
नासी जासी हम थिर वासी, चोखे ह्वो निखरैंगे ॥
अब हम० ॥ ३ ॥
मरे अनंतबार बिन समझै अब सब दुख विसरैंगे ।
द्यानत निपट निकट दो अक्षर बिन सुमरैं सुमरैंगे ॥
अब हम० ॥ ४ ॥

[१३७]

राग–श्याम कल्याण

तुम प्रभु कहियत दीन दयाल ॥
आपन जाय मुकति में बैठे, हम जु रुलत जग जाल ॥
तुम० ॥ १ ॥

तुमरो नाम जपैं हम नीके, मन वच तीनों काल।
तुम तो हमको कछू देत नहिं, हमरो कौन हवाल॥
तुम०॥ २॥

बुरे भले हम भगत तिहारे, जानत हो हम चाल।
और कछू नहिं यह चाहत हैं, राग-दोष कौ टाल॥
तुम०॥ ३॥

हमसौं चूक परी सो बकसो, तुम तो कृपा विशाल।
द्यानत एक बार प्रभु जगतैं, हमको लेहु निकाल॥
तुम०॥ ४॥

[१३८]

राग-विहागडी

जानत क्यों नहि रे, हे नर आतम ज्ञानी॥
राग दोष पुद्गल की संगति,
निहचै शुद्ध निशानी॥ जानत०॥ १॥
जाय नरक पशु नर सुर गति में,
ये परजाय विरानी॥
सिद्ध स्वरुप सदा अविनाशी,
जानत विरला प्रानी॥ जानत०॥ २॥
कियो न काहू हरै न कोई,
गुरु शिख कौन कहानी॥
जनम मरन मल रहित अमल है,
कीच बिना ज्यों पानी॥ जानत०॥ ४॥

सार पदारथ है तिहुँ जग में,
नहिं क्रोधी नहिं मानी ॥
द्यानत सो घट माहिं विराजै,
लख हूजै शिवथानी ॥ जानत० ॥ ५ ॥

[१३६]

राग--सोरठ

नहीं ऐसो जनम बारम्बार ॥
कठिन कठिन लह्यो मानुष-भव, विषय तजि मतिहार ॥
॥ नहिं० ॥ १ ॥

पाय चिन्तामन रतन शठ, छिपत उदधि मंझार ।
अंध हाथ बटेर आई, तजत ताहि गंवार ॥
॥ नहिं० ॥ २ ॥

कबहुँ नरक तिरयञ्च कबहुँ, कबहुँ सुरग विहार ।
जगत माहिं चिरकाल भ्रमियो, दुर्लभ नर अवतार ॥
॥ नहिं० ॥ ३ ॥

पाय अमृत पांव धोवे, कहत सुगुरु पुकार ।
तजो विषय कषाय द्यानत, ज्यों लहो भवपार ॥
॥ नहिं० ॥ ४ ॥

[१४०]

राग-सारंग

मोहि कब ऐसा दिन आय है ॥
सकल विभाव अभाव होहिंगे,
विकलपता मिट जाय है ॥ मोहि० ॥ १ ॥
परमातम यह मम आतम,
भेद बुद्धि न रहाय है ॥
औरन की कौ बात चलावै,
भेद विज्ञान पलाय है ॥ मोहि० ॥ २ ॥
जानै आप आप में आपा,
सो व्यवहार वलाय है ॥
नय परमाण निक्षेपनि मांही,
एक न औसर पाय है ॥ मोहि० ॥ ३ ॥
दर्शन ज्ञान चरण को विकलप,
कहौ कहां ठहराय है ॥
द्यानत चेतन चेतन ह्वै है,
पुदगल पुदगल थाय है ॥ मोहि० ॥ ४ ॥

[१४१]

राग-मांढ

अब हम आतम को पहिचान्यौ ॥
जब ही सेती मोह सुभट बल,
छिनक एक में भान्यो ॥ अब० ॥ १ ॥

राग विरोध विभाव भजे झर,
ममता भाव पलान्यौ ॥
दरशन ज्ञान चरन मैं, चेतन
न भेद रहित परवान्यौ ॥ अब० ॥ २ ॥
जिहि देखें हम और न देख्यो,
देख्यो सो सरधान्यौ ॥
ताकौ कहो कहै कैसें करि,
जा जानै जिम जान्यौ ॥ अब० ॥ ३ ॥
पूरब भाव सुपनवत देखे,
अपनो अनुभव तान्यो ॥
द्यानत ता अनुभव स्वादत ही,
जनम सफल करि मान्यो ॥ अब० ॥ ४ ॥

[१४२]

राग–सोरठ

अनहद सबद सदा सुन रे ॥
आप ही जानैं और न जानैं,
कान बिना सुनिये धुन रे ॥ अनहद० ॥ १ ॥
भमर गुंज सम होत निरन्तर,
ता अंतर गति चितवन रे ॥
द्यानत तब लौं जीवन मुक्ता,
लागत नांहि करम धुन रे ॥ अनहद० ॥ २ ॥

[१४३]

राग-भैंरु

ऐसो सुमरन करिये रे भाई।
पवन थमै मन कितहु न जाई॥
परमेसुर सौं साचौं रहीजै।
लोक रंजना भय तजि दीजै॥ ऐसो०॥ १॥
यम अरु नियम दोऊ विधि धारौं।
आसन प्राणायाम सभारौ॥
प्रत्याहार धारना कीजै।
ध्यान समाधि महारस पीजै॥ ऐसो०॥ २॥
सो तप तपौं बहुरि नहि तपना।
सो जप जपौ बहुरि नही जपना॥
सो व्रत धरौ बहुरि नही धरना।
ऐसैं मरौं बहुरि नही मरना॥ ऐसो०॥ ३॥
पंच परावर्तन लखि लीजै।
पांचौं इंद्री कौं न पतीजै॥
द्यानत पांचौ लखि लहीजै।
पंच परम गुरु सरन गहीजै॥ ऐसो०॥ ४॥

[१४४]

राग-मांढ

आयो सहज वसन्त खेलैं सब होरी होरा॥
उत बुधि दया छिमा बहु ठाढी,
इत जिय रतन सजे गुन जोरा॥ आयो०॥ १॥

ज्ञान ध्यान डफ ताल बजत हैं,
अनहद शब्द होत घनघोरा ॥
धरम सुराग गुलाल उड़त है,
समता रंग दुहूँनें घोरा ॥ आयो० ॥ २ ॥
परसन उत्तर भरि पिचकारी,
छोरत दोनों करि करि जोरा ॥
इततैं कहैं नारि तुम काकी,
उततैं कहैं कौन को छोरा ॥ आयो० ॥ ३ ॥
आठ काठ अनुभव पावक में,
जल बुझ शांत भई सब ओरा ॥
द्यानत शिव आनन्द चन्द छवि,
देखैं सज्जन नैन चकोरा ॥ आयो० ॥ ४ ॥

[१४५]

राग–कन्नडा

चलि देखैं प्यारी नेम नवल व्रत धारी ॥
राग दोष बिन सोभित मूरति ।
मुकति नाथ अविकारी ॥ चलि ० ॥ १ ॥
क्रोध विना किम करम विनासे ।
इह अचिरज मन भारी ॥ चलि० ॥ २ ॥
वचन अनक्षर सब जीय सुमझै ।
भाषा न्यारी न्यारी ॥ चलि० ॥ ३ ॥

चतुरानन सब खलक विलोकै।
पूरब मुख प्रभुकारी ॥ चलि० ॥ ४ ॥
केवल ज्ञान आदि गुन प्रगटे।
नैकु न मान कीयारी ॥ चलि० ॥ ५ ॥
प्रभु की महिमा प्रभु न कहि सकै।
हम तुम कौन विचारी ॥ चलि० ॥ ६ ॥
द्यानत नेम नाथ विन आली।
कहि मोकौ को प्यारी ॥ चलि० ॥ ७ ॥

[१४६]

राग—आसावरी

चेतन खेलै होरी ॥
सत्ता भूमि छिमा वसन्त में, समता प्रान प्रिया संग गोरी,
चेतन० ॥१॥
मन को माट प्रेम को पानी, तामें करुना केसर घोरी,
ज्ञान ध्यान पिचकारी भरि भरि, आप में छारै होरा होरी
चेतन० ॥२॥
गुरु के वचन मृदङ्ग बजत हैं, नय दोनों डफ ताल टकोरी,
संजम अतर विमल व्रत चोवा, भाव गुलाल भरैभर झोरी
चेतन० ॥३॥
धरम मिठाई तप बहुमेवा, समरस आनन्द अमल कटोरी,

द्यानत सुमति कहै सखियन सों, चिरजीवो यह जुग
जुग जोरी ॥ चेतन ॥ ४ ॥

[१४७]

राग–सोरठ

ग्यान विना सुख पाया रे, भाई ॥
भौ दस आठउ श्वास सास मैं,
साधारन लपटाया रे ॥ भाई० ॥ १ ॥
काल अनन्त यहां तोहि बीते,
जब भई मंद कषाया रे ॥
तब तू निकसि निगोद सिंधु तैं,
थावर होय न सारा रे ॥ भाई० ॥ २ ॥
क्रम क्रम निकसि भयौ विकलत्रै,
सो दुख जात न गाया रे ॥
भूख प्यास परवस सही पशुगति,
वार अनेक विकाया रे ॥ भाई० ॥ ३ ॥
नरक मांहि छेदन भेदन वहु,
पुतरी अगनि जलाया रे ॥
सीत तपत दुरगंध रोग दुख,
जानै श्री जिनराया रे ॥ भाई० ॥ ४ ॥
भ्रमत भ्रमत संसार महावन,
कबहुँ देव कहाया रे ॥

लखि पर विभव, सह्यौ दुख भारी,
मरन समै विललाया रे ॥ भाई० ॥ ५ ॥
पाप नरक पशु पुन्य सुरग वसि,
काल अनन्त गमाया रे ॥
पाप पुन्य जव भए वरावर,
तव कहुँ नर भौ जाया रे ॥ भाई० ॥ ६ ॥
नीच भयौ फिरि गरभ पड्यौ,
फिरि जनमत काल सताया रे ॥
तरुन पनौ तू धरम न चेतौ,
तन धन सुत लौ लाया रे ॥ भाई० ॥ ७ ॥
दरव लिंग धरि धरि मरि मरि तू,
फिरि फिर जग भज आया रे ॥
द्यानत सरधा जु गहि मुनिव्रत,
अमर होय तजि काया रे ॥ भाई० ॥ ८ ॥

[१४८]

राग–रामकली

जिय कौं लोभ महादुखदाई ॥
जाकी सोभा वरनी न जाई ॥
लोभ करै मूरख संसारी ।
छांडै पंडित सिव अधिकारी ॥ जिय० ॥१॥
तजि घर वास फिरै वन मांही ।
कनक कामिनी छांडै नांही ॥

लोक रिझावन कौं व्रत लीना ।
व्रत न होय ठगि ऐसा कीना० ।।जिय० ।।२।।
लोभ वसात जीव हति डारै ।
झूठ बोलि चोरी चित धारै ।।
नारि गहै परिग्रह विसतारै ।
पांच पाप करि नरक सिधारै ।। जिय० ।।३।।
जोगी जती गृही वन बासी ।
वैरागी दरवेस सन्यासी ।।
अजस खानि जस की नही रेखा ।
द्यानत जिनके लोभ विसेखा ।। जिय० ।।४।।

[१४६]

राग–सोरठ

प्रभु तेरी महिमा किह मुख गावै ।।
गरभ छमास अगाऊ कनक नग,
सुरपति नगर बनावै ।। प्रभु० ।।१।।
क्षीर उदधि जल मेरु सिंहासन,
मल मल इन्द्र न्हुलावै ।।
दीक्षा समय पालकी बैठो,
इन्द्र कहार कहावै ।। प्रभु० ।।२।।
समोसरन रिधि ग्यान महात्म्य,
किहि विधि सर्व बतावै ।।

आपन जात की बात कहा सिव,
बात सुनै भवि जावै ॥ प्रभु० ॥३॥
पंचकल्याणक थांनक स्वामी,
जो तुम मन वच ध्यावै ॥
द्यानत तिनकी कौन कथा है,
हम देखै सुख पावै ॥ प्रभु० ॥४॥

[१५०]

राग–रामकली

रे मन भज भज दीन दयाल ॥
जाके नाम लेत इक खिन में,
कटै कोटि अघ जाल ॥ रे मन० ॥ १ ॥
पार ब्रह्म परमेश्वर स्वामी,
देखत होत निहाल ।
सुमरण करत परम सुख पावत,
सेवत भाजै काल ॥ रे मन० ॥ २ ॥
इन्द्र फणिंद्र चक्रधर गावैं,
जाकौ नाम रसाल ॥
जाके नाम ज्ञान प्रकासै,
नासै मिथ्या चाल ॥ रे मन० ॥ ३ ॥
जाके नाम समान नही कछु,
ऊरध मध्य पताल ॥

सोई नाम जपौ नित द्यानत,
छांडि विषै विकराल ॥ रे मन० ॥ ४ ॥

[१५१]

राग–सोरठ

साधो छोडौ विषै विकारी ॥
जातैं तोहि महादुख कारी ॥
जौ जैन धरम कौं ध्यावै।
सो आतमीक सुख पावै ॥ ॥ १ ॥
गज फरस विषै दुख पाया।
रस मीन गंध अलि पाया ॥
लखि दीप सलभ हित कीना।
मृग नाद सुनत जिय दीना ॥ २ ॥
ये एक एक दुखदाई ।
तू पच रमत है भाई ॥
ऐ कौने सीख बताई ।
तुम्हरे मन कैसैं आई ॥ ३ ॥
इन मांहि लोभ अधिकाई ।
यह लोभ कुगति कौ भाई ॥
सो कुगति मांहि दुख भारी ॥
तू त्यागि विषै मतिधारी ॥ ४ ॥

ए सेवत सुख से लागै ।
फिर अन्त प्राण कौ त्यागै ॥
तातैं ए विषफल कहिये ।
तिन कौं कैसें करि गहिये ॥ ५ ॥
तव लौं विषया रस भावै ।
जव लौ अनुभौ नहि आवै ॥
जिन अमृत पान नहि कीना ।
तिन और रस भवि चित दीना ॥ ६ ॥
अव चहुत कहा लौ कहिये ।
कारज कहि चुप ह्वै रहिये ॥
यह लाख वात की एकै ।
मति गहौ विषै का टेकै ॥ ७ ॥
जो तजै विषै की आसा ।
द्यानत पावै सिववासा ॥
यह सतगुरु सीख वताई ।
काहूँ विरलै के जिय आई ॥ ८ ॥

[१५२]

राग—गौरी

हमारो कारज कैसे होय ॥
कारण पंच मुकति के तिन मैं के है दोय ॥
॥ हमारो॰ ॥ १ ॥

हीन संघनन लघु आऊषा अलप मनीषा जोइ।
कच्चै भाव न सधै साली सव जग देख्यौ होइ ॥
॥ हमारो० ॥ २ ॥

इन्द्री पंचसु विषयनि दौरै, मानै कह्या न कोइ।
साधारन चिरकाल वस्यौ मै, धरम विना फिर सोइ ॥
॥ हमारो० ॥ ३ ॥

चिंता वडी न कछु बन आवै, अब सब चिंता खोई।
द्यानति एक शुद्ध निज पद लखि, आप मैं आप समोई ॥
॥ हमारो• ॥ ४ ॥

[१५३]

राग–गौरी

हमारो कारज ऐसै होइ।
आतम आतम पर पर जांनै तीनौ संसै खोइ ॥
हमारो• ॥ १ ॥

अंत समाधि मरन करि तन तजि, हौहि सक्र सुर लोइ।
विविध भोग उपभोग भोगवै धरम तना फल सोइ ॥
हमारो० ॥ २ ॥

पूरी आऊ विदेह भूप ह्वै, राज संपदा भोइ।
कारण पंच लहै गहै दुधर, पच महाव्रत जोइ ॥
हमारो• ॥ ३ ॥

तीन जोग थिर सहै परीसह, आठ करम मल धोइ।
द्यानत सुख अनन्त सिव विलसैं, जनमैं मरै न कोइ ॥
हमारो० ॥ ४ ॥

[१५४]

राग–सोहनी

हम न किसी के कोई न हमारा, झूठा है जग का व्योहारा ॥
तन संबंधी सब परिवारा, सो तन हमने जाना न्यारा ॥ १ ॥
पुन्य उदय सुख का बढवारा, पाप उदय दुख होत अपारा।
पाप पुन्य दोऊ संसारा, मैं सब देखन जानन हारा ॥ २ ॥
मैं तिहुँजग तिहुँकाल अकेला, पर संबंध हुआ बहु मैला ॥
थिति पूरी कर खिर खिर जाईं, मेरे हरष शोक कछु नाहीं ॥ ३ ॥
राग-भाव तें सज्जन मानै, द्वेष-भाव ते दुर्जन माने।
राग दोष दोऊ मम नाहीं, 'द्यानत' मैं चेतन पद माहीं ॥ ४ ॥

[१५५]

राग–आसावरी

कोई निपट अनारी देख्या आतम राम ॥
जिन सौं मिलना फेर बिछरना तिनसौं कैसी यारी।
जिन कामों मैं दुख पावै है तिनसौं प्रीत करारी ॥
वे कोई० ॥ १ ॥

वाहिर चतुर मूढ़ता घर मैं, लाज सबै परहारी ।
ठग सौं नेह बैर साधुनिसौं, ए बातैं बिसतारी ॥
वे कोई० ॥ २ ॥

सिंहडा भीतर सुख मानै, अक्कल सबै बिसारी ।
जा तरु आग लगी चारो दिस, बैठ रह्यौ तिहडारी ॥
वे कोई० ॥ ३ ॥

हाड मांस लोहु की थैली, तामै चेतन धारी ।
द्यानत तीन लोक कौ ठाकुर, क्यों हो रहा भिखारी ॥
वे कोई० ॥ ४ ॥

[१५६]

राग–आसावरी

मिथ्या यह संसार है रे, झूठा यह संसार है रे ॥
जो देही वह रस सौं पोपै, सो नहिं संग चलै रे,
औरन कौं तोहि कौन भरोसौ, नाहक मोह करै रे ॥
मिथ्या ॥ १ ॥

सुख की बातैं बूझै नाहीं, दुख कौं सुख लेखै रे ।
मूढौ मांही माता डोले, साधौ नाल डरै रे ॥
मिथ्या ॥ २ ॥

झूठ कमाता झूठी खाता, झूठी जाप जपै रे ।
सच्चा सांई सूझै नाहीं, क्यौ कर पार लगै रे ॥
मिथ्या ॥ ३ ॥

जम सौं डरता फूला फिरता, करता मैं मैं मैरे ।
द्यांनत स्याना सोइ जाना, जो जप ध्यान धरै रै ॥
मिथ्या ॥ ४ ॥

[१५७]

राग–आसावरी

भाई ज्ञानी सोई कहिये ।
करम उदै सुख दुख भोगतै, राग विरोध न लहियै ॥
भाई० ॥ १ ॥

कोऊ ज्ञान क्रिया तै कोऊ, सिव मारग बतलावै ।
नय निह्चै विवहार साधिके, दोनु चित्त रिझावै ॥
भाई० ॥ २ ॥

कोऊ कहै जीव छिन भंगुर, कोई नित्य बखानै ।
परजय दरवित नय परमानै दोऊ समता आनै ॥
भाई० ॥ ३ ॥

कोई कहै उदै है सोई, कोई उद्यिम बोलै ।
द्यानति स्यादवाद सुतुला मै, दोनौं वस्तै तोलै ॥
भाई० ॥ ४ ॥

[१५८]

राग–आसावरी

भाई कौन धरम हम चालै ॥
एक कहै जिह कुल मैं आए, ठाकुर को कुल गालै ॥
भाई० ॥ १ ॥
सिवमत बोद्ध सुवेद नैयायक मीमांसक अर जैनां ।
आप सराहै आगम गाहै काकी सरधा अैना ॥
भाई० ॥ २ ॥
परमेसर पै हौ आया हो ताकी वात सुनीजे ॥
पूछै वहु तन बोलैं कोइ वडी फिकर क्या कीजे ॥
भाई० ॥ ३ ॥
जिन सब मत के न्याय साचकरि करम एक बताया ।
द्यांनति सो गुरू पूरा पाया भाग हमारा आया ॥
भाई० ॥ ४ ॥

[१५६]

राग–उभाज जोगीरासा

दुनिया मतलब की गरजी अब मोहे जान पडी ।
हरा वृक्ष पे पछी बैठा रटता नाम हरी ।
प्रात भये पंछी उड चाले जग की रीति खरी ॥ १ ॥
जब लग बैल वहे बनिया को तब लग चाह घनी ।
थकैं बैंल को कोई न पूछैं फिरता गली गली ॥ २ ॥

सत्त बांध सती उठ चाली मोह के फंद पड़ी।
'द्यानत' कहे प्रभु नही सुमरयो मुर्दा संग जली ॥ ३ ॥

[१६०]

राग–विहाग

तू तो समझ समझ रे भाई ॥
निश दिन विषय भोग लिपटाता धरम वचन ना सुहाई ॥१॥
कर मनका ले आसन मांड्यो बाहिर लोक रिझाई।
कहा भयो वक ध्यान धरेतैं जो मन थिर ना रहाई ॥२॥
मास मास उपवास किये तैं काया बहुत सुखाई।
क्रोध मान छल लोभ न जीत्यो कारज कौन सराई ॥३॥
मन वच काय जोग थिर करके त्यागो विषय कषाई।
'द्यानत स्वर्गं मोक्ष सुखदाई सत गुरु सीख बताई ॥४॥

[१६१]

राग–रामकली

झूठा सुपना यह संसार।
दीसत है विनसत नही हो बार ॥
मेरा घर सब तैं सिरदार।
रहै न सकै पल एक मझार ॥ झूठा ॥ १ ॥
मेरे धन सम्पति अतिसार।
छांडि चलै लागै न अवार ॥ झूठा ॥ २ ॥

इन्द्री विषै विषै फल धार ।
मीठे लगैं अंत खयकार ॥ झूठा० ॥ ३ ॥
मेरी देह काम उनहार ।
सो तन भयौ छिनक में छार ॥ झूठा० ॥ ४ ॥
जननी तात भ्रात सुत नारि ।
स्वारथ विना करत है धार ॥ झूठा ॥ ५ ॥
भाई सत्रु होंहिं अनिवार ।
सत्रु भई भाई वहु प्यार ॥ झूठा ॥ ६ ॥
द्यानत सुमरन भजन अधार ।
आगिलगे कछु लेहु निकार ॥ झूठा ॥ ७ ॥

[१६२]

राग-मांढ

जो तैं आतम हित नही कीना ॥
रामा रामा धन धन काजै नर भव फल नही लीना ॥
॥ जो० ॥ १ ॥
जप तप करि कै लोक रिझाये प्रभुता के रस भीना ।
अंतरगति परनमन (न) सोधे एकौ गरज सरीना ॥
॥ जो० ॥ २ ॥
बैठि सभा में बहु उपदेशे आप भए परवीना ।
ममता डोरी तोरी नाहीं उत्तम तैं भए हीना ॥
॥ जो० ॥ ३ ॥

द्यांनत मन वच काय लगाकैं जिन अनुभौ चितदीना।
अनुभौ धारा ध्यान विचारा मंदर कलस नवीना ॥
॥ जो० ॥ ४ ॥

[१६३]

राग-सोरठ

कहा देखि गरवाना रे भाई ॥
गहि अनन्त भवतैं दुख पायो,
सो नहि जात बखाना रे ॥ भाई० ॥ १ ॥
माता रूधिर पिता को बीरज,
तातै तू उपजाना रे ॥
गरभ वास नौ मास सहे दुख,
तल सिर पाउ उचाना रे ॥ भाई० ॥ २ ॥
मास आहार विगल मुख निगल्यौ,
सो तू असन गहाना रे ॥
जंती तार सुनार निकालैं,
सो दुख जनम सहाना रे ॥ भाई० ॥ ३ ॥
आठ पहर तन मल मल धौयौ,
पोख्यौं रैंन विहाना रे ॥
सो शरीर तेरे संग चल्यौ नहि,
खिन मैं खाक समाना रे ॥ भाई० ॥ ४ ॥

जनमत नारी वांछत जोवन,
समरथ दरब नसाना रे ॥
सो सुत तू अपनो करि जानैं,
अन्त जलावैं प्राण रे ॥ भाई० ॥ ५ ॥
देखत चित्त गिलाय हरैं धन,
मैथुन प्राण पलाना रे ॥
सो नारी तेरी ह्वै कैसैं,
मूये प्रेत प्रवांना रे ॥ भाई० ॥ ६ ॥
पांच चोर तेरे अन्दर पैठैं,
तैं वाना मित्राना रे ॥
खाइ पीय धन ग्यान लटकैं,
दोष तेरे सिर टाना रे ॥ भाई० ॥ ७ ॥
देव धरम गुरु रतन अमोलक,
कर अन्तर सरधाना रे ॥
द्यांनत ब्रह्म ज्ञान अनुभौ करि,
जो चाहै कल्याना रे ॥ भाई० ॥ ८ ॥

[१६४]

राग–आसावरी

कर कर सपत संगत रे भाई ॥
पान परत नर नरपत कर सो तौ पांननि सौ कर असनाई ॥
चन्दन पास नींव चन्दन ह्वैं काठ चढयो लोह तरजाई ।

पारस परस कुधात कनक ह्वै बूंद उर्द्ध पदवी पाई ॥

करई तौंबर संगति के फल मधुर मधुर सुर कर गाई ।
विष गुन करत संग औषध के ज्यौं बच खात मिटैं बाई ॥

दोष घटैं प्रगटैं गुन मनसा निरमल ह्वै तज चपलाई ।
द्यानत धन्न धन्न जिनकें घट सत संगति सरधाई ॥

[१६५]

राग–सोरठ

आतम रूप अनुपम है घट माहिं विराजै ॥
जाके सुमरन जाप सो, भव भव दुख भाजै हो ॥
॥ आतम० ॥१॥

केवल दरशन ज्ञान मैं, थिरता पद छाजै हो ॥
उपमा को तिहुँ लोक मैं, कोउ वस्तु न राजै हो ॥
॥ आतम० ॥२॥

सहै परीषह भार जो, जु महाव्रत साजै हो ॥
ज्ञान विना शिव ना लहै, बहु कर्म उपाजै हो ॥
॥ आतम० ॥३॥

तिहुं लोक तिहुं काल में, नहिं और इलाजै हो ॥
द्यानत ताको जानियें, निज स्वारथ काजैं हो ॥
॥ आतम० ॥४॥

[१६६]

राग-रामकली

देख्या मैंने नेमि जी प्यारा ॥
मूरति ऊपर करों निछावर, तन धन जोवन जीवन सारा
॥ देख्या० ॥१॥

जाके नख की शोभा आगैं कोटि काम छवि डारौं वारा।
कोटि संख्य रविचन्द छिपत हैं, वपु की द्युति है अपरम्पार
॥ देख्या० ॥२॥

जिनके वचन सुने जिन भविजन, तजि गृह मुनिवर को व्रतधारा।
जाको जस इन्द्रादिक गावैं, पावैं सुख नासैं दुख भारा ॥
॥ देख्या० ॥३॥

जाकैं केवल ज्ञान विराजत, लोकालोक प्रकाशन हारा।
चरन गहे की लाज निवाहो, प्रभु जी द्यानत भगत तुम्हारा
॥ देख्या० ॥४॥

[१६७]

राग-सोरठ

जिन नाम सुमरि मन बावरे, कहा इत उत भटके।
विषय प्रगट विष बेल है इनमें मत अटके ॥

दुरलभ नरभव पाय के नगसो मत पटकैं।
फिर पीछैं पछतायगा, अवसर जब सटकैं॥ निज०॥१॥
एक घडी है सफल जौ प्रभु-गुण रस गटकें।
कोटि वरष जीवो वृथा जो थोथा फटकैं॥ निज०॥२॥
'द्यानत' उत्तम भजन है कीजैं मन रटकें।
भव भव के पातक सबै जैंहैं तो कटकैं॥ निज०॥३॥

[१६८]

राग—भैरवी

अरहंत सुमरि मन बावरे॥ भगवंत०।
ख्याति लाभ पूजा तजि भाई।
अंतर प्रभु लौं जाव रे॥ अरहंत०॥ १॥
नर भव पाय अकारथ खोवै,
विषै भोग जु घटाव रे।
प्राण गए पछितै है मनुवां,
छिन छिन छीजै आव रे॥ अरहंत०॥ २॥
जुवती तन धन सुत मित परिजन,
गज तुरंग रथ चाव रे।
यह संसार सुपन की माया,
आंखि मीच दिखराव रे॥ अरहंत०॥ ३॥
ध्याव रे ध्याव रे अब यह दाव रे,
श्री जिन मंगल गाव रे॥

द्यानत बहुत कहा लौं कहिये,
फेर न कछु उपाव रे ॥ अरहंत० ॥ ४ ।

[१६६]

राग—विहागड़ी

अब हम नेमि जी की शरन ।
और ठौर न मन लगत है,
छांडि प्रभु के शरन ॥ अब० ॥ १ ॥
सकल भवि-अघ-दहन वारिद,
विरद तारन तरन ॥
इन्द्र चन्द फनिन्द ध्यावै,
पाय सुख दुख हरन ॥ अब० ॥ २ ॥
भरम-तम-हर-तरनि, दीपति,
करम गन खय करन ॥
गनधरादि सुरादि जाके,
गुन सकत नहि वरन ॥ अब० ॥ ३ ॥
जा समान त्रिलोक में हम,
सुन्यौं और न करन ॥
दास द्यानत दयानिधि प्रभु,
क्यों तजैंगे परन ॥ अब० ॥ ४ ॥

[१७०]

राग-कान्हरो

अब मोहे तार लेहु महावीर ।।
सिद्धारथ नंदन जगवन्दन, पाप निकन्दन धीर ।। १ ।।
ज्ञानी ध्यानी दानी जानी, बानी गहन गम्भीर ।
मोक्ष के कारण दोष निवारण, रोष विदारण वीर ।।२।।
समता सूरत आनन्द पूरत, चूरत आपद पीर ।
बालयती दृढव्रती समकिती दुख दावानल नीर ।।३।।
गुण अनन्त भगवन्त अन्त नहीं, शशि कपूर हिम हीर ।
'द्यानत' एकहू गुण हम पावें, दूर करें भव भीर ।।४।।

[१७१]

राग-सारंग

मेरी बेर कहा ढील करीजे ।
सूली सों सिंहासन कीना, सेठ सुदर्शन विपत हरीजे ।
।। मेरी बेर० ।।
सीता सती अगनि में बैठी, पावक नीर करी सगरी जी ।
वारिषेण पै खडग चलायो, फूलमाल कीनी सुथरीजी ।
।। मेरी बेर० ।।
धन्या वापी पस्यो निकालों, ता घर रिद्ध अनेक भरीजी ।
सिरीपाल सागर तैं तारयो राजभोग कै मुकती वरी जी ।।
।। मेरी वेर० ।।

सांप कियो फूलन की माला, सोमा पर तुम दया धरीजी।
द्यानत मैं कछु जांचत नाहीं, कर वैराग्य-दशा हमरी जी॥
॥ मेरी वेर० ॥

[१७२]

भूधरदास

(संवत् १७५०–१८०६)

आगरे को जिन जैन कवियों की जन्म भूमि होने का सौभाग्य मिला था उन कवियों में कविवर भूधरदास जी का उल्लेखनीय स्थान है। ये भी आगरे के ही रहने वाले थे। इनका जन्म खण्डेलवाल जैन जाति में हुआ था। ये हिंदी एवं संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। अब तक इनकी तीन रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं जिनके नाम जैन शतक, पार्श्वपुराण एवं पद संग्रह है। पार्श्वपुराण को हिन्दी के महाकाव्यों की कोटि में रखा जा सकता है। इसमें २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के जीवन का वर्णन है। पुराण सुन्दर काव्य है तथा प्रसाद गुण से युक्त है। कवि ने इसे सम्वत् १७८९ में आगरे में समाप्त किया था।

कवि के अब तक रचे ६८ पद प्राप्त हो चुके हैं। कवि ने अपने पदों में अध्यात्म की उडान भरी है। मनुष्य को अपने जीवन को व्यर्थ में ही नहीं गंवाने के लिए इन्होंने काफी समझाया है। कोई भी पाठक इनके पदों को पढकर पाप अन्याय एवं अधर्म की ओर जाने मे थोडा अवश्य हिचकेगा। अच्छे कार्यों को करने के लिए वृद्धावस्था का कभी इन्तजार नही करना चाहिये क्योंकि उसमें तो सभी इन्द्रियां शिथिल हो जाती हैं और वह स्वयं ही दूसरों के आश्रित हो जाता है। कवि की सभी रचनायें जैन समाज में अत्यधिक प्रिय रही हैं इस लिये आज भी इनकी हस्तलिखित प्रतिया प्राय. सभी ग्रंथ भण्डारों में मिलती हैं।

राग–सोरठ

अंतर उज्वल करना रे भाई ॥
कपट कृपान तजै नहीं तव लौं,
करनी काज ना सरना रे ॥ अन्तर० ॥ १ ॥
जप तप तीरथ जाप व्रतादिक,
आगम अर्थ उचरना रे ॥
विषै कषाय कींच नही धोयौ,
यौ ही पचि पचि मरना रे ॥ अन्तर० ॥ २ ॥
वाहरि भेष क्रिया सुचि उर सौं,
कीये पार उतरना रे ॥
नाही है सव लोक रंजना,
अैसे वेद उचरना रे ॥ अन्तर० ॥ ३ ॥
कामादिक मल सौं मन मैला,
भजन किये क्यों तिरना रे ॥
भूधर नील वस्त्र पर कैसे,
केसरि रंग उघरना रै ॥ अन्तर० ॥ ४ ॥

[१७३]

राग–ख्याल

गरव नहिं कीजे रे, ऐ नर निपट गंवार ॥
झूंठी काया झूंठी माया, छाया ज्यों लखि लीजे रे ॥
गरव० । १ ॥

कै छिन सांझ सुहागरू जोवन,
कैं दिन जग में जी जे रे ॥ गरव० ॥ २ ॥
बेगा चेत विलम्ब तजो नर,
बंध बढै विति छीजे रे ॥ गरव० ॥ ३ ॥
भूधर पल पल हो है भारो,
ज्यों ज्यों कमरी भीजे रे ॥ गरव० ॥ ४ ॥
[१७४]

राग–मांढ

अज्ञानी पाप धतूरा न बोय।
फल चाखन की बार भरे दृग मर है मूरख रोय ॥१॥
किंचित विषयनिके सुख कारण, दुर्लभ देह न खोय।
ऐसा अवसर फिर न मिलेगा, इस नींदडिय न सोय ॥
॥ अज्ञानी० ॥ २ ॥
इस विरियां में धरम कल्पतरु, सींचत स्याने लोय।
तू विष बोवन लागत तो सम, और अभागा कोय ॥
॥ अज्ञानी० ॥ ३ ॥
जे जगमें दुख दायक बेरस, इसही के फल सोय।
यों मन 'भूधर' जानि कै भाई, फिर क्यों भोंदू होय ॥
॥ अज्ञानी० ॥ ४ ॥
[१७५]

राग–मल्हार

अब मेरे समकित सावन आयो ॥
बीति कुरीति मिथ्यामति ग्रीषम, पावस सहज सुहायो ॥
॥ अब० ॥ १ ॥

अनुभव दामिनि दमकन लागी, सुरति घटा घन छायो।
बोलैं विमल विवेक पपीहा, सुमति सुहागिन भायो ॥
॥ अब० ॥ २ ॥

गुरुधुनि गरज सुनत सुख उपजै, मोर सुमन विहसायो।
साधक भाव अंकूर उठे बहु, जित तित हरष सवायो ॥
॥ अब० ॥ ३ ॥

भूल धूल कहि मूल न सूझत, समरस जल झर लायो।
भूधर को निकसै अब बाहिर, निज निरचू घर पायो ॥
॥ अब० ॥ ४ ॥

[१७६]

राग–विहाग

जगत जन जूवा हारि चले ॥
काम कुटिल संग बाजी मांडी,
उन करि कपट छले ॥ जगत० ॥ १ ॥
चार कषाय मयी जहँ चौपरि,
पासे जोग रले ।

इत सरवस उत कामिनी कौडी,
इह विधि भटक चले ॥ जगत० ॥ २ ॥
कूर खिलार विचार न कीन्हौं,
ह्वै है ख्वार भले ।
बिना विवेक मनोरथ काकै,
भूधर सफल फले ॥ जगत० ॥ ३ ॥

[१७७]

राग-बिलावल

नैननि को बान परी दरसन की ॥
जिन मुखचन्द चकोर चित्त मुझ,
ऐसी प्रीति करी ॥ नैननि० ॥ १ ॥
और अदेवन के चितवन को,
अब चित चाह टरी ।
ज्यों सब धूलि दबै दिशि दिशि की,
लागत मेघ झरी ॥ नैननि० ॥ २ ॥
छबी समाय रही लोचन में,
विसरत नाहिं घरी ।
भूधर कह यह टेव रहो थिर,
जनम जनम हमरी ॥ नैननि० ॥ ३ ॥

[१७८]

राग–सोरठ

अहो दोऊ रंग भरे खेलत होरी॥
अलख अमूरति की जोरी॥ अहो०॥ १॥

इतमैं आतम राम रंगीले,
उतमैं सुबुद्धि किसोरी।
या कै ज्ञान सखा संग सुन्दर,
वाकै संग समता गोरी॥ अहो०॥ २॥

सुचि मन सलिल दया रस केसरि,
उदै कलस मैं घोरी।
सुधी समझि सरल पिचकारी,
सखिय प्यारी भरि भरि छोरी॥ अहो०॥ ३॥

सत गुरु सीख तान धर पद की,
गावत होरा होरी।
पूरव बंध अबीर उड़ावत,
दान गुलाल भर झोरी॥ अहो०॥ ४॥

भूधर आजि बड़े भागिन,
सुमति सुहागिन मोरी।
सो ही नारि सुलछिनी जगमैं,
जासौं पतिनै रति जोरी॥ अहो०॥ ५॥

[१७६]

राग—ख्याल तमाशा

ऐसो श्रावक कुल तुम पाय, वृथा क्यों खोवत हो ॥

कठिन कठिन कर नर भव पाया, तुम लेखि आसान।
धर्म विसारि विषय में राचो. मानी न गुरु की आन ॥
वृथा० ॥ १ ॥

चक्री एक मतंगज पायो, ता पर ईंधन ढोयो ।
बिना विवेक बिना मति ही को, पाय सुधा पग धोयो ॥
वृथा० ॥ २ ॥

काहू सठ चिन्तामणि पायो, मरम न जानो ताय।
बायस देखि उदधि में फैंक्यो, फिर पीछे पछताय ॥
वृथा० ॥ ३ ॥

सात विसन आठों मद त्यागों, करुना चित्त विचारो।
तीन रतन हिरदै में धारो, आवागमन निवारो ॥
वृथा० ॥ ४ ॥

भूधरदास कहत भवि जन सों, चेतन अब तो सम्हारो।
प्रभु को नाम तरन तारन जपि, कर्म फंद निरवारो ॥
वृथा० ॥ ५ ॥

[१८०]

राग-ख्याल

और सब थोथी बातैं, भज ले श्री भगवान ॥

प्रभु विन पालक कोई न तेरा,
स्वारथ मति जहान ॥ और० ॥ १ ॥

परिवनिता जननी सम गिननी,
परधन जान पखान ।

इन अमलों परमेंसुर राजी,
भाषै वेद पुरान ॥ और० ॥ २ ॥

जिस उर अन्तर बसत निरंतर,
नारी औगुन खान ।

तहां कहां साहिब का वासा,
दो खांडे इक म्यान ॥ और० ॥ ३ ॥

यह मत सतगुरु का उर धरना,
करना कहि न गुमान ।

भूधर भजन न पलक विसरना,
मरना मित्र निदान ॥ और० ॥ ४ ॥

[१८१]

राग-भैरवी

गाफिल हुवा कहाँ तू डोले दिन जाते तेरे भरती में ॥
चोकस करत रहत है नाहीं, ज्यो अंजुलि जल भरती में ।
तैसे तेरी आयु घटत है बचै न विरिया मरती में ॥१॥

कंठ दबै तब नाहिं बनेगो काज बनाले सरती में।
फिर पछताये कुछ नहिं होवै, कूप खुदै नहीं जरती में ।२॥
मानुष भव तेरा श्रावक कुल यह कठिन मिला इस धरती में।
'भूधर' भव दधि चढनर उतरो समकित नवका तरती में ।।३।।

[१८२]

राग–आसावरी

चरखा चलता नाहीं (रे) चरखा हुआ पुराना (वे) ॥
पग खूंटे दो हालन लागे, उर मदरा खखरना।
छीदी हुई पांखड़ी पांसू, फिरै नहीं मनमाना ॥ १ ॥
रसना तकलीने बल खाया, सो अब कैसें खूटै।
शबद सूत सुधा नहि निकसै, घड़ी घड़ी पल टूटै ॥ २ ॥
आयु मालका नहीं भरोसा, अंग चलाचल सारे।
रोज इलाज मरम्मत चाहै, वैद बाढ़ही हारे ॥ ३ ॥
नया चरखला रंगा चंगा, सबका चित्त चुरावै।
पलटा वरन गये गुन अगले, अब देखें नहिं भावै ॥ ४ ॥
मौटा मही कातकर भाई !, कर अपना सुरझेरा।
अंत आग में ईंधन होगा, 'भूधर' समझ सवेरा ॥ ५ ॥

[१८३]

राग–पालू

पानी में मीन पियासी, मोहे रह रह आवे हांसी रे ॥
ज्ञान विना भव बन में भटक्यो,
कित जमुना कित काशी रे ॥ पानी० ॥१॥

जैसे हिरण नाभि किस्तूरी,
वन वन फिरत उदासीरे ॥ पानी० ॥२॥
'भूधर' भरम जाल को त्यागो,
मिट जाये जम की फांसी रे ॥ पानी० ॥३॥

[१८४]

राग—मल्हार

वे मुनिवर कब मिलि हैं उपगारी ॥
साधु दिगम्बर नगन निरम्बर,
संवर भूषणधारी ॥ वे मुनि० ॥ १ ॥
कंचन काच बराबर जिनकैं,
ज्यों रिपु त्यौ हितकारी ॥
महल मसान मरन अरु जीवन,
सम गरिमा अरुगारी ॥ वे मुनि० ॥ २ ॥
सम्यग्ज्ञान प्रधान पवन बल,
तप पावक परजारी ॥
सेवत जीव सुवर्ण सदा जे,
काय-कारिमा टारी ॥ वे मुनि० ॥ ३ ॥
जोरि जुगल कर भूधर विनवै,
तिन पद ढोक हमारी ॥
भाग उदय दरसन जब पाऊं,
ता दिन की बलिहारी ॥ वे मुनि० ॥ ४ ॥

[१८५]

राग-मांढ

सुनि ठगनी माया, तैं सब जग ठग खाया।
टुक विश्वास किया जिन तेरा सो मूरख पछताया॥
सुनि० ॥१॥

आभा तनक दिखाय बिज्जु ज्यों मूढमती ललचाया।
करि मद अंध धर्म हर लीनों, अन्त नरक पहुँचाया॥
सुनि० ॥२॥

केते कंथ किये तैं कुलटा, तो भी मन न अघाया।
किसहीसौं नहिं प्रीति निभाई, वह तजि और लुभाया॥
सुनि० ॥३॥

'भूधर' छलत फिरत यह सबकों भौंदू करि जग पाया।
जो इस ठगनी को ठग बैठे, मैं तिनको शिर नाया॥४॥

[१८६]

राग-ख्याल तमाशा

देख्या बीच जहान के स्वपने का अजब तमाशा वे॥
एकौंके घर मंगल गावैं पूगी मन की आसा।
एक वियोग भरे बहु रोवैं, भरि भरि नैन निरासा॥१॥
तेज तुरंगनिपै चढ़ि चलते पहरैं मलमम खासा।
रंक भये नागे अति डोलैं, ना कोइ देय दिलासा॥२॥
तरकैं राज-तखतपर बैठा, था खुशवक्त खुलासा।
ठीक दुपहरी मुद्दत आई, जंगल कीना वासा॥३॥

तन धन अथिर निहायत जगमें, पानी माहिं पतासा।
'भूधर' इनका गरव करैं जे फिट तिनका जनमासा ॥४॥

[१८७]

राग–ख्याल तमाशा

प्रभु गुन गाय रे, यह औसर फेर न पाय रे ॥
मानुष भव जौग दुहेला, दुर्लभ सतसंगति मेला।
सब बात भली बन आई, अरहन्त भजौ रे भाई ॥१॥
पहलैं चित–चीर संभारो कामादिक मैल उतारो।
फिर प्रीति फिटकरी दीजे, तब सुमरन रंग रँगीजे ॥२॥
धन जोर भरा जो कूवां, परवार बढ़ैं क्या हूवा।
हाथी चढि क्या कर लीया, प्रभु नाम विना धिक जीया ॥३॥
यह शिक्षा है व्यवहारी, निहचै की साधनहारी।
'भूधर' पैंडी पग धरिये, तब चढ़नेको चित करिये ॥४॥

[१८८]

राग–काफी होरी

अहो बनवासी पीया तुम क्यौ छारी अरज करै राजल नारी
॥ अरज० ॥

तुम तो परम दयाल सबन के, सबहिन के हितकारी।
मो कठिन क्यों भये सजना, कहीये चूक हमारी॥
॥ अरज० ॥ १ ॥

तुम विन ऐक पलक पीया मेरे जाय पहर सम भारी।
क्यों करि निस दिन भर नेमजी, तुम तौ ममता डारी ॥
॥ अरज० ॥ २ ॥

जैसे रैनि वियोगज चकई तौ बिलपै निस सारी।
आसि वांधि अपनी जिय राखै प्रात मिलयों या प्यारा ॥
मैं निरास निरधार निरमोही जिउ किम दुखयारी।
॥ अरज० ॥ ३ ॥

अब ही भोग जोग हौ बालम देखौ चित्त विचारी।
आगै रिषभ देव भी व्याही कच्छ सुकच्छ कुमारी ॥
सोही पंथ गहो पीया पाछै हो ज्यो संजम धारी ॥
॥ अरज० ॥ ४ ॥

जैसैं विरहै नदी मै व्याकुल उग्रसैन की बारी।
धनि धनि समद विजै के नंदन बुडत पार उतारी ॥
सो ही किरया करौ हम उपरि भूधर सरण तिहारी ॥
॥ अरज० ॥ ५ ॥

[१८६]

राग–विहागरो

नेमि बिना न रहै मेरो जियरा ॥
हेर री हेली तपत उर कैसो,
लावत क्यों निज हाथ न नियरा ॥
नेमि बिना० ॥ १ ॥

करि करि दूर कपूर कमल दल,
लगत करूर कलाधर सियरा ॥
नेमि बिना० ॥ २ ॥

भूधर के प्रभु नेमि पिया बिन,
शीतल होय न राजुल हियरा ॥
नेमि बिना० ॥ ३ ॥

[१६०]

राग–सोरठ

भगवंत भजन क्यों भूला रे ॥
यह संसार रैन का सुपना, तन धन वारि–बबूला रे ॥
भगवन्त० ॥ १ ॥

इस जीवन का कौन भरोसा, पावक में तृणपूला रे।
काल कुदार लिये सिर ठाडा, क्या समझै मन फूला रे॥
भगवन्त० ॥ २ ॥

स्वारथ साधै पांच पाँव तू, परमारथ को लूला रे।
कहु कैसे सुख पैहैं प्राणी काम करै दुखमूला रे॥
भगवन्त० ॥ ३ ॥

मोह पिशाच छल्यो मति मारै निजकर कंध वसूला रे।
भज श्रीराजमतीवर 'भूधर' दो दुरमति सिर धूला रे॥
भगवन्त० ॥ ४ ॥

[१६१]

राग–मांढ़

आयारे बुढापा मानी, सुधि बुधि विसरानी॥
श्रवण की शक्ति घटी, चाल चलै अटपटी।
देह लटी भूख घटी, लोचन झरत पानी॥
आयारे०॥ १॥

दांतन की पंक्ति टूटी, हाडन की संधि छूटी।
काया की नगरि लूटी, जात नहीं पहिचानी॥
आयारे०॥ २॥

बालों ने वरण फेरा, रोग ने शरीर घेरा।
पुत्रहू न आवै नेरा, औरों की कहा कहानी॥
आयारे०॥ ३॥

'भूधर' समुझि अब, स्वहित करोगे कब।
यह गति ह्वै है जब, तब पिछतैहैं प्राणी॥
आयारे०॥ ४॥

[१६२]

राग–सोरठ

होरी खेलूंगी घर आए चिदानंद॥
शिशर मिथ्यात गई अब,
आइ काल की लब्धि वसंत॥ होरी०॥१॥

पीय संग खेलनि कौं,
हम सइये तरसी काल अनन्त ॥
भाग जग्यो अब फाग रचानौ,
आयौ विरह को अंत ॥ होरी० ॥२॥
सरधा गागरि में रुचि रूपी,
केसर घोरि तुरन्त ॥
आनन्द नीर उमंग पिचकारी,
छोडूंगी नीकी भंत ॥ होरी० ॥३॥
आज वियोग कुमति सौतनिकौं,
मेरे हरष अनंत ॥
भूधर धनि एही दिन दुर्लभ,
सुमति राखी विहसंत ॥ होरी० ॥४॥

[१६३]
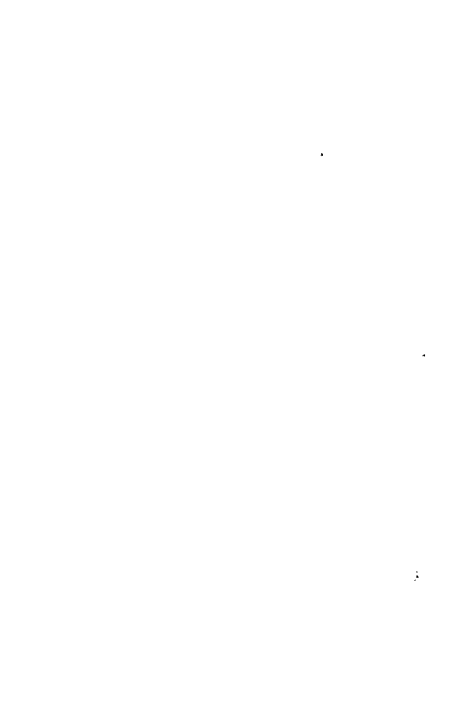
बख्तराम साह

(संवत् १७८०–१८४०)

साह बख्तराम मूलतः चाटसू (राजस्थान) के निवासी थे लेकिन बाद में ये जयपुर आकर रहने लगे थे। जयपुर नगर का लश्कर का दि० जैन मन्दिर इनकी साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र था। इनके पिता का नाम पेमराम था। इनकी जाति खण्डेलवाल एवं गोत्र साह था। इनके समय में जयपुर धार्मिक सुधार आंदोलनों का केन्द्र था और महापंडित टोडरमल जी उसके नेता थे। बख्तराम प्राचीन परम्पराओं में सुधार के सम्भवतः पक्षपाती नहीं थे और इसी उद्देश्य से इन्होंने पहिले 'मिथ्यात्व खण्डन' और बाद में 'बुद्धि विलास' की रचना की थी। मिथ्यात्व खण्डन में १४२३ दोहा चौपाई छन्द हैं तथा वह सम्वत् १८२१ की

रचना है। इसी प्रकार बुद्धिविलास में १५२३ दोहा, चौपाई एवं १८२७ उसका रचना काल है। बुद्धिविलास के आरम्भ में आमेर एवं जयपुर राज्य का विस्तृत वर्णन मिलता है जो इतिहास के विद्यार्थियों के लिये भी अच्छी रचना है।

बख्तराम की उक्त रचनाओं के अतिरिक्त पद भी पर्याप्त संख्या में मिलते है। जो भक्ति एवं आध्यात्मिक विषयों के अतिरिक्त नेमि-राजल के जीवन से सम्बन्धित हैं। पदों एवं रचनाओं की भाषा राजस्थानी है।

राग–पूरवी

तुम दरसन तैं देव सकल अघ मिटि है मेरे ॥
कृपा तिहारी तैं करूणा निधि,
उपज्यौ सुख अछेव ॥ सकल० ॥ १ ॥
अब लौं तिहारे चरन कमल की,
करी न कब हूँ सेव ॥
अबहूँ सरनै आयौ तब तैं,
छूटि गयौ अहमेव ॥ सकल० ॥ २ ॥
तुम से दानी और न जग मैं,
जांचत हौं तजि भेव ॥
बखतराम के हिये रहौ तुम,
भक्ति करन की टेव ॥ सकल० ॥ ३ ॥

[१६४]

राग–ललित

दीनानाथ दया मो पै कीजिये ।
मोसो अधम उधारि प्रभु जग मांझि यह लख लीजिये ॥
दीनानाथ० ॥१॥
बिन जाने कीने अति पातिग मैं तिन उर दृष्टि न दीजिये ।
निज बिरद सम्हारि कृपाल अबै भव वारि तैं पार करीजिये ॥
दीनानाथ० ॥२॥

विनती बख्ता की सुनो चित दे जब लो सिव वास लहीजिये ;
तब लो तेरी भक्ति रहो उर मैं कोटि बात की बात कहीजिये ॥
दीनानाथ० ॥३॥

[१६५]

राग–धनासिरी

तुम विन नहि तारै कोइ।
जे ही तिरत जगत में तिन परि,
कृपा तिहारी होइ ॥ तुम० ॥ १ ॥
इन विषियन कै रंग राचि कै,
विषवेली मैं वोइ ॥ तुम० ॥ २ ॥
आय परयौ हुँ सरनि तिहारै,
विकलपता सब खोइ ॥ तुम० ॥ ३ ॥
दीन जानि बाबा बखता कै,
करौ उचित है सोइ ॥ तुम० ॥ ४ ॥

[१६६]

राग–नट

सुमरन प्रभुजी को करि रे प्रानी ॥
कोन भरोसे तू सोवै निसिदिन,
अष्ट करम तेरे अरि रे ॥१॥

इनके मेरे रे गये हैं नरकिहि,
रावन आदि भये महिमानी।
गये अनेक जीव अनगिनती,
तिनकी अब कहा कहिये कहानी ॥२॥
इनके वसि नाना विधि नाच्यों,
तामैं कहो कौन सिधि जानी॥
लख चौरासी मैं फिर आयौ,
अजहूँ समझि समझि अग्यानी ॥३॥
यह जानि भजि वीतराग को,
और कछु मन मैं मति आनी।
बखतराम भवदधि तिर है,
मुक्ति वधू सुख पै है सग्यानी ॥४॥

[१६७]

राग-झंझोटी

इन करमौं तै मेरा जीव डरदा हो ॥ इन० ॥
इनही के परसंग तै सांई,
भव भव मैं दुख भरदा हो ॥ इन० ॥१॥
निमष न संग तजत ये मेरा,
मैं बहुतेरा ही तडफदा हो ॥ इन० ॥२॥
ये मिलि वहौत दीन लखि मो कों,
आठों ही जाम रहै लरदा हो ॥ इन० ॥३॥

दुख और दरद की मैं सब ही अखदा,
प्रभु तुम सौं नाही परदा हो ॥ इन० ॥४॥
बखतराम कहै अब तौ इनका,
फेरि न कीजिये आरजूदा हो ॥ इन० ॥५॥

[१९८]

राग—गौडी

चेतन तैं सब सुधि विसरानी भइया ॥
झूठौं जग सांचौ करि मान्यौ,
सुनी नही सतगुरु की बानी भइया ॥ चे० ॥१॥
भ्रमत फिरयौ चहुँगति मैं अब तौ,
भूख त्रिसा सही नींद निसानी भइया ॥ चे० ॥२॥
ये पुद्गल जड जानि सदा ही,
तेरौ तौं निज रूप सग्यानी भइया ॥ चे० ॥३॥
बखतराम सिव सुख तब पै है,
ह्वै है तब जिनमत सरधानी भइया ॥ चे० ॥४॥

[१९९]

राग—खंभावचि

चेतन नरभव पाय कै हो जानि वृथा क्यौं खोवै छै।
पुद्गल कै कै रंग राचि कै हो,
मोह मगन होय सोवै छै० ॥ १ ॥

ये जड रूप अनादि को,
तोहि भव भव मांझि विगोवै छै ॥
भूलि रह्यो भ्रम जाल मैं,
तु आयो आय लकोवै छै ॥ क्यौ ॥२॥
विषयादिक सुख त्यागि कैं,
तू ग्यान रतन कि न जोवै छै ॥
वखतराम जाकै उदै हो,
मुक्तिवधू सुख होवै छै ॥ क्यौ० ॥३॥

[२००]

राग-कानरो नायकी

चेतन वरज्यो न मांनै, उरझ्यों कुमति पर नारी सौं ॥
सुमति सी सुखिया सों नेह न जोरत,
रूसि रह्यो वर नारि सों ॥ चेतन० ॥१॥
रावन आदि भये वसि जाकै,
नहि डरयो कुलगारि सों।
नरक तने नाना दुख पायो,
नेह न तज्यो हे गँवारि सों ॥ चेतन० ॥२॥
कहिये कहा कुटलताइ जाकी,
जीते न कोउ अकारि सों ।
बखत बडे जिन सुमति सों नेह कीन्हों,
ते तिरे भव हैं बारि सौं ॥ चेतन० ॥३॥

[२०१]

राग-रामकली

अब तो जानी है जु जानी ।
प्रभु नेम भए हो ग्यानी ॥
तजि गृहवास चढे गिरनेरी ।
जुगति जोग की ठानी ॥
तीन लोक में महिमा प्रगटी ।
ह्वै बैठे निरवानी ॥ अब तो० ॥१॥
लोग दिखावन को तुम पल मैं ।
छांडि रजमती रानी ॥
लोभ तज्यो हम कैसे समझै ।
मुक्ति वधू मनमानी ॥ अब तो० ॥२॥
कीरति करुणां सिंधु तिहारी ।
का पै जाय बखानी ॥
बखतराम कै प्रभु जादोपति ।
भविजन को सुखदानी ॥ अब तो० ॥३॥

[२०२]

राग–आसावरी

म्हारा नेम प्रभु सौं कहि ज्यों जी ॥
म्हे भी तप करिवा संग चालां,
प्रभु घडीयक उभा रहिज्यो जी ॥ म्हारा० ॥१॥

लार रावत्रा मै काइ थाने प्रभु,
वुरी भी कहै तो सहि ज्यो जी ॥ म्हारा० ॥३॥
भव संसार उदधि मै वूडत,
हाथ हमारो गहिज्यो जी ॥ म्हारा ॥३॥
वखतराम के प्रभु जादौंपति,
लाज; विरद की निवहिज्यो जी ॥ म्हारा० ॥४॥

[२०३]

राग–गौडी

जब प्रभु दूरि गये तब चेती ॥ जब० ॥
अब तौ फिरै नही कवहूँ,
कोऊ कहौ किन केतो ॥ जब० ॥ १ ॥
वे तो जाय चढे गिरनेरी,
छांडे सकल जनेती ।
होय दिगम्बर लौंच लई कर,
तू रहि गई पछेती ॥ जब० ॥ २ ॥
ध्यान धरयौ जिन चिदानन्द कौ,
सहै परीसह जेती ॥
कर्म काटि वे जाय मिलेगें,
मुक्ति कामिनी सेती ॥ जब० ॥ ३ ॥
चलिये वेग सरन प्रभु हो कैं,
और विचार न हेती ॥

वडे वखत बन कृपा सिधु कौं,
जे ध्यावै वै धनिवेती ॥ जव० ॥ ४ ॥

[२०४]

राग–भूपाली

सखी री जहां लै चलिरी।
अरी जहां नेम धरत है ध्यान ॥
उन विन मोहि सुहात न पलहूँ,
तलफत है मेरे प्रांण ॥ सखी री० ॥ १ ॥
कुटंब काज सब लागत फीके,
नैक न भावत आन ॥
अब तो मन मेरो प्रभु ही कै,
लग्यौ है चरन कमलान ॥ सखी री० ॥ २ ॥
तारन तरन विरद है जिनको,
यह कीनी परमान ॥
वखतराम हम कुं हूँ तारोगे,
करुणा कर भगवान ॥ सखी री० ॥ ३ ॥

[२०५]

राग–परज

देखो भाई जादोपतिनै कहा करी री ॥
पसुयन कों मिस करि रथ फेरयो,
गिरि परि दीच्या धरी री ॥ देखो० ॥ १ ॥

हे हां काहे को प्रभु जोग कमायो,
त्रिसना तन की न करी री ॥
हेमसी तिय मन कुं नही भाइ,
मुक्ति बधु को वरी री ॥ देखो० ॥ २ ॥
बखतराम प्रभु की गति हमको,
जांनी क्यों हूँ न परी ॥
जब चरनारविंद हूं निरखौं,
सो ही सफल धरी ॥ देखो० ॥ ३ ॥

[२०६]

राग भैरू

तू ही मेरा समरथ साई ॥
तो सो खांवद पाय कृपानिधि,
कैसे और की सरन गहाई ॥ तू ही० ॥ १ ॥
जग तीनों सब तोकूं जानत,
गुरु जन हूँ ग्रंथनि मैं गाई ।
परभव में जो शिष सुख दे है,
या भव की तौं कौन चलाई ॥ तू ही० ॥ २ ॥
हुतो भरोसो मोकूं तेरो,
दोडि हमारी करि है सहाई ।
जानि परी कलिकाल असर यह,
तुमहूँ पै गयौ व्यापी गुसाई ॥ तू ही० ॥ ३ ॥

भाग्य हमारे लिख्यौ सही हो है,
सो तुम ही काहे जपाई।
होनी होय सो होय पै तेरो,
अधम उधारन विरद लजाई ॥ तू ही० ॥ ४ ॥
तातै भवदुख मेटि करो सुख,
तो तुम सांचों विरद कहाई।
बखतराम के प्रभु जादोंपति,
दीन दुखी लखि देहुँ निवाही ॥ तू ही० ॥ ५ ॥

[२०७]

नवलराम

(संवत् १७६०-१८५५)

नवलराम १८ वीं शताब्दी के कवि थे। ये बसवा (राजस्थान) के रहने वाले थे। महापंडित दौलतराम जी कासलीवाल से इनका घनिष्ट सम्बन्ध था और इन्हीं की प्रेरणा से इनको साहित्य की ओर रुचि हुई थी। वर्द्धमान पुराण को उन्होंने संवत् १८२५ में समाप्त किया था। कवि के पद जैन समाज में अत्यधिक प्रिय है और उन्हें बड़े चाव से धार्मिक उत्सवों एवं आयोजनों में गाया जाता है। अब तक इनके २२२ पद प्राप्त हो चुके हैं। वर्द्धमान पुराण के अतिरिक्त इनकी रचनाओं में जय पच्चीसी, विनती, रेखता आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

नवलराम भक्ति शाखा के कवि थे। वीतराग प्रभु के दर्शन एवं स्तवन में इन्हें बड़ा आनन्द आता था। इसीलिए इनके अधिकांश पद

भक्ति परक हैं। दर्शन करने से इनकी आंखें सफल हो जाती थी इसीलिए ये 'आजि सफल भई मेरी अखियां' का गीत गाने लगते थे। अपने सभी पदों में वे यही सिद्ध करते थे कि भगवान का दर्शन महान् पुण्य का स्रोत है और जिसने इनका भजन कर लिया उसने मोक्ष मार्ग को प्राप्त कर लिया और जिसने नहीं किया वह रीता ही रह गया। कवि के पदों की भाषा वैसे तो खड़ी हिन्दी है किन्तु उसमें राजस्थानी शब्दों का भी प्रयोग मिलता है।

कवि के जीवन की विशेष घटनाओं की जानकारी अभी खोज का विषय है।

राग-बिलावल

अब ही अति आनन्द भयो है मेरे ॥
परम सांत मुद्रा लखि तेरी,
भाजि गये दुख दंद ॥ १ ॥
चरन सरनि आयो जब ही,
तोडे रे करम रिपु रिंद ।
और न चाहि रह्यो अब मेरे,
लहे सुखन के कंद ॥ २ ॥
जैसे जनम दरिद्री पायो,
वांछित धन की वृंद ।
फूलो अंग अंग नही मावत,
निज मन मानत इंद ॥ ३ ॥
भव आताप निवारन कौ,
हो प्रगट जगत मैं चन्द ॥
नवल नम्यो मस्तग द्वैं कर धरि,
तारक जांनि जिनंद ॥ ४ ॥

[२०८]

राग-सोरठ

आजि सुफल भई दो मेरी अखियां ॥
अदभुत सुख उपज्यो उर अंतर,
श्री जिन पद पंकज लखियां ॥ आजि० ॥१॥

अति हरपात मगन भई अैसे,
जो रंजत जल मैं झखियां ॥ आजि० ॥२॥
और ठोर पल एक न राचै,
जे तुव गुन अमृत चखियां ॥ आजि० ॥३॥
पंथ सु पंथ तणै मग लागी,
असुभ क्रिया सबही नसियां ॥ आजि० ॥४॥
नवल कहै ये ही मै इच्छित,
भव भव मैं प्रभु तेरी पखियां ॥ आजि० ।५॥

[२०९]

राग-कान्हरो

अैसे खेल होरी को खेलि रे ॥
कुमति ठगोरी कौं अब तजि करि,
तु साथ सुमति गोरी को ॥ खेलि० ॥ १ ॥
व्रत चंदन तप सुध अरगजो,
जल छिरको संजम बोरी कौ ॥ ॥ २ ॥
करमा तणा अबीर उडावो,
रंग करुना केसरि घोरी को ॥ ३ ॥
ग्यान गुलाल विमल मन चोवो,
फुनि करि त्याग सकल चोरी को ॥ ४ ॥
नवल इसी विधि खेलत है,
ते पावत हैं मग शिव पौरी को ॥ ५ ॥

[२१०]

राग-सोरठ में होली

इह विधि खेलिये होरी हो चतुर नर ॥
निज परनति संगि लेहु सुहागिन,
अरु फुनि सुमति किसोरी हो ॥ चतुर० ॥१॥
ग्यान मइ जल सौ भरि भरि कै,
सबद पिचरिका छोरी ॥
क्रोध मान अबीर उडावो,
राग गुलाल की झोरी हो ॥ चतुर० ॥२॥
गहि संतोष यौ ही सुभ चंदन,
समता केसरि घोरी ॥
आतम की चरचा सोही चोबो,
चरचा होरा होरी हो ॥ चतुर० ॥३॥
त्याग करो तन तणी मगनता,
करुना पांन गिलोरी ॥
करि उछाह रुचि सेती ल्यो,
जिन नाम अमल की गोरी ॥ चतुर० ॥४॥
सुचिमन रंग बनावो निरमल,
करम मैल यौ टौरी ॥
नवल इसी विधि खेल खेलो,
ज्यो अघ भाजै वर जोरी हो ॥ चातुर० ॥५॥

राग–सोरठ

की परि इतनी मगरूरि करी ॥
चेति सकै तो चेति बावरे,
नातर बूडत है सगरी ॥ की परि० ॥ १ ॥
कित तैं आयो फिरि कित जै है,
समझ देख नही ठीक परी।
ओस बूंद लौं जीवन तेरो,
धूप लगे न रहत धरी ॥ की परि० ॥ २ ॥
मह परियण इत्यादिक मेरो,
मांनत है सो जानि परी ॥
निज देही लखि मगन होत तू,
सो मल–मूतर पूरि भरी ॥ की परि० ॥ ३ ॥
लाख बात की येक बात ये,
सो सुनि अपनै कान धरी।
छाडि बदी नेकी करि भाई,
नवल कहत यह बात खरी ॥ कीपरि० ॥ ४ ॥

[२१२]

राग–सोरठ

जगत मैं धरम पदारथ सार ॥
धरम विना प्रांनी पावत है दुख नाना परकार ॥
जगत मैं० ॥ १ ॥

दिढ सरधा करिये जिनमत की पाहन की धार ।
जो करि सो विवेक लिया करि श्रुत मारग अनुसार ॥
जगत मैं० ॥ २ ॥

दांन पुंनि जप तप संजम व्रत करि दिल अति सुकमार ।
सब जीवन की रख्या कीजे कीजे पर उपगार ॥
जगत मैं० ॥ ३ ॥

अंग अनेक धरम के तिनको कहित बढै विस्तार ।
नवल तत्व भाष्यो थोरे मैं करि लीज्यो निरधार ॥
जगत मैं० ॥४॥

[२१३]

राग–सोरठ

जिन राज भजा सोही जीता रे ॥
भजन कीया पावै सिव संपति, भजन विना रहै रीतारे ॥
॥ जिन० ॥१॥

धरम विना धन है चक्की सम, रो दुख भार सलीता रे ।
धरम मांहि रत धन नहि तौ, पण वो जग माहि पुनीता रे ॥
॥ जिन० ॥२॥

या सरधा विन भ्रमत भ्रमत तोहि, काल अनन्त वितीतारे ।
वीतराग पद नरनि गही तिन, जनम सफल करि लीतारे ॥
॥ जिन० ॥३॥

मन वचतन द्रिढ प्रीति आंनि उर, जिन गुन गाश्रो मीतारे।
नाम महात्म्य श्रवनन सुनिकै, नवल सुधारस पीता रे ॥
॥ जिन० ॥४॥

[२१४]

राग–सोरठ

था परि वारी हो जिन राय ॥
देखत ही आनन्द बहु उपज्यो पातिग दूर विडारी हो ॥
जिन राय० ॥१॥

तीन छत्र सुन्दर सिर सोहै रतन जटित सुखकारी हो।
फुनि सिंघासन अद्‌भुत राजै सब जनकूं हितकारी हो ॥
जिन राय० ॥२॥

लोक लाछ आपण ही छूटी सब परियण तजि डारी हो।
सुधि न रही छवि देखि रावरी जवतैं नैन निहारी हो ॥
जिन राय० ।.३॥

दोष अठारा रहित विराजौ गुन छियालीस धारी हो।
नवल जोरि कर करत विनती राखो लाज हमारी हो ॥
जिन राय० ॥४॥

[२१५]

राग–देव गंधार

अब इन नैनन नेम लीयौ ॥
दरस जिनेसुर ही को करणो,
ये निरधार कीयौ ॥ अब इन० ॥१॥
चंद चकोर मेघ लखि चातक,
इक टक चित्त दीयौ ॥
ऐसै ही इन जुगल द्रगयनि,
प्रभु मैं कीयो है हीयो ॥ अब इन० ॥२॥
अति अनुराग धारि हित सौं,
अर मानस सफल जीयौ ॥
नवल कहै जिन पद पंकज रस,
चाहत है वैही पीयौ ॥ अब इन० ॥३॥

[२१६]

राग–सोरठ

प्रभु चूक तकसीर मेरी माफ करिये ॥
समझि बिन पाप मिथ्यात बहु सेइयो,
ताहि लखि तनक हूँ चित न धरिये ॥१॥
तात अरु मात सुत भ्रात फुनि कांमनी,
इन संग राचि निज गुनन विसरिये ॥
मान मायाचारी क्रोध नहि तजि सक्यो,
पीय समता रस न मोह हरिये ॥२॥

दान पूजादि विधिसौं नहिं बिन सकै,
सुथिर चित्त बिना तुम ध्यान धरिये ॥
लोभ लाग्यो पथ अपथ नहिं जोइयो,
असत वच बोलि हूँ उदर भरिये ॥३॥
दोष अनेक विधि लगत कौलौं कहूँ,
येक तुम नांम तैं सुख विथुरिये ॥
नवल हूँ वीनती करत जग नाथ पै,
काटि जग फासि ज्यों भव तरिये ।। प्रभु० ॥४॥

[२१७]

राग–कनडी

म्हारो मन लागो जी जिन जी सौं ॥
अद्भुत रूप अनोपम मूरति,
निरखि निरखि अनुरागो जी ॥ म्हारो० ॥ १ ॥
समता भाव भये है मेरे,
आंन भाव सब त्यागो जी ॥ म्हारो० ॥ २ ॥
स्वपर विवेक भयो नहीं कबहूँ,
सो परगट होय जागो जी ॥ म्हारो० ॥ ३ ॥
ग्यान प्रभाकर उदित भयो अब,
मोह महातम भागो जी ॥ म्हारो० ॥ ४ ॥
नवल नवल आनंद भये प्रभु,
चरन कमल अनुरागो जी ॥ म्हारो० ॥ ५ ॥

[२१८]

राग-सोरठ

सांवरिया हो म्हानै दरस दिखावो ॥
सब मो मन की वांछा पूरो,
कांई नेह की रीति जताओ ॥ म्हानै० ॥ १ ॥
ये अखियां प्यासी दरसन की,
सींचि सुधारस सरसावो ।
नवल नेम प्रभु मो सुधि लीजे,
कांई अब मति ढील लगावो ॥ म्हानै० ॥ २ ॥

[२१६]

राग-सोरठ

हो मन जिन जिन क्यों नहीं रटै ॥
जाके चितवन ही तै तेरे संकलप विकलप मिटै ॥
हो मन० ॥ १ ॥
कर अंजुली के जल की नांई, छिन छिन आव जु घटै ।
याते विलम न करि भजि प्रभु. ज्यौं भरम कपाट जु फटै ॥
हो मन० ॥ २ ॥
जिन मारग लागे विन तेरी, भव संतति नाहिं कटै ।
या सरधा निश्चै उर धरि ज्यों, नवल लहै सिव तटै ॥
हो मन० ॥ ३ ॥

[२२०]

राग-पूरवी

मन वीतराग पद वंद रे ॥
नैन निहारत ही हिरदा में,
उपजत है आनन्द रे ॥ मन० ॥ १ ॥
प्रभु कों छांडि लगत विषयन में,
कारिज सब न्यंद रे ।
जो अविनाशी सुख चाहै तौ,
इनके गुनन स्यौं फंद रे ॥ मन० ॥ २ ॥
ये काम रुचि तैं राखि इन में,
त्यागि सकल दुख दुंद रे ।
नवल नवल पुन्य उपजत,
यातैं अघ सब होय निकंद रे ॥ मन० ॥ ३ ॥

[२२१]

राग-मांढ

म्हारा तो नैना में रही छाय, होजी हो जिनन्द थांकी मूरति
म्हारा तो नैनामें रही छाय ॥
जो सुख मो उर मांहि भयो है, सो सुख कहियो न जाय
म्हारा० ॥ १ ॥
उपमा रहित विराजत हो प्रभु, मोतैं वरणन न जाय ।
ऐसी सुन्दर छवि जाके ढिग, कोटि विघन टल जाय ॥
म्हारा० ॥ २ ॥

तन मन धन निछरावल कर हूँ, भक्ति करूं गुण गाय।
यह विनती सुन लेहु 'नवल' की, आवागमन गिटाय ॥
म्हारा० ॥ ३ ॥

[२२२]

राग-कनडी

सत संगति जग मैं सुखदाई ॥
देव रहित दूषण गुरु सांचो,
धर्म्म दया निश्चै चितलाई ॥ सत० ॥ १ ॥
सुक मैना संगति नर की करि,
अति परवीन वचनता पाई।
चंद्र क्रांति मनि प्रगट उपल सौ,
जल ससि देखि झरत सरसाई ॥ सत० ॥ २ ॥
लट घट पलटि होत षट पद सी,
जिन कौ साथ भ्रमर को थाई।
विकसत कमल निरखि दिनकर कौं,
लोह कनक होय पारस छाई ॥ सत० ॥ ३ ॥
बोझ तिरै संजोग नाव कै,
नाग दमनि लखि नाग न खाई।
पावक तेज प्रचंड महाबल,
जल परता सीतल हो जाई ॥ सत० ॥ ४ ॥

अमृत खाया है मुख मीठो,
कटकी तैं हो है करवाई ।
मलियागर की वास परसि कै,
सब वन के तरु मैं सुगंधाई ॥ सत० ॥ ५ ॥
सूल मिलाय पाय फूलन को,
उत्तम नर गल बीचि रहाई ।
नग की लार लाख हू वपरी,
नरपति के सिर जाय चढाई ॥ सत० ॥ ६ ॥
संग प्रताप भुयंगम जै है,
चंदन सीतल तरल पटाई ।
इत्यादिक ये बात घणेरी,
कौलों ताहि कहौ जु बढाई ॥ सत० ॥ ७ ॥
म्हाधमी अरु म्हापापी जे,
तिनको संगति लागत नाही ।
नवल कहै जे मधि परनामी,
तिनकों ये उपदेस सुनाई ॥ सत० ॥ ८ ॥

[२२३]

राग-सारंग

अरी ये मां नींद न आवै ॥
नेमि पिया बिन चैन न परत,
मोहि खान न पान सुहावै ॥ अरी० ॥ १ ॥

सब परियण लोभी स्वारथ को,
अपनी अपनी गावै ॥ अरी० ॥ २ ॥
नवल हितू जग में वे ही हैं,
प्रभु तें जाइ मिलावै ॥ अरी० ॥ ३ ॥
[२२४]

राग–सारंग

अरे मन सुमरि देव जिनराय ॥
जनम जनम संचित ते पातिक,
ततछिन जाय विलाय ॥ अरे० ॥ १ ॥
त्यागि विषय अरु लग शुभ कारज,
जिन वाणी मन लाय ।
ए संसार खार सागर में,
और न कोई सहाय ॥ अरे० ॥ २ ॥
प्रभु की सेव करत मुनि हैं,
जन खग इन्द्र आदि हरषाय ।
वाहि तें तिर है भवदधि जल,
नावैं नांव बनाय ॥ अरे० ॥ ३ ॥
इस मारिग लागे ते उतरे,
वरनैं कौन चढाय ।
नवल कहै वांछित फल चाहै,
तो चरना चितलाय ॥ अरे० ॥ ४ ॥
[२२५]

राग–ईमन

अणी मैं निसदिन ध्यावांणी।
यदि तू साडी रहदी मन मैं ॥ अणी० ॥
तुजि विन मनु और न दिसदा,
चित रहदा दरसण मैं ॥ अणी० ॥ १ ॥
तुम विन देख्या मेडा साई,
भ्रमत फिरयौ भव वन मैं ॥ अणी० ॥ २ ॥
उदै भयो सुख को अब मेरै,
प्रभु दीठा नैनन मैं ॥ अणी० ॥ ३ ॥

[२२६]

बुधजन

(संवत् १८३०–१८६५)

कविवर बुधजन का पूरा नाम विरधीचन्द था। ये जयपुर (राजस्थान) के रहने वाले थे। खण्डेलवाल जाति में इनका जन्म हुआ था तथा बज इनका गोत्र था। इनके समय में महापंडित टोडरमल की अपूर्व साहित्यिक सेवाओं के कारण जयपुर भारत का प्रसिद्ध साहित्यिक केन्द्र बन चुका था इसलिए बुधजन भी स्वतः ही उधर मुड गये। इनका साहित्यिक जीवन संवत् १८५४ से आरम्भ होता है जब कि इन्होंने 'छहढ़ाला' की रचना की थी। यह इनकी बहुत ही सुन्दर कृति है।

अब तक इनकी १७ रचनायें प्राप्त हो चुकी हैं। जिनका रचना-काल संवत् १८५४ से १८९५ तक रहा है। तत्वार्थबोध (संवत् १८७१)

बुधजनसतसई (संवत् १८८१) संबोध पंचासिका (संवत् १८६२) पञ्चास्तिकाय (संवत् १८६१) बुधजन विलास (सवत् १८६२) एवं योगसार भाषा (संवत् १८६५) आदि इनकी प्रमुख रचनायें हैं। बुधजन सतसई इनकी उच्चकोटि की रचना है जिसमें आध्यात्मिकता की उडान के साथ साथ अन्य विषयो पर भी अच्छी कविता मिलती है। बुधजन विलास में इनकी स्फुट रचनाओं एवं पदों का संग्रह मिलता है। विलास एक मुक्तक संग्रह है जिसे पढ़ कर प्रत्येक पाठक आत्मदर्शन करने का प्रयास करता है।

बुधजन के पदो का अत्यधिक प्रचार रहा है। अब तक इनके २६५ पद प्राप्त हो चुके हैं। पदों के अध्ययन से पता चलता है कि वे ऊंची श्रेणी के कवि थे। आत्मापरमात्मा एवं संसार चिन्तन वर्षों तक करते रहे थे और उसी का ये परिशीलन किया करते था। बुधजन ने द्यानतराय के समान ही आत्म-दर्शन किये थे।

कवि ने अपनी रचनायें सीधी सादी बोलचाल की भाषा में लिखा है। कहीं कहीं ब्रज भाषा के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। तोकूं, जाके, मोकूं तोहिं, जाना के जैसे शब्द आगये हैं। वर्णन शैली सुन्दर है।

राग-कानडी

उत्तम नरभव पायकै, मति भूलै रे रामा ॥

उत्तम० ॥

कीट पशू का तन जब पाया, तब तू रह्या निकामा।
अब नरदेही पाय सयाने, क्यौं न भजै प्रभु नामा ॥

उत्तम० ॥१॥

सुरपति याकी चाह करत उर, कब पाऊं नरजामा।
ऐसा रतन पायकैं भाई, क्यौं खोवत बिन कामा ॥

उत्तम० ॥२॥

धन जोबन तन सुन्दर पाया, मगन भया लखिभामा।
काल अचानक झटक खायगा, परे रहैंगे ठामा ॥

उत्तम० ॥३॥

अपने स्वामी के पद पंकज, करो हिये विसरामा।
मेटि कपट भ्रम अपना बुधजन, ज्यौं पावौ शिव धामा ॥

उत्तम० ॥४॥

[२२७]

राग-मांढ

अब हम देखा आतम रामा ॥

रूप फरस रस गंध न जामें, ज्ञान दरश रस साना।
नित्य निरंजन, जाके नाहीं-क्रोध लोभ छल कामा ॥१॥

भूख प्यास सुख दुख नहि जाके, नाहीं वन पुर ग्रामा।
नहिं चाकर नहिं ठाकर भाई, नहीं तात नहिं मामा।२॥

भूल अनादि थकी बहु भटक्यो ले पुद्गल का जामा।
'बुधजन' सतगुरु की संगतिसे, मैं पायो मुझ ठाना॥३॥

[२२८]

राग–आसावरी

नर–भव–पाय फेरि दुःख भरना, ऐसा काज न करना हो।
नाहक ममत ठानि पुद्गलसौं, करम जाल क्यों परना हो।
नर–भव पाय फेरि दुख भरना, ऐसा काज न करना हो॥
नर–भव०॥ १॥

यह तो जड़, तू ज्ञान-अरूपी, तिल-तुष ज्यों गुरु बरना हो।
राग–दोष तजि, भज समताकौं, कर्म साथ के हरना हो॥
नर–भव०॥ २॥

यों भव पाय विषय–सुख सेना, गज चढि ईंधन ढोना हो॥
'बुधजन' समुझि सेय जिनवर-पद, ज्यों भव-सागर तरना हो।
नर–भव०॥ ३॥

[२२९]

राग–सारंग

धर्म बिन कोई नहीं अपना ।
सुख-सम्पत्ति-धन थिर नहिं जग में, जिसा रैन सपना ।।
धर्म बिन० ।।

आगे किया, सो पाया भाई, याही है निरना ।
अब जो करैगा, सो पावैगा, तातैं धर्म करना ।।
धर्म बिन० ।।

ऐसैं सब संसार कहत हैं, धर्म कियैं तिरना ।
पर-पीड़ा विसनादिक सैवें, नरक विषैं परना ।।
धर्म बिन० ।।

नृप के घर सारी सामग्री, ताकैं ज्वर तपना ।
अरु दारिद्री कैं हू ज्वर है, पाप उदय थपना ।।
धर्म बिन० ।।

नाती तो स्वारथ के साथी, तोहि विपति भरना ।
वन-गिरि-सरिता अगनि जुद्ध मैं, धर्म हि का सरना ।।
धर्म बिन० ।।

चित 'बुधजन' सन्तोष धारना, पर-चिन्ता हरना ।
विपति पड़ै तो समता रखना, परमातम जपना ।।
धर्म बिन० ।।

[२३०]

राग भैरवी

काल अचानक ही ले जायगा गाफिल होकर रहना क्या रे।
छिन हू तोकूं नाहिं बचावै, तो सुभटन का रखना क्या रे॥
काल० ॥१॥

रंच सुवाद करन के काजैं, नरकन में दुख भरना क्या रे।
कुलजन पथिकन के हित काजै, जगत जाल में फँसना क्या रे।
काल० ॥२॥

इन्द्रादिक कोउ नाहिं बचैया, और लोक का शरणा क्या रे।
निश्चय हुवा जगत में मरना, कष्ट पडे तब डरना क्या रे।
काल० ॥३॥

अपना ध्यान किये खिर जावै, तो करमनि का हरना क्यारे।
अब हितकर आरत तज बुधजन, जन्म जन्म में जरना क्यारे।
काल० ॥४॥

[२३१]

राग–सारंग

तन देख्या अथिर घिनावना॥
बाहर चाम चमक दिखलावै माहीं मैल अपावना।
बालक ज्वान बुढापा मरना, रोग शोक उपजावना॥१॥
अलख अमूरति नित्य निरंजन, एक रूप निज जानना।
वरन फरस रस गंध न जाके, पुन्य पाप विन मानना॥२॥

कर विवेक उर धार परीक्षा, भेद-विज्ञान विचारना।
'बुधजन' तनतें ममत मेटना, चिदानन्द पद धारना ॥३॥

[२३२]

राग-ख्याल तमाशा

तैं ने क्या किया नादान तैं तो अमृत तज विष पीया।
लख चोरासी यौनि मांहि तैं श्रावक कुल में आया।
अब तज तीन लोक के साहिब नव ग्रह पूजन धाया ॥
तैं ने० ॥१॥

वीतराग के दर्शन ही तें उदासीनता आवै।
तूतो जिनके सन्मुख ठाडो सुत को ख्याल खिलावै ॥
तैं ने० ॥२॥

स्वर्ग संपदा सहज ही पावै निश्चै मुक्ति मिलावै।
ऐसे जिनवर पूजन सेती जगत कामना चाहै ॥
तैं ने० ॥३॥

'बुधजन' मिल के सलाह बतावै तू वाये खिन जावै।
यथायोग्य की अनथा मानें जनम जनम दुःख पावे ॥
तैं ने० ॥४॥

[२३३]

राग-रामकली

श्री जिन पूजन कौं हम आये।
पूजत ही दुख दुंद मिटाये ॥

त्रिकलप गयो प्रगट भयो धीरज,
अद्‌भुत सुख समता वर आये ॥
आधि व्याधि अब दीखत नांही,
धर्म कल्पतरु आंगन थाये ॥ श्री० ॥१॥
इतमैं इन्द्र चक्रवर्तिविनमैं,
इत में फनिंद्र खरे सिरनाये ॥
मुनिजन वृंद करै स्तुति हरषित,
धनि हम हुं नमैं पद सरसाये ॥ श्री० ॥२॥
परमोदारिक में परमातम,
ज्ञान मई हमकौं दरसाये ॥
असे ही हम मैं हम जानें,
बुधजन गुन मुख जात न गाये ॥ श्री० ॥३॥

[२३४]

राग—जगंलो

या काया माया थिर न रहैगी,
झूठा मान न कर रे ॥ या० ॥
खाई कोट ऊंचा दरवाजा,
तोप सुभट का भर रे ॥
छिन मैं खोसि सुद्धि लै तब ही,
रंक फिरै घर घर रे ॥ या० ॥ १ ॥

तन सुन्दर रूपी जोबन जुत,
लाख सुभट का बल रे ॥
सीत-जुरी जब आन सतावै,
तब कांपै थर थर रे ॥ या० ॥ २ ॥

जैसा उदय तैसा फल पावै,
जाननहार तू नर रे ॥
मन मैं राग दोष मति धारे,
जनम मरन तैं डर रे ॥ या० ॥ ३ ॥

कही बात सरधा कर भाई।
अपने परतख लख रे ॥
शुद्ध स्वभाव आपना बुधजन,
मिथ्या भ्रम परिहर रे ॥ या० ॥ ४ ॥

[२३५]

राग–सोरठ

मेरे मन तिरपत क्यों नहिं होय, मेरे मन ॥
अनादि काल तैं विषयन राच्यो, अपना सरवस खोय ॥ १ ॥
नेक चाख के फिर न बाहुडे, अधिक लंपटी होय।
झंपा पात लेत पतंग जो, जल बल भस्मी होय ॥ २ ॥
ज्यों ज्यों भोग मिले त्यों तृष्णा अधिकी अधिकी होय।
जैसे घृत डारे तैं पावक, अधिक बलत है सोय ॥ ३ ॥

नरकन माहीं बहु सागर लौं, दुख भुगतेगो कोय।
चाह भोग की त्यागो 'बुधजन' अविचल शिव सुख होय ॥४॥
[२३६]

राग–सारंग

निजपुर में आज मची होरी ॥
उमंगि चिदानंदजी इत आये, इत आई सुमती गोरी ॥
निज० ॥ १ ॥
लोकलाज कुलकाणि गमाई, ज्ञान गुलाल भरी झोरी ॥
निज० ॥ २ ॥
समकित केसर रंग बनायो, चारित की पिकी छोरी ॥
निज० ॥ ३ ॥
गावत अजपा गान मनोहर, अनहद झरसौं बरस्योरी ॥
निज० ॥ ४ ॥
देखन आये बुधजन भीगे, निरख्यौ ख्याल अनोखोरी ॥
निज० ॥ ५ ॥
[२३७]

राग–आसावरी

चेतन खेलो सुमति संग होरी ॥ चेतन० ॥
तोरि आन की प्रीति सयाने,
भली बनी या जोरी ॥ चेतन० ॥ १ ॥
डगर डगर डोलत है यौंही,

आव आपनी पोरी ॥
निज रस फगुवा क्यौं नहि बांटो,
नातरि ख्वारी तोरी ॥ चेतन० ॥ २ ॥
छार कषाय त्याग या गहि लै
समकित केसर घोरी ॥
मिथ्या पाथर डारि धारि लै,
निज गुलाल की झोरी ॥ चेतन० ॥ ३ ॥
खोटे भेष धरैं डोलत है,
दुख पावै बुधि भोरी ॥
बुधजन अपना भेष सुधारो'
ज्यौं विलसो शिव गोरी ॥ चेतन० ॥ ४ ॥

[२३८]

राग—भैरू

उठौं रे सुज्ञानी जीव, जिन गुन गावौ रे ॥
उठौ० ॥
निसि तौ नसाय गई, भानुकौं उद्योत भयौ,
ध्यान कौं लगाओ प्यारे, नींद कौं भगावौ रे ॥
उठौ० ॥ १ ॥
भव वन चौरासी बीच, भ्रमतौ फिरत नीच,
मोह जाल फंद परयौ, जन्म मृत्यु पावौ रे ॥
उठौ० ॥ २ ॥

आरज पृथ्वी मैं आय, उत्तम जनम पाय,
श्रावक कुल को लहाय, मुक्ति क्यौं न जावौ रे ॥
उठौ० ॥ ३ ॥

विषयनि राचि राचि, बहु विधि पाप सांचि,
नरकनि जायके, अनेक दुःख पावौ रे ॥
उठौ० ॥ ४ ॥

पर कौ मिलाप त्यागि, आतम के जाप लागि,
सु बुधि बतावै गुरु, ज्ञान क्यौं न लावौ रे ॥
उठौ० ॥ ५ ॥

[२३६]

राग-मांढ

अष्ट करम म्हारो कांई करसीजी, मैं म्हारे घर राखूं राम ॥
इन्द्री द्वारे चित्त दौरत हैं तिन वशह्वै नहीं करस्यूं काम ॥
अष्ट० ॥१॥

इन को जोर इतोही मुझपे, दुख दिखलावैं इन्द्री ग्राम।
जाको जातू मैं नहीं मानूँ, भेद विज्ञान करूँ विश्राम ॥
अष्ट० ॥२॥

कहू राग कहु दोष करत थो, तब विधि आते मेरे धाम।
सो विभाव नहीं धारूँ कबहू, शुद्ध स्वभाव रहू अभिराम ॥
अष्ट० ॥३॥

जिनवर मुनि गुरु की बलि जाऊँ, जिन बतलाया मेरा ठाम।
सुखी रहत हूँ दुख नहिं व्यापत, 'बुधजन' हरषत आठों जाम ॥

अष्ट० ॥४॥

[२४०]

राग–मांढ

कर्मन् की रेखा न्यारी रे विधिना टारी नांहि टरै।
रावण तीन खण्ड को राजा छिनमें नरक पडै।
छप्पन कोट परिवार कृष्णके वनमें जाय मरे ॥१॥
हनुमान की मात अञ्जना वन वन रुदन करै।
भरत बाहुबलि दोऊ भाई कैसा युद्ध करै ॥२॥
राम अरु लछमण दोनों भाई सिय की संग वन में फिरे।
सीता महा सती पतिव्रता जलती अगनि परे ॥३॥
पांडव महाबली से योद्धा तिनकी त्रिया को हरे।
कृष्ण रुक्मणी के सुत प्रद्युम्न जनमत देव हरै ॥४।
को लग कथनी कीजे इनकी, लिखता ग्रन्थ भरै।
धर्म सहित ये करम कौनसा 'बुधजन' यों उचरे ॥५॥

[२४१]

राग–आसावरी

बाबा, मैं न काहू का, कोई नहीं मेरा रे ॥
सुर-नर नारक-तिर्यक गति मैं, मोकौं करमन घेरा रे ॥

बाबा० ॥ १ ॥

माता-पिता-सुत-तियकुल परिजन, मोह-गहल उरभेरा रे।
तन-धन-वसन-भवन जड न्यारे, हूँ चिन्मूरति न्यारा रे ॥
बाबा० ॥ २ ॥

मुझ विभाव जड कर्म रचत है, करमन हमको फेरा रे।
विभाव-चक्र तजि धारि सुभावा, आनन्द-घन हेरा रे ॥
बाबा० ॥ ३ ॥

धरत खेद नहिं अनुभव करते, निरखि चिदानन्द तेरा रे।
जप-तप व्रत श्रुत सार यही है, 'बुधजन' कर न अबेरा रे ॥
बाबा० ॥ ४ ॥

[२४२]

राग–भंभोटी

कर लै हो जीव, सुकृत का सौदा कर लै,
परमारथ कारज कर लैहो ॥

उत्तम कुल को पायकैं, जिनमत रतन लहाय।
भोग भोगवैं कारनैं, क्यों शठ देत गमाय ॥
सौदा करलै० ॥ १ ॥

व्यापारी बन आइयौ, नर-भव-हाट-मँभार।
फलदायक-व्यापार कर, नातर विपति तयार ॥
सौदा करलै० ॥ २ ॥

भव अनन्त धरतो फिरयौ, चौरासी बन मांहि।
अब नर देही पायकैं, अघ खोवै क्यों नांहि ॥
सौदा करलै० ॥ ३ ॥

जिनमुनि आगम परखकें, पूजौ करि सरधान।
कुगुरु कुदेव के मानवैं, फिरयौ चतुर्गति थान॥
सौदा करलै॰ ॥ ४ ॥

मोह-नींद मां सोवता, डूबौ काल अटूट।
'बुधजन' क्यों लागै नहीं, कर्म करत है लूट॥
सौदा करलै॰ ॥ ५ ॥

[२४३]

राग-भंभोटी

मानुष भव अब पाया रे, कर कारज तेरा॥
श्रावक के कुल आया रे, पाय देह भलेरा।
चलन सिताबी होयगा रे, दिन दोय बसेरा रे॥
मानुष॰ ॥ १ ॥

मेरा मेरा मति कहै रे, कह कौन हैं तेरा।
कष्ट पड़े जब देह पै, रे कौई आतन नेरा॥
मानुष॰ ॥ २ ॥

इन्द्री सुख मति राच रे, मिथ्यात अँधेरा।
सात विसन दे त्याग रे, दुख नरक घनेरा॥
मानुष॰ ॥ ३ ॥

उर मैं समता धार रे, नहि साहब चेरा।
आपा आप विचार रे, मिटिज्या गति फेरा॥
मानुष ॥ ४ ॥

ये सुध भावन भावैं रे, बुधजन तिन केरा ।
निस दिन पद बंदन करैं रे, वे साहिब मेरा ॥
मानुष० ॥ ५ ॥

[२४४]

राग–विहाग

मनुवा बावला हो गया ॥ मनुवा० ॥
परवश वसतु जगत की सारी,
निज वश चाहै लया ॥ मनुवा० ॥१॥
जीरन चीर मिल्या है उदय वश,
यौ मांगत क्यों नया ॥ मनुवा० ॥२॥
जो कण बोया प्रथम भूमि मैं,
सो कब औरै भया ॥ मनुवा० ॥३॥
करत अकाज आन कौ निज गिन,
सुध पद त्याग दया ॥ मनुवा० ॥४॥
आप आप बोरत विषयी है,
बुधजन ढीठ भया ॥ मनुवा० ॥५॥

[२४५]

राग-सोरठ

अरे जिया तै निज कारिज क्यौ न कीयौ ॥
या भव कौ सुरपति अति तरसै,
सो तो सहज पाय लीयौ ॥ अरे० ॥१॥

मिथ्या जहर कह्यौ, गुन तजियों,
तै अपनाय पीयौ ॥
दया दान पूजन संजम मैं,
कबहुँ चित ना दीयो ॥ अरे० ॥२॥
बुधजन औसर कठिन मिल्या है,
निश्चै धारि हियौ ॥
अब जिनमत सरधा दिढ पकरो,
तब तेरो सफल जीयौ ॥ अरे० ॥३॥

[२४६]

राग-बिलावल

गुरु दयाल तेरा दुख लखि कै,
सुनि लै जो फरमावै है ॥
तो मैं तेरा जतन बतावै,
लोभ कछू नहि चावै हैं ॥ गुरु० ॥१॥
पर सुभाव कूं मोरया चाहै,
अपना उसा बतावै हैं ॥
सो तो कबहूँ होवा न होसी,
नाहक रोग लगावै है ॥ गुरु० ॥२॥
खोटी खरी करी कुमाई,
तैसी तेरे आवै है ॥
चिन्ता आगि उठाय हिया में,

नाहक ज्ञान जलावै है ॥ गुरु० ॥३॥
पर अपनावै सो दुख पावै,
बुधजन ऐसै गावै है ॥
पर कों त्याग आप थिर तिष्टै,
सो अबिचल सुख पावै है ॥ गुरु० ॥४।

[२४७]

राग–आसावरी

प्रभु तेरी महिमा वरणी न जाई ॥
इन्द्रादिक सब तुम गुण गावत, मैं कछु पार न पाई ॥ १ ॥
पट द्रव्य में गुण व्यापत जेते, एक समय में लखाई ।
ताकी कथनी विधि निषेधकर, द्वादस अंग सगाई ॥ २ ॥
क्षायिक समकित तुम ढिग पावत और ठौर नहीं पाई ।
जिन पाई तिन भव तिथि गाही, ज्ञान की रीति बढाई ॥ ३ ॥
मो से अल्प बुधि तुम ध्यावत, श्रावक पदवी पाई ।
तुमही तैं अभिराम लखूं निज राग दोष बिसराई ॥ ४ ॥

[२४८]

दौलतराम

(संवत् १८५५–१९२३)

दौलतराम नाम के दो विद्वान् हो गये हैं इनमें प्रथम बसवा निवासी थे। ये महाराजा जयपुर की सेवा में उदयपुर रहते थे। वहीं रहते हुये इन्होंने कितने ही ग्रंथों की रचना की थी इनमें पद्मपुराण भाषा, आदिपुराण भाषा, पुण्यास्त्रवकथाकोश, अध्यात्मबारहखडी, जीवंधार चरित भाषा आदि हिन्दी की अच्छी रचनायें मानी जाती है ये १८ वीं शताब्दी के विद्वान् थे। दूसरे दौलतराम हाथरस निवासी थे। इनका जन्म सवत् १८५५ या १८५६ में हुआ था। इनके पिता का नाम टोडरमल एवं जाति पल्लीवाल थी। ये कपड़े के व्यापारी थे। प्रारम्भ से ही इनका ध्यान विद्याध्ययन की ओर था। इनकी स्मरण

शक्ति अद्‌भुत थी और ये प्रतिदिन १०० तक श्लोक एवं गाथायें कंठस्थ कर लिया करते थे। इनके दो पुत्र थे। कवि का स्वर्गवास संवत् १६२३ में हुआ था।

दौलतराम का हिन्दी भाषा पर पूर्ण अधिकार था इन्होंने १५० से भी अधिक पद लिखे हैं जो सभी उच्चस्तर के हैं। आध्यात्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत ये पद पाठकों का मन स्वत: ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। पदों में इन्होंने अपनी मनोभावनाओं का अच्छी तरह चित्रण किया है। "मुनि ठगनी माया तैं सब जग ठग खाया" यह उनकी आत्मा की आवाज है संसार को धोखे का घर समझ कर वे वीतराग प्रभु की शरण चले गये और तब उन्होंने "आज मैं परम पदारथ पायौ मनु चरनन चित लायौ" पद की रचना की।

पदों की भाषा खड़ी हिन्दी है लेकिन उस पर जहां तहां ब्रज भाषा का प्रभाव है।

राग–बरवा

देखो जी आदीश्वर स्वामी, कैसा ध्यान लगाया है।
कर ऊपर कर सुभग विराजे, आसन थिर ठहराया है॥
देखो० ॥१॥

जगत विभूति भूति सम तजिकर, निजानन्द पद ध्याया है।
सुरभित श्वासा, आशावासा नासा दृष्टि सुहाया है॥
देखो०॥२॥

कंचन वरन चलै मन रंच न, सुरगिर ज्यौं थिर थाया है।
जास पास अहि मोर मृग हरि, जाति विरोध नसाया है।
देखो० ॥३॥

शुभ उपयोग हुताशन में जिन, बसु विधि समिध जलाया है।
स्यामलि अलिकावलि शिर सोहे, मानों धूंआ उड़ाया है।
देखो० ॥४॥

जीवन मरन अलाभ लाभ जिन, तृनमनि को सम भाया है।
सुर नर नाग नमहि पद जाके, दौल तास जस गाया है॥
देखो० ॥५॥

[२४६]

राग–सारंग

हमारी वीर हरो भव पीर॥ हमारी०॥
मैं दुख तपित दयामृत सागर,
लखि आयो तुम तीर॥

तुम परमेश मोखमग दर्शक,
मोह दवानल नीर ॥ हमारी० ॥१॥
तुम बिन हेत जगत उपगारी,
शुद्ध चिदानन्द धीर ॥
गनपति ज्ञान समुद्र न लंघै,
तुम गुन सिंधु गहीर ॥ हमारी० ॥२॥
याद नही मैं विपति सहो जो,
धर धर अमित शरीर ॥
तुम गुन चितत नशत तथा भय,
ज्यों घन चलत समीर ॥ हमारी० ॥३॥
कोटि बार की अरज यही है,
मैं दुख सहूँ अधीर ॥
हरहु वेदना फन्द 'दौल' की,
कतर कर्म जंजीर ॥ हमारी० ॥ ४ ॥

[२५०]

राग–गौरी

हे जिन मेरी ऐसी बुधि कीजै ।
राग द्वेष दावानल तें बचि समता रस में भीजे ।
हे जिन० ॥१॥
परकों त्याग अपनपो निज में लाग न कबहूँ छीजे ।
हे जिन० ॥२॥

कर्म कर्मफल माहिं न राचै, ज्ञान सुधारस पीजे।
हे जिन० ॥३॥
मुझ कारज के तुम कारन वर अरज दौल की लीजे।
हे जिन० ॥४॥

[२५१]

राग-मालकोष

जिया जग धोके की टाटी॥
झूंठा उद्यम लोक करत है, जिसमें निश दिन घाटी॥१॥
जान बूझ कर अंध बने हो, आंखिन बांधी पाटी॥२॥
निकल जायेंगे प्राण छिनक में, पडी रहेगी माटी॥३॥
'दौलतराम' समझ मन अपने, दिलकी खोल कपाटी॥४॥

[२५२]

राग-भैरवी

जिया तोहे समझायो सौ सौ बार॥
देख सुगरु की परहित में रति हित उपदेश सुनायो॥१॥
विषय भुजंग सेय सुख पायो पुनि तिनसु लिपटायो।
स्वपद विसार रच्यो परपद में, मदरत ज्यों बोरायो॥२॥
तन धन स्वजन नहीं हैं तेरे, नाहक नेह लगायो।
क्यों न तजे भ्रम चाख समामृत, जो नित सन्त सुहायो॥३॥

अबहु समझ कठिन यह नरभव, जिनवृष विना गमायो।
ते विलखे मणि डार उदधि में 'दौलत' को पछतायो ॥४॥

[२५३]

राग-मांढ

हमतो कबहु न निजघर आये,
पर घर फिरत बहुत दिन बीते, नाम अनेक धराये।
परपद निजपद मान मगन ह्वै, पर परणति लिपटाये।
शुद्ध बुद्ध सुख कद मनोहर, चेतन भाव न भाये ॥१॥
नर पशु देव नरक निज जान्यो, परजय बुद्धि लहाये।
अमल अखंड अतुल अविनाशी, आतम गुण नहिं गाये ॥२॥
यह बहु भूल भई हमरी फिर, कहा काज पछताये।
'दौल' तजो अजहू विषयन को, सतगुरु वचन सुनाये ॥३॥

[२५४]

राग-मांढ

आज मैं परम पदारथ पायौ,
प्रभु चरनन चित लायौ ॥ आज० ॥
अशुभ गये शुभ प्रगट भये हैं,
सहज कल्पतरु छायौ ॥ आज० ॥ १ ॥

ज्ञान शक्ति तप ऐसी जाकी,
चेतन पद दरसायो ॥ आज० ॥ २ ॥
अष्ट कर्म रिपु जोधा जीते,
शिव अंकूर जमायौ ॥ आज० ॥ ३ ॥

[२५५]

राग–मांढ

निपट अयाना, तैं आपा नहिं जाना,
नाहक भरम भुलाना बे ॥ निपट० ॥
पीय अनादि मोहमद मोह्यो,
पर पद में निज माना बे ॥ निपट० ॥१॥
चेतन चिन्ह भिन्न जडता सों,
ज्ञान दरश रस साना बे ॥
तनमें छिप्यो लिप्यो न तदपि ज्यों,
जल में कजदल माना बे ॥ निपट० ॥२॥
सकल भाव निज निज परनति मय,
कोई न होय बिराना बे ॥
तू दुखिया पर कृत्य मानि ज्यौं,
नभ ताडन श्रम ठाना बे ॥ निपट० ॥३॥
अजगन मैं हरि भूल अपनपो,
भयो दीन हैराना बे ॥

दौल सुगुरु धुनि सुनि निज में निज,
पाय लह्यो सुख थाना वे ।। निपट० ।।४।।

[२५६]

राग—जंगलो

अपनी सुधि भूलि आप आप दुख उपायौ ।
ज्यौं शुक नभ चाल बिसरि नलिनी लटकायो ।।
अपनी० ।।

चेतन अविरुद्ध शुद्ध दरश बोधमय विशुद्ध ।
तजि जड रस फरस रूप पुद्गल अपनायौ ।।
अपनी० ।।१।।

इन्द्रिय सुख दुख में नित्त, पाग राग रुख में चित्त ।
दायक भव विपति वृन्द, बन्ध को बढायौ ।।
अपनी० ।।२।।

चाह दाह दाहै, त्यागौ न ताह चाहै ।
समता सुधा न गाहै जिन निकट जो बतायौ ।।
अपनी० ।।३।।

मानुष भव सुकुल पाय, जिनवर शासन लहाय ।
दौल निज स्वभाव भज अनादि जो न ध्यायो ।।
अपनी० ।।४।।

[२५७]

राग–टोडी

ऐसा योगी क्यों न अभय पद पावै।
सो फेर न भव में आवै ॥ ऐसा० ॥

ससय विभ्रम मोह विवर्जित, स्वपर स्वरुप लखावै।
लख परमातम चेतन को पुनि, कर्म कलंक मिटावै ॥
ऐसा० ॥ १ ॥

भव तन भोग विरक्त होय तन, नग्न सुभेष बनावै।
मोह विकार निवार निजातम अनुभव में चित लावै ॥
ऐसा० ॥ २ ॥

त्रस थावर वध त्याग सदा परमाद दशा छिटकावै।
रागादिक वश झूठ न भाखै, तृणहु न अदत गहावै ॥
ऐसा० ॥ ३ ॥

बाहिर नारि त्यागि, अन्तर चिद् ब्रह्म सुलीन रहावै ॥
परम अकिंचन धर्मसार सों, द्विविधि प्रसंग बहावै ।
ऐसा० ॥ ४ ॥

पंच समिति त्रयगुप्ति पाल व्यवहार चरन मग धावै।
निश्चय सकल कषाय रहित है शुद्धातम थिर थावै ॥
ऐसा० ॥ ५ ॥

कुंकुम पंक दास रिपु तृणमणि व्याल माल समभावै।
आरत रौद्र कुध्यान विडारे, धर्म शुकल को ध्यावे ॥
ऐसा० ॥ ६ ॥

जाके सुख समाज की महिमा, कहत इन्द्र अकुलावै ॥
'दौलत' तास पद होय दास सो, अविचल ऋद्धि लहावै ।
ऐसा० ॥ ७ ॥

[२५८]

राग–सारंग

जाऊं कहां तज शरन तिहारो ॥
चूक अनादि तनी या हमारी,
माफ करौं करुणा गुन धारे ॥ जाऊं० ॥ १ ॥
डूबत हों भव सागर में अब,
तुम बिन को मोहि पार निकारे ॥ जाऊं ॥ २ ॥
तुन सम देव अवर नहि कोई,
तातैं हम यह हाथ पसारे ॥ जाऊं ॥ ३ ॥
मोसम अधम अनेक ऊबारे,
बरनत हैं गुरु शास्त्र अपारे ॥ जाऊं ॥ ४ ॥
'दौलत' को भवपार करो अब,
आयो है शरनागत थारे ॥ जाऊं० ॥ ५ ॥

[२५६]

राग–सारंग

नाथ मोहि तारत क्यौं ना, क्या तकसीर हमारी ॥
अञ्जन चोर महा अघ करता, सप्त विसन का धारी ।
वो ही मर सुरलोक गयो है, बाकी कछु न विचारी ॥
नाथ० ॥ १ ॥

शूकर सिंह नकुल बानर से, कौन कौन व्रतधारी ।
तिनकी करनी कछु न बिचारी, वे भी भये सुर भारी ॥
नाथ० ॥ २ ॥

अष्ट कर्म बैरी पूरब के इन मो करी खुवारी ।
दर्शन ज्ञान रतन हर लीने, दीने महादुख भारी ॥
नाथ० ॥ ३ ॥

अवगुण माफ करे प्रभु सबके, सबकी सुधि न बिसारी ।
दौलतदास खड़ा कर जोरे, तुम दाता मैं भिखारी ॥
नाथ० ॥ ४ ॥

[२६०]

राग-सारंग

नेमि प्रभू की श्याम बरन छवि, नैनन छाय रही ॥
मणिमय तीन पीठ पर अंबुज, तापर अधर ठही ॥
नेमि० ॥ १ ॥

मार मार तप धार जार विधि, केवल ऋद्धि लही ।
चारतीस अतिशय दुतिमंडित नवदुग दोष नहीं ॥
नेमि० ॥ २ ॥

जाहि सुरासर नमत सतत, मस्तक तैं परस मही ।
सुरगुरु उर अम्बुज प्रफुलावन, अद्भुत भान सही ॥
नेमि० ॥ ३ ॥

धर अनुराग बिलोकत जाको, दुरित नसै सब ही।
'दौलत' महिमा अतुल जासकी का पै जाय कही ॥
नेमि० ॥ ४ ॥

[२६१]

राग—मांढ

हम तो कबहू न निज गुन भाये ॥
तन निज मान जान तन दुख सुख में बिलखे हरषाये ।
हम तो० ॥ १ ॥

तन को गलन मरन लखि तनको, धरन मान हम जाये ।
या भ्रम भौंर परे भव जल चिर, चहुँ गति विपति लहाये ॥
हम तो० ॥ २ ॥

दरश बोधव्रत सुधा न चाख्यौ, विविध विषय विष खाये ।
सुगुरु दयाल सीख दई पुनि पुनि, सुनि सुनि उर नहि लाये ॥
हम तो० ॥ ३ ॥

वहिरातमता तजी न अन्तर, दृष्टि न ह्वै निजध्याये ।
धाम काम धनरामा की नित, आश हुताश जलाये ॥
हम तो० ॥ ४ ॥

अचल अनूप शुद्ध चिद्रूपी, सब सुख मय मुनिगाये ।
दौल चिदानन्द स्वगुन मगन जे, ते जियसुखिया थाये ॥
हम तो० ॥ ५ ॥

[२६२]

राग–मांढ

हे नर, भ्रमनींद क्यों न छांडत दुखदाई ॥
सेवत चिरकाल सोज, आपनी ठगाई ॥
हे नर० ॥

मूरख अघ कर्म कहा, भेदै नहिं मर्म लहा।
लागै दुख ज्वाल की न, देह कै तताई ॥
हे नर० ॥१॥

जम के रव वाजते, सुभैरव अति गाजते।
अनेक प्रान त्याग ते, सुनै कहा न भाई ॥
हे नर० ॥२॥

पर को अपनाय आप रूप को भुलाय (हाय)।
करन विषय दारु जार, चाह दौ बढाई ॥
हे नर० ॥३॥

अब सुन जिनबानि रागद्वेष को जघान।
मोक्ष रूप निज पिछान 'दौल' भज विरागताई ॥
हे नर० ॥४॥

[२६३]

राग–सारंग

चेतन यह बुधि कौन सयानी।
कही सुगुरु हित सीख न मानी ॥

कठिन काकताली ज्यौं पायौ ।
नरभव सुकुल श्रवन जिनवानी ॥
चेतन० ॥ १ ॥

भूमि न होत चांदनी की ज्यौं ।
त्यौं नहिं धनी ज्ञेय को ज्ञानी ॥
वस्तु रूप यों तूं यों ही शठ ।
हठकर पकरत सोंज विरानी ॥
चेतन० ॥ २ ॥

ज्ञानी होय अज्ञान राग रूष कर ।
निज सहज स्वच्छता हानी ॥
इन्द्रिय जड तिन विषय अचेतन ।
तहां अनिष्ट इष्टता ठानी ॥
चेतन० ॥ ३ ॥

चाहै सुख दुख ही अवगाहै ।
अब सुनि विधि जो है सुखदानी ॥
'दौल' आप करि आप-आप में ।
ध्याय लाय लय समरस सानी ॥
चेतन० ॥ ४ ॥

[२६४]

राग–उभाज जोगी रासा

मत कीज्यो जी यारी, घिनगेह देह जड जान के ।

मात तात रज वीरजसौं यह, उपजी मल फुलवारी।
अस्थिमाल पल नसा-जालकी, लाल लाल जलक्यारी ॥१॥
करमकुरंग थली पुतलो यह, मूत्रपुरीष भंडारी ।
चर्ममंडी रिपुकर्म घड़ी धन, धर्म चुरावनहारी ॥२॥
जे जे पावन वस्तु जगत में, ते इन सर्व बिगारी।
स्वेद मेद कफ क्लेदमयी बहु, मदगदव्याल पिटारी ॥३॥
जा संयोग रोगभव तौलौं, जा वियोग शिवकारी ।
बुध तासौं न ममत्व करैं यह, मूढ़मतिनको प्यारी ॥४॥
जिन पोषी ते भये सदोषी, तिन पाये दुख भारी।
जिन तप ठान ध्यानकर शोषी, तिन परनी शिवनारी ॥५॥
सुरधनु शरदजलद जलबुद्बुद, त्यौं झट विनशनहारी।
यातैं भिन्न जान निज चेतन, 'दौल' होहु शमधारी ॥६॥

[२६५]

राग-मांढ

जीव तू अनादि ही तैं भूल्यौ शिव गैलवा ॥ जीव० ॥
मोहमद वार पियौ, स्वपद विसार दियौ,
पर अपनाय लियौ, इन्द्रिय सुख में रचियौ,
भव तैं न भियौ न तजियौ मन मैलवा ॥ जीव० ॥१॥
मिथ्या ज्ञान आचरन, धरिकर कुमरन,
तीन लोक की धरन, तामें कियो है फिरन,
पायो न शरन, न लहायौ सुख शैलवा ॥ जीव० ॥२॥
अब नर भव पायो, सुथल सुकुल आयौ

जिन उपदेश भायौ, दौल झट छिटकायौ
पर-परनति दुखदायिनी चुरैलवा ॥ जीव० ॥३॥

[२६६]

राग-मांढ

कुमति कुनारि नहीं है भली रे,
सुमति नारि सुन्दर गुनवाली ॥
कुमति• ॥

वासौं विरचि रचौ नित यासौं
जो पावो शिवधाम गली रे ॥
वह कुबजा दुखदा, यह राधा
बाधा टारन करन रली रे ॥
कुमति० ॥१॥

वह कारी परसौं रति ठानत
मानत नाहिं न सीख भली रे ॥
यह गोरी चिद्‌गुण सहचारिन
रमत सदा स्वसमाधि थली रे ॥
कुमति० ॥२॥

वा संग कुथल कुयोनि वस्यौ नित
तहां महादुख बेल फली रे ॥
या संग रसिक भविन की निज में

परनति दौल भई न चली रे॥
कुमति० ॥३॥

[२६७]

राग–मांढ

जिया तुम चालो अपने देश, शिवपुर थारो शुभ थान।
लख चौरासी में बहु भटके, लख्यो न सुखरो लेश ॥१॥
मिथ्या रूप धरे बहुतेरे भटके बहुत विदेश ॥२॥
विषयादिक से बहु दुख पाये, भुगते बहुत कलेश ॥३॥
भयो तिर्यंच नारकी नर सुर, करि करि नाना भेष ॥४॥
'दौलत राम' तोड जग नाता, सुनो सुगुरु उपदेश ॥५॥

[२६८]

राग–सारंग

चेतन तैं यों ही भ्रम ठान्यो,
ज्यों मृग मृग-तृष्णा जल जान्यो ॥
ज्यौं निशि तम मैं निरख जेवरी,
भुंजग मान नर भय उर मान्यो ॥ चेतन० ॥१॥
ज्यों कुध्यान वश महिप मान निज,
फंसि नर उरमांही अकुलान्यो।
त्यौं चिर मोह अविद्या पेरयो,
तेरों तैं ही रूप भुलान्यो ॥ चेतन० ॥ २ ॥

तोय तेल ज्यौं मेल न तन को,
उपज खपज मैं सुख दुख मान्यो।
पुनि परभावन को करता ह्वै,
तैं तिनको निज कर्म पिछान्यो ॥ चेतन० ॥ ३ ॥
नरभव सुथल सुकुल जिनवाणी,
काल लब्धि बल योग मिलान्यो ।
'दौल' सहज तज उदासीनता,
तोष-रोष दुखकोष जु भान्यो ॥ चेतन० ॥ ४ ॥

[२६६]

राग-जोगी रासा

चिदराय गुन सुनो सुनो प्रशस्त गुरु गिरा।
समस्त तज विभाव, हो स्वकीय में थिरा ॥
निज भाव के लखाव बिन, भवाब्धि में परा ।
जामन मरन जरा त्रिदोष, अग्नि में जरा ॥
चिद्० ॥ १ ॥
फिर सादि और अनादि दो, निगोद में परा ।
तहं अङ्क के असंख्य भाग ज्ञान ऊबरा ॥
चिद० ॥ २ ॥
तहां भव अन्तर मुहूर्त के, कहे गनेश्वरा।
छयासठ सहस त्रिशत छतीस जन्म धर मरा ॥
चिद० ॥ ३ ॥

यौं वशि अनन्त काल फिर तहां तैं नीसरा ।
भूजल अनिल अनल प्रतेक तरु मैं तन धरा ॥
चिद० ॥ ४ ॥

अनुंघरीसु कुंथु कानेमच्छ अवतरा ।
जल थल खचर कुनर नरक असुर उपअमरा ॥
चिद० ॥ ५ ॥

अबके सुथल सुकुल सुसंग बोध लहि खरा ।
दौलत त्रिरत्न साध लाध पद अनुत्तरा ॥
चिद० ॥ ६ ॥

[२७०]

राग-सारंग

आतम रूप अनुपम अद्भुत,
याहि लखैं भव सिधु तरो ॥ आतम० ।
अल्प काल में भरत चक्रधर,
निज आतम को ध्याय खरो ।
केवलज्ञान पाय भवि बोधे,
तत छिन पायौ लोक सिरो ॥ आतम० ॥१॥
या बिन समुझे द्रव्य लिंग मुनि,
उग्र तपन कर भार भरो ।
नव ग्रीवक पर्यन्त जाय चिर,
फेर भवार्णव मांहि परो ॥ आतम० ॥ २ ॥

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन तप,
येहि जगत में सार नरो।
पूरव शिव को गये जांहि अब,
फिर जै हैं यह नियत करो ॥ आतम० ॥३॥

कोटि ग्रन्थ को सार यही है,
ये ही जिनवानी उचरो ।
'दौल' ध्याय अपने आतम को,
मुक्ति-रमा तब बेग वरो ॥ आतम० ॥ ४ ॥

[२७१]

राग-सोरठ

आया नहीं जाना तूने कैसा ज्ञान धारी रे ॥
देहाश्रित कर क्रिया आपको, मानत शिव-मगचारी रे ॥
आपा० ॥ १ ॥
निजनिवेद बिन घोर परीषह, विफल कही जिन सारी रे ॥
आपा० ॥ २ ॥
शिव चाहै तो द्विविध धर्म तैं, कर निज परणति न्यारी रे ॥
आपा० ॥ ३ ॥
'दौलत' जिन जिन भाव पिछान्यो, तिन भव विपति विदारी रे ॥
आपा० ॥ ४ ॥

[२७२]

राग—सारंग

निज हित कारज करना रे भाई,
निज हित कारज करना ॥
जनम मरन दुख पावत जातैं,
सो विधि बंध कतरना ॥ निज० ॥ १ ॥
ज्ञान दरस अरु राग फरस रस,
निज पर चिह्न समरना ।
सधि भेद बुधि-छैनी तैं कर,
निज गहि पर परिहरना ॥ निज० ॥ २ ॥
परिग्रही अपराधी शंकै,
त्यागी अभय विचरना ।
त्यौं परचाह बंध दुखदायक,
त्यागत सब सुख भरना ॥ निज० ॥ ३ ॥
जो भव भ्रमन न चाहै तो अब,
सुगुरु सीख उर धरना ।
दौलत स्वरस सुधारस चाख्यो,
ज्यों विनसैं भवमरना ॥ निज० ॥ ४ ॥

[२७३]

राग—आसावरी

चेतन कौन अनीति गही रे,
न मानैं सुगुरु कही रे ॥ चेतन० ॥

जिन विषयन वश बहु दुख पायो,
तिन सौं प्रीति ठही रे ॥ चेतन० ॥ १ ॥
चिन्मय है देहादि जड़नि सौं,
तो मति पाग रही रे ।
सम्यग्दर्शन ज्ञान भाव निज,
तिनकों गहत नही रे ॥ चेतन० ॥ २ ॥
जिन वृष पाय विहाय राग रुप,
निज हित हेत यही रे ।
दौलत जिन यह सीख धरी उर,
तिन शिव सहज लही रे ॥ चेतन ॥ ३ ॥

[२७४]

राग—जोगी रासा

छांडत क्यों नहिं रे, हे नर ! रीत अयानी ।
बार बार सिख देत सुगुरु यह, तू दे आना कानी ॥ छांडत० ॥
विषय न तजत न भजत बोध व्रत,
दुख सुख जाति न जानी ।
शर्म चहैं न लहै शठ ज्यौं घृत,
हेत बिलोवत पानी ॥ छांडत ॥ १ ॥
तन धन सदन सजन जन तुझसौं,
ये परजाय बिरानी ।

इन परिनमन विनस उपजन सौं,
तैं दुख सुख कर मानी ॥ छांडत ॥ २ ॥
इस अज्ञान तैं चिर दुख पाये,
तिनकी अकथ कहानी ।
ताको तज दृग-ज्ञान चरन भज,
निज परणति शिवदानी ॥ छांडत० ॥ ३ ॥
यह दुर्लभ नरभव-सुसंग लहि,
तत्व लखावन बानी ।
दौल न कर अब परमें ममता,
धर समता सुखदानी ॥ छांडत० ॥ ४ ॥

[२७५]

राग—जोगी रासा

जानत क्यों नहिं रे, हे नर आतम ज्ञानी ॥ जानत० ॥
राग-दोष पुदगल की संपति,
निश्चै शुद्ध निशानी ॥ जानत० ॥ १ ॥
जाय नरक पशु नर सुर गति में,
यह पर जाय बिरानी ।
सिद्ध सरुप सदा अविनाशी,
मानत बिरले प्रानी ॥ जानत० ॥ २ ॥
कियो न काहू हरै न कोई,
गुरु-शिष कौन कहानी ।

जनम मरन मल रहित विमल है,
कीच बिना जिम पानी ॥ जानत० ॥ ३ ॥
सार पदारथ है तिहुँ जगमें,
नहिं क्रोधी नहि मानी ।
दौलत सो घट मांहि विराजे,
लखि हूजे शिवथानी ॥ जानत० ॥ ४ ॥

[२७६]

राग–जोगी रासा

मानत क्यों नहिं रे, हे नर सीख सयानी ॥
भयो अचेत मोह मद पीके, अपनी सुध विसरानी ॥
मानत० ॥ १ ॥

दुखी अनादि कुबोध अव्रत तैं, फिर तिनसौं रति ठानी ।
ज्ञान सुधा निज भाव न चाख्यो, पर परनति मति सानी ॥
मानत० ॥ २ ॥

भव असारता लखै न क्यों जहं, नृप ह्वै कृमि विट थानी ।
सधन निधन नृप दास स्वजन रिपु, दुखिया हरि से प्रानी ॥
मानत० ॥ ३ ॥

देह येह गदगेह नेह इस है, बहु विपति निशानी ।
जड मलीन छिन छीन करम कृत, बन्धन शिव सुखहानी ॥
मानत० ॥ ४ ॥

चाह ज्वलन ईंधन विधि वनघन, आकुलता कुलखानी।
ज्ञान सुधा सर शोषन रवि ये, विषय अमित मृतु दानी ॥
मानत० ॥ ५ ॥

यौं लखि भवतन भोग विरचि करि, निज हित सुन जिनवानी।
तज रुष-राग 'दौल' अब अवसर, यह जिन चन्द्र बखानी ॥
मानत० ॥ ६ ॥

[२७७]

राग—दरबारी कान्हरा

घड़ी घड़ी पलपल छिनछिन निशदिन,
प्रभुजी का सुमिरन करले रे।
प्रभु सुमिरें तें पाप कटत हैं,
जन्म-मरण दुख हरले रे ॥
मन बच काय लगाय चरण चित,
ज्ञान हिये बिच धरले रे ॥
'दौलतराम' धरम नौका चढ़,
भव सागर से तिरले रे ॥

[२७८]

राग—उभाज जोगी रासा

मत कीज्यौ जी यारी ये भोग भुजंग सम जान के ॥
मत कीज्यौ जी० ॥

भुजंग डसत इकवार नसत है, ये अनन्ती मृतुकारी।
तिसना-तृषा बढ़ै इन सेये, ज्यौं पीये जल खारी॥
मत कीज्यौ जी० ॥ १ ॥

रोग वियोग शोक वन को धन समता-लता कुठारी।
केहरि करी-अरी न देत ज्यों, त्यों ये दें दुख भारी॥
मत कीज्यौ जी० ॥ २ ॥

इनमें रचे देव तरु थाये, पाये शुभ्र मुरारी।
जे विरचे ते सुरपति अरचे, परचे सुख अधिकारी॥
मत कीज्यौ जी० ॥ ३ ॥

पराधीन छिन मांहि छीन हैं, पाप बंध करतारी।
इन्हें गिनैं सुख आक मांहि तिन, आम्रतनी बुधिधारी॥
मत कीज्यौ जी० ॥ ४ ॥

मीन मतंग पतंग भृंग मृग, इन वश भये दुखारी।
सेवत ज्यौं किंपाकललित, परिपाक समय दुखकारी॥
मत कीज्यौ जी० ॥ ५ ॥

सुरपति नरपति खगपति हू की, भोग न आस निवारी।
'दौल' त्याग अब भज विराग सुख, ज्यौं पावै शिव नारी॥
मत कीज्यौ जी० ॥ ६ ॥

राग–काफी होरी

छांडि दे या बुधि भोरी, वृथा तन से रति जोरी ॥
यह पर है न रहे थिर पोषत, सकल कुमल की झोरी ।
यासौं ममता कर अनादितैं, बंधो करम की डोरी ।
सहै दुख जलधि हिलोरी, छांडि दे या बुधि भोरी ॥ १ ॥
यह जड है तू चेतन यौं ही अपनावत बरजोरी ।
सम्यकदर्शन ज्ञान चरण निधि ये हैं संपत तोरी।
मना विलसौ शिवगौरी, छांडि दे या बुधि भोरी ॥ २ ॥
सुखिया भये सदीव जीव जिन, यासौं ममता तोरी।
'दौल' सीख यह लीजै पीजे, ज्ञानपियूष कटोरी ॥
मिटै पर चाह कठोरी, छांडदे या बुधि भोरी ॥ ३ ॥

[२८०]

राग–जोगी रासा

चित चिन्त कैं चिदेश कब, अशेष पर वमूं ।
दुखदा अपार विधि दुचार की चमूं दमूं ॥
चित० ॥ ० ॥
तजि पुण्य पाप थाप आप, आप में रमूं ।
कब राग-आग शर्मबाग, दागिनी शमूं ॥
चित० ॥ १ ॥
दृग ज्ञान भान तैं मिथ्या अज्ञान तम दमूं ।
कब सर्व जीव प्राणि भूत, सत्त्व सौं छमूं ॥
चित० ॥ २ ॥

जल मल्ल लिप्त-कल सुकल, सुबल्ल परिनमूं ।
दल के त्रिशल्ल मल्ल कब अटल्ल पद पमूं ॥
चित० ॥ ३ ॥

कब ध्याय अज अमर को फिर न, भव विपिन भ्रमूं ।
जिन पूर कौल दौल को यह, हेत हौं नमूं ॥
चित० ॥ ४ ॥

[२८१]

राग-होरी

मेरो मन ऐसी खेलत होरी ॥
मन मिरदंग साज करि त्यारी, तन को तमूरा बनोरी ।
सुमति सुरंग सरंगी बजाई, ताल दोउ कर जोरी ॥
राग पांचौं पद कोरी ॥ मेरो मन० ॥ १ ॥

समकित रूप नीर भरि झारी, करुना केशर छोरी ।
ज्ञानमई ले कर पिचकारी, दोउ कर मांहि सम्होरी ॥
इन्द्री पाचौं सखि बोरी ॥ मेरो मन० ॥ २ ॥

चतुरदान को है गुलाल सो, भरि भरि मूठ चलोरी ।
तप मेवा की भरि निज झोरी, यश को अबीर उडोरी ॥ ३ ॥
रंग जिन धाम मचोरी ॥ मेरो मन० ॥ ३ ॥

दौलत बाल खेलें अस होरी, भव भव दुख टलोरी ।
शरना ले इक श्री जिन को री, जग में लाज हो तोरी ॥
मिलै फगुआ शिव होरी ॥ मेरो मन० ॥ ४ ॥

[२८२]

छत्रपति

(संवत् १८७२–१९२५)

छत्रपति १९वीं शताब्दी के कवि थे। ये आवांगढ के निवासी थे। इनकी मुख्य रचनाओं में 'कृपण जगावन चरित्र' पहिले ही प्रकाश में आ चुका है इसमें महाकवि तुलसीदास के समकालीन कवि ब्रह्म गुलाल के चरित्र का सुन्दर वर्णन किया गया है। अभी इनकी 'मनमोहन पंचशती' नाम की एक कृति उपलब्ध हुई है। इसमें ५१३ पद्य हैं जिनमें सवैय्या, दोहा, चौपाई आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। रचना में कवि की स्फुट रचनाओं का संग्रह है।

उक्त रचनाओं के अतिरिक्त कवि के १६० से भी अधिक हिंदी पद उपलब्ध हो चुके हैं। सभी पद भाव भाषा एवं शैली की दृष्टि

से उच्चस्तर के हैं। पदों की भाषा कहीं कहीं क्लिष्ट अवश्य हो गयी है लेकिन उससे पदों की मधुरता कम नहीं हो सकी है। कवि के पदों में आत्मा, परमात्मा एवं संसार दशा का अच्छा वर्णन मिलता है। कवि गृहस्थ होते हुए भी साधु जीवन व्यतीत करते थे। अपनी कमाई का अधिकांश भाग दान में दे देना तथा शेष समय में आत्म चिन्तन एवं मनन करते रहना ही इनके जीवन का कार्यक्रम था। सन्तोष एवं त्याग के भाव उनके पदों में स्पष्ट रूप में मिलते हैं। इन पदों को पढने से आत्मानुभूति होने लगती है तथा पाठक का मन स्वतः ही अच्छाई की ओर मुडने लगता है।

राग-जिलौ

अरे बुढापे तो समान अरि,
कौन हमारे सरवसु हारी ॥
आवत बार हार सम कीने,
दसन तोडि द्रग तेज निवारी ॥ अरे० ॥ १ ॥
किये शिथिल जुग जानु चलत,
थर हरत श्रवन निज प्रकृति विसारी ।
सूखौ रुधिर मांस रस सारौ,
भई विरूप काय भय भारी ॥ अरे० ॥ २ ॥
मंद अगनि उर चाह अधिकता,
भखत असन नहि पचत लगारी ।
बालाबाल न कान करें हसि,
करें स्वांस कफ विथा करारी ॥ अरे० ॥ ३ ॥
पूरब सुगुरु कही परभव का,
बीज करौ यह हिये न धारी ।
अब क्या होय 'छत्त' पछिताये,
भयी काय जम मुख तरकारी ॥ अरे० ॥ ४ ॥

[२८३]

राग-जिलौ

अन्तर त्याग बिना बाहिज का,
त्याग सुहित साधक नहि क्यों ही ।

वाहिज त्याग होत अन्तर में,
त्याग होय नहि होय सु योंही ॥
जो विधि लाभ उदै बिन वाहिज,
साधन करते काज न सीझै।
वाहिज कारन तें कारज की,
उतपति होय न होय लखी जै ॥ अन्त० ॥ १ ॥
देखन जानन तें साधन बिन,
सुहित सधे नहि खेद लहीजै।
अंध लुंज जो देखत जानत,
गमन बिना नहि सुथल सहीजै ॥ अन्त० ॥ २ ॥
यों साधन बिन साध्य अलभ लखि,
साधन विषै प्रीति कित कीजै।
छत्तर थोथे गाल बजाये,
पेट भरे नहि रसना भीजै ॥ अन्त० ॥ ३ ॥

[२८४]

राग–लावनी

अरे नर थिरता क्यों न गहै ॥
बिगरत काज पडत सिर आपति,
समरहि क्यों न सहै ॥ अरे० ॥ १ ॥
सोच करत नहि लाभ सयाने,
तन मन ग्यान दहै ।

उपजत पाप हरत सुख बिगरत,
परभव बुध न चहै ॥ अरे० ॥ २ ॥
जो जिन लिखी सुभासुभ जैसी,
तैसी होय रहै।
तिल तुष मात्र न होय विपरजै,
जाति सुभाव बहै ॥ अरे० ॥ ३ ॥
छत्तर न्याय उपाय हिये दिढ,
भगवत भजन लहै।
तौ किनेक दुख बहु सुख प्रापति,
यो जिन वाणि कहै ॥ अरे० ॥ ४ ॥
[२८५]

राग—जोगी रासा

आज नेम जिन बदन बिलोकत,
विरह व्यथा सब दूर गई जी ॥
चंदन चंद समीर नीर तें,
अधिक शान्तिता हिये भई जी ॥ आज० ॥ १ ॥
भव तन भोग रोग सम जानें,
प्रभु सम हो न उमंगमई जी ॥ आज० । २ ॥
'छत्त' सराहत भाग्य आपनो,
राजमति प्रति बोध भई जी ॥ आज० ॥ ३ ॥
[२८६]

(२४०)

राग-जिलौ

आतम ग्यान भान परकासत,
बर उत्साह दशा बिस्तरती ।
सुगुन कंज बन मोद बधावति,
परम प्रशान्ति सुधाकरि झरती ।।

भरम ध्वांत विधि आगम कारन,
मन बच काय क्रिया वृप करती ।
तन तें भिन्न अपनपो आश्रिति,
राग-द्वेष संतति अपहरती ।। आतम० ।। १ ।।

जो अभेद अविकल्प अनूपम,
चित्स्वाभावना सो नहि टरती ।
वर्तमान निबंध पुराकृत,
कर्म निर्जरा फल करि फरती ।। आतम० ।। २ ।।

जहां न चंद सूर सुख मन गति,
सुथिर भई सरवांग उघरती ।
'छत्त' आस भरि हिये वास करि,
निज महिमा सुहाग सिर धरती ।। आतम० ।। ३ ।।

राग-जिलौ

आप अपात्र पात्र जन सेती,
जो निज विनय बंदगी चाहै।
सो अनन्त संसार गहन बन,
भ्रमन करत नहिं ऊर लहा है ॥ १ ॥
जो लज्जा भय गौरव बस है,
पात्र अपात्रै नमें सराहै।
सोऊ नष्ट भयौ सरधा तें,
बहु भव दुख सिंधु अवगाहै ॥ ॥ २ ॥
दुसह आपदा परत होय सम,
सहौ सिरी मुनराज कहा है।
जिन आयस सरधान महानग,
नष्ट न करौ महा दुर्लभ हैं ॥ ॥ ३ ॥
तन धन जाहु किनि पद्धति ये,
निज गेय न उपधि कला है।
'छत्तर' वर कल्यान बीज की,
रक्षा करनो परम नफा है ॥ ॥ ४ ॥

[२८८]

राग-दीपचंदी

आपा आप वियोगा रे,
न सुहित पथ जोया ॥

मधुपाई जो विसरि अपन पौ,
　　है अचेत चिरसोया रे॥ न सुहित० ॥ १ ॥
राग विरोध मोह आपने,
　　मानि विषै रस भोया ।
इष्ट समागम में सुखिया ह्वै,
　　बिछुरत द्रग भर रोया रे ॥ न सुहित० ॥ २ ॥
पाट कीट जो आप आप करि,
　　बधौ सहज सब खोया ।
बहु संकल्प विकल्प जाल फंसि,
　　ममता मेल न धोया रे ॥ न सुहित० ॥ ३ ॥
वीतराग विज्ञान भाव निज,
　　सो न कदे ही टोया ।
बहु सुख साधन 'छत्त' धरमतरु,
　　समरस बीज न बोया रे ॥ न सुहित० ॥ ४ ॥

[२८६]

राग-जिलौ

इक तें एक अनेक गेय बहु,
　　रूप गुनन करि अधिक विराजे ।
कौन कौन की चाह करै तू,
　　कौन कौन तुझ संग समाजे ॥
सब निज निज परनाम रूप,

परनमत अन्यथा भाव न साजे ।
पुन्य पाप अनुसार सबनिका,
होत समागम सुख दुख पाजे ॥ इक० ॥ १ ॥
जग जन तन सपरस अवलोकन,
करि करि सुख मानें डरि भाजे ।
यह अग्यान प्रभाव प्रगट गुरु,
करत निवेदन जन हित काजै ॥ इक० ॥ २ ॥
पर रस मिलै कदापि न अपमें,
ज़ो जल जलज दलनि थितिकाजै ।
'छत्त' आप केवल-ग्यायक ही,
है बरतें विधि बंध निवाजै ॥ इक० ॥ ३ ॥

[२६०]

राग-सोरठ

उन मारग लागौ रे जियारा,
कौन भांति सुख होय ॥
विषयासक्त लालची गुरु का,
बहकाया भयौ तोय ।
हिंसा धरम विषै रुचि मानी,
दया न जानै कोइ ॥ उन० ॥ १ ॥
इस भव साधन मांहि फंसौ नित,
आगम चिन्ता खोय ।

प्रभुता छकी लखै नहिं निजहित,
जो मधुपाई लोय ॥ उन० ॥ २ ॥
जो इस समै 'छत्त' नहिं सुमरै,
धर्म न धारै जोइ ।
मधुमाखी जो जुग करि मीडै,
बहे पखाना होय ॥ उन० ॥ ३ ॥

[२६१]

राग–जिलौ

करि करि ज्ञान अयान अरे नर,
निज आतम अनुभव रस धारा ।
वादि अनर्थ माहिं क्यों खोवत,
आयु दिवस हितकारा ॥
तन में बसत मिलत नही तन सों,
जो जल दूध तेल तिल न्यारा ।
देखत जानत आप अपरके,
गुन परजाय-प्रवाह प्रचारा ॥ करि० ॥ १ ॥
निहचें निरविकार निरआश्रव,
आनन्द रूप अनूप उधारा ।
अपनी भूल थकी पर बस ह्वै,
भयो समाकुल समल अपारा ॥ करि० ॥ २ ॥
सुख के थान होत सुख भाई,

अंब न लागत कंठ मझारा ।
तजि विकलप करि थिर चित इतमें,
'छत्त' होय सहजै निसतारा ॥ करि० ॥
[२६२]

राग-झंझौटी

क्या सूझी रे जिय थाने ।
जो आपा आप न जाने ॥
येक छेम अवगाह संजोगे,
तन ही को निज माने ॥ क्या० ॥ १ ॥
तू न फरस रस सुरभ बरन,
जड तन इन मई न आने ।
उपजत नसत गलत पूरित नित,
सुध्रुव सदा सयाने ॥ क्या० ॥ २ ॥
जो कोई जन खाई धतूरा,
तिन कल धौत बखानै ।
चिर अग्यान थकी भ्रम भूला,
विषयनि में चित साने ॥ क्या० ॥ ३ ॥
चाह दाह दाझो न सिरावे,
पिये न बोध सुधाने ।
'छत्तर' कौन भांति सुख होवै,
बडा अंदेशा म्हाने ॥ क्या० ॥ ४ ॥
[२६३]

(२४६)

राग–जंगलो

कहा तरु छिन छई बाग में रमत,
इह मिल्यौ चिद्रूप पुदगल पसारौ।
सुगुन फुलवारि सुख सुरभ विस्मै भरी,
खोलि हिये नैन के निहारौ ॥

भेद विज्ञान सुभ सुहृद निज साथ लै,
जानि गुन जाति फल लखन सारौ।
ठीकती सहित दिठ धारि परतीति सच,
मन में सर्व सिधि रीझ धारौ ॥ कहा० ॥ १ ॥

सील सदवृत्य बेला चमेली भली,
त्याग तप के धरौ कंज प्यारौ।
ध्यान वैराग मचकुंद चंपा छिमा.
सेवती दया निज पर सझारौ ॥ कहा० ॥ २ ॥

धैर्य साहस गुल्लाव गुल मोगरा,
साम्य गुल मोतिया सुरभ कारौ।
'छत्त' भव दारु हर परम विश्राम थल,
रहौ जयवंत सदगुरु उचारौ ॥ कहा० ॥ ३ ॥

राग–जिलौ

कहू कहा जिनमत परमत में ।
अन्तर रहस भेद यहभारी ॥
अनेकान्त एकांतवाद रस ।
पीवत छकत न बुध अविचारी ॥
करता काल सुभाव हेत इम ।
निज निज पछि तने अधिकारी ॥
अनित्य नित्य विधि वरने ।
इटतें लोपत परविधि सारी ॥ कहू० ॥१॥
द्रगन अंध जन जो गज तन गहि ।
निज निज वातैं करें करारी ।
मिटत विरोध नही आपस का ।
क्यों करि सुखि होय संसारी ॥२॥
स्यादवाद विद्या प्रमाण नय ।
सत्य सरूप प्रकाशन हारी ॥
गुरु मुख उदै भइ जाके घट ।
छत्त वही पण्डित सुखधारी ॥३॥

[२६५]

राग–विलावल

जगत गुरु तुम जयवंत प्रवरतौ॥
तुम या जग में असम पदारथ, ॥
सारत स्वारथ सरतौ ॥

या संसार गहन वन माही।
मिथ्याध्वांत प्रसरतो ॥
तुम मुख वचन प्रकास विना ।
यह कौन उपायनि टरतौ ॥
जगत० ॥१॥

सुपर भेद विधि आगम निरणै ।
तुम विन कौन उचरतौ ॥
विधिरिन उधरन संजम साधनि करि।
को सिव तिय वरतौ ॥
जगत० ॥२॥

भविक भाग तैं उदै तिहारौ।
दिन दिन होउ उघरतौ ॥
वीतराग विज्ञान चिन्ह लखि।
छत्त चरन चित धरतौ ॥
जगत० ॥३॥

[२६६]

राग–बिलावल

जग में बड़ी अंधेरी छाई।
कहत कही नही जाई ॥
मिथ्या विषय कषाय तिमर।
द्रग गहै न सुहित लखाई ॥ जग० ॥१॥

स्वपर प्रकाशक जिन श्रुत दीपक।
पाइ अंध अधिकाई ॥
औरनि को हित पथ दरसावत।
आप परे अंध खाई ॥ जग० ॥ २ ॥
जिन आयस सरधान सर्वथा।
क्रिया शक्ति समगाई ॥
सो न ऊंच पद धारि नीचकृति।
करत न मूढ लजाई ॥ जग० ॥ ३ ॥
जिनकी द्रिष्टि सुहित साधनपै।
तें सद्वृत्य धराई ॥
धरम आसरे 'छत्त' जीवका।
कौंन गुरु फरमाई ॥ जग० ॥ ४ ॥

[२६७]

राग–सोरठ

जाको जपि जपि सब दुख दूरि होत वीरा।
उस प्रभु को नित ध्याऊं रे ॥
दोष आवरन गत, दायक शिव पथ।
तारन तरन स्वभाऊं रे ॥
जाको० ॥ १ ॥
ज्ञान द्रग धारी सुबल सुख भारी।
अतिशय सहित लखाउं रे ॥
जाको० ॥ २ ॥

मोह मद मोया भूरि दिन खोया।
छत्त लह्या अब दाउ रे ॥
जाको० ॥३॥

[२६८]

राग-झंझोटी

जिनवर तुम अब पार लगइयो ॥
विधि वस भयो फंसौ भवकारज।
तुम मग भूलिन गहियो ॥ जिन० ॥ १ ॥
शिशुपन इष्ट प्यार शिशुगन में-
खेलत त्रिपति न लहियो ॥
जोबन दाम वाम विषयन वस।
नेमत येक निवहियो ॥ २ ॥
वृद्ध भये इन्द्रिय निज कारज-
करन समरथ न रहियो ॥
और अनेक भांति रोगन की।
वेदन सब दुख सहियो ॥ जिन० ॥ ३ ॥
तुम प्रभु सीख सुनी वहुदिन सो।
सो सब गोचर भइयो ॥
छत्त जाचना करो समापित।
निज सेवक सरदहियो ॥ जिन० ॥ ४ ॥

[२६६]

(२५१)

राग-जिलो

जे सठ निज पद जोग्य क्रिया तजि ।
अन्य विशेष क्रिया सनमानै ॥
ते तरुमूल छेद लघु दीरघ ।
साख रखा मन की विधि ठाने ॥

जो क्रम भंग भखत भेषज कों ।
बधै व्याधि यह ज्ञान न आनै ॥
त्यौं जिन आयस बाहिज साधन ।
तीव्र कषाय काज नहि जानै ॥ जे० ॥१॥

जिन आयस सरधान एक ही ।
कियो सुदिढ दायक सुरथानै ॥
त्यौं वर क्रिया साथ साधन को ।
क्यों न लहैं जिन सम प्रभुताने ॥ जे० २॥॥

जातैं श्रुत सरधान स्वथा करौ ।
क्रिया वृष थल पहिचाने ॥
'छत्त' जीवका लोक बडाई-
मांहि, कहां हित लखो सयाने ॥ जे० ॥३॥

(२५२)

राग–जिलौ

जो कृषि साधन करत बीज विन,
बोये अन्न लाभ नहिं होई ।
तों पद जोग्य क्रिया विन छुल्लक,
औअल मुनि हित लाभ न होई ॥
केवल भेष अलेख अमुख थल,
धरम हास्य इस्थानक सोई ॥
श्रुत विचार उपवास आदि तप,
उदर भरन साधन अवलोई ॥
जो० ॥ १ ॥

जिन आयस अनुकूल तुच्छ भी,
निरापेच्छ वृष साधन जोई ॥
बहु गुन पिंड साम्य–रस–पूरन,
साधे सुहित अहित सब खोई ॥
जो० ॥ २ ॥

प्रभुता सुजस प्रान पोषन के,
हेत, आचरौ धरम दोई ।
भव दुख नासरु सिव सुख साधन,
'छत्त' आदरौ मन मल धोई ॥
जो० ॥ ३ ॥

राग–जिलौ

जो भवतव्य लखी भगवंत,
सु होय वही न अन्यथा होही ॥
यह सति वज्र–रेख ज्यों अविचल,
वादि विकल्प करै जन यों ही ॥
जे पूरव कृत कर्म शुभाशुभ,
तास उदे फल सुख दुख होई ॥
सो अनिवार निवारन समरथ,
हूओ, न है, न होइगो कोई ॥ जो० ॥१॥
मंत्र जंत्र मनि भेषजादि बहु,
है उपाय त्रिभुवन में जोई ॥
सो सब साध्य काज को साधन,
असाध्य साधे नहि सोई ॥ जो० ॥२॥
जातें सुख दुखरु जू होत नहि,
हरष विषाद करौ भवि लोई ॥
वरतमान भावी सुख साधन,
'छत्त' धरम सेवौ द्रिढ होई ॥ जो० ॥३॥

[३०२]

राग–जिलौ

दरस ज्ञान चारित तप कारन,
कारज इक वैराग्यपना है ॥

कारन काज अन्यथा मानत,
तिनका मन मिथ्यात सना है ॥
तरु तें बीज बीज तें तरुवर,
यो नहि कारन काज मना है ॥
आप बधत वैराग बधावत,
हरत सकल दुख दोष जना है ॥ दरस० ॥
जहां ज्ञान वैराग्य अवस्थित,
तहां सहज आनन्द घना है ॥
विषै कषाय उपाधिक भावन-
की संतति नहि उदित छना है ॥ दरस० ॥
नाम न ठाम न विधि आश्रव कौ,
पुनि अवस्थित बंध हना है ॥
'छत्त' सदा जयवंत प्रवरतौ,
कारन काज दुहू अपना है ॥ दरस० ॥

[३०४]

राग-चौतालौ

देखौ कलिकाल ख्याल नैननि निहारि लाल,
डांडे जात साह चोर पावत इनाम हैं ॥
कागनि को मोती औ मरालनु कौ कोंदू-कन,
राजन को कुटी डूम वसें हेम धाम है ॥
झूंठी जुक्ति वादीनि कूं सराहने लोग वहु,

वादी जन के उतारे जात वाम है ॥
साधुन को पीडा और असाधुन को प्रतिपाल,
खोय धन धर्म निज राखौ चाहें नाम है ॥
देखौ० ॥ १ ॥
रीति प्रीति सुजनता गुणीन सो ममता,
दूरि भई सर्वथा जो दिनांत घाम है ॥
हंसनि की ठौर काग ही को हंस मानै लोग,
फैली विपरीत न समेटी जाति श्राम है ॥
देखो० ॥ २ ॥
कुमार्ग रत राज दंभ धारी मुनिराज प्रजाजन,
शिष्यन के सरें किम काम है ॥
'छत्त' सुख को न लेश धरम सधै नः वेश,
कलह कलेश शेष पेरा आठौ जाम है ॥
देखौ० ॥ ३ ॥
[३०५]

राग–बिलावल

देखौ यह कलिकाल महात्म्य.
नौका डूबत सिल उतरावै ॥
बोवत कनक आम फल लागत,
सेवत कुपथ रोग तन जावै ॥
तले कलश ऊपर पनिहारी,

गाउर पूत अगारि खिलावै ॥
वासक अंक रमा चढि सोवै,
औली कौ जल मगरें थावै ॥ देखौ० ॥१॥
विष आचमन करत जन जीवत,
अमृत पीवत प्रान गमावै ॥
चंदन लेप थकी तन दाहे,
हुकमुक सेवत शांति लहावै ॥ देखौ० ॥२॥
पाप उपावत जगत सराहत,
धरम करत अपवाद लहावै ॥
'छत्त' कछू नहिं जात बखानी,
मौंन गहें ही समता आवै ॥ देखौ० ॥३॥

[३०६]

राग—कनडी तथा सोरठ

निपुनता कहां गमाई राज ॥
मूढ भये परगुन रस राचे,
खोयो सहज समाज ॥ निपुनता० ॥ १ ॥
पुद्गल जीव मिश्र तन को,
निज मानत धरि अह्लाद ।
जो कन त्रिन भक्षत वारन,
नहिं जानत भिन्न स्वाद ॥ निपुनता० ॥ २ ॥

आनन्द मूल अनाकुलताई,
दुख विभाव वस चाह।
दुहका भेद विज्ञान भये बिन,
मिलत न शिवपुर राह ॥ निपुनता० ॥ ३ ॥
अब गुरु वचन सुधा पी चेतन,
सरधौ सुहित विधान।
मिथ्या विषय कषाय 'छत्त' तज,
करि चिन्मूरति ध्यान ॥ निपुनता० ॥ ४ ॥

[३०७]

राग-जिलो

प्रभु के गुन क्यों नहि गावै रै नीकै,
छै आज घडी सुग्यानीडा ॥
तन अरोग जीवन विधि आछी,
बुध संग मति उजरी ॥ सुग्यानी० ॥ १ ॥
वे जग नायक हैं सब लायक,
घायक विघन अरी।
जीव अनन्त नाम सुमिरन करि,
अविचल रिधि धरि ॥ सुग्यानी० ॥ २ ॥
जो तू ज्ञानीडा विषयन सेवै,
यह नही बात खरी।
इन बस ह्वै भव भव चहुंगति मे,
को नहि विपति भरी ॥ सुग्यानी० ॥ ३ ॥

फिरि यह विधि कह मिली दुहेली,
जो रज उदधि परी ।
भव तट चाहै तौ अब हित करि,
चढि जिन भक्ति तरी ॥ सुग्यानी• ॥ ४ ॥

[३०८]

राग-सारंग

भजि जिनवर चरन सरोज नित,
मति बिसरै रे भाई ॥
चिर भव भ्रमत भागि जोगा यह,
अब उत्तम बिधि पाई ॥ मति• ॥ १ ॥

विन प्रयास जीव को सुवसता,
कोनों कमी उपाई ।
नरभव वर कुल बुधि बुध संगति,
देह अरोग लहाई ॥ मति० ॥ २ ॥

जिन सेवत है हुऔ होयगौ,
भव भव दुख बनाई ।
तिन ही सों परचै निश बासर,
कौन समझ उर लाई ॥ मति० ॥ ३ ॥

सुरमत तिरे अधम नर पशु बहु,
अब भी तिरत सुभाई ।

'छत्त' वर्तमान आगामी,
मन इच्छित फलदाई ॥ मति० ॥ ४ ॥

[३०९]

राग–जिलो

या धन को उतपात घने लखि,
क्यों नहिं दान विषै मति धारै ।
तस्कर ठग बटमार दुष्ट अरि,
भूप हरै पावक पर जारै ॥
बंधु विरोध कुसंतति तें छय,
भूमि धरौ सुर अन्तर पारै ।
भोग सजोग सुजन पोषन में,
लगौ गयो नहिं स्वारथ सारै ॥ या० ॥ १ ॥
जो सुपात्र अर दुखित भुखित को,
दियो अलप हूँ बहु दुख टारै ।
भोग भूमि सुर शिव तरुवर का,
बीज होय सबका जस मारै ॥ या० ॥ २ ॥
जो है उर विवेक सुख इच्छा,
तौ तजि लोभ चतुर परकारै ।
'छत्त' शक्ति अनुसार दान कौ,
करन भलौ इस सुगुरु उचारै ॥ या० ॥ ३ ॥

[३१०]

राग–लावनी

या भवसागर पार जान की,
जो चित चाह धरै ।
तौ चढि धरम नाव इह–
ठाढी क्यों अब विलम करै ॥
तन धन परियन पोषन मांही,
बहु आरंभ अरै ।
सह प्रयास तुस खंड नसा,
इस कलुयन गरज सरै ॥ या० ॥ १ ॥
जानी परै न घडी काल की,
कब सिर आन पडै ।
तब कहा करै जाइ दुरगति में,
बहु विधि विपति भरै ॥ या० ॥ २ ॥
या चढ पार भये बहु प्रानी,
निवसै अटल धरै ॥
'छत्तर' तुम क्यों भये प्रमादी,
डूबत अथल थरै ॥ या० ॥ ३ ॥

[३११]

राग–काफी होरी

यो धन आस महा अघ रास,
भवांबुध वास करावन हारी ॥

विद्यमान भावी दुख साधन,
आकुलतामय अगिनि करारी ॥ यो० ॥ १ ॥
संतोषादि सुगुन पंकज वन,
उदै मिटावन निसि अंधियारी ।
हिंसा झूंठ अदत्त ग्रहन में,
प्रेरक सदा न जाति निवारी ॥ यो० ॥ २ ॥
यह अज्ञान बीज तें उपजत,
तजि नहि सकल जीव संसारी ।
जो मद पीय विकल ह्वै फिरि फिरि,
मद ही को पीवत अविचारी ॥ यो० ॥ २ ॥
धनि वे साधु तजी जिन आसा,
भये सहज समरस सहचारी ।
छत्त तिनों के चरण कमल वर,
धारत अहि निश हिये मंझारी ॥ यों० ॥४॥

[३१२]

राग–सोरठ

राज म्हारी टूटी छै नावरिया,
अब खेय के लगादीजौ पार ॥
यह भवउदधि महा दुख पूरन,
मोह भंवर धरिया ।
विकट विभव पवन की पलटनि,
लखि तन मन डरिया ॥ राज० ॥ १ ॥

वन-मारग जलचर निज उरहि,
खेंचत दुइ करियां ॥
कहीं कहा कछु कहत न आवै,
बुधि बल सब टरियां ॥ २ ॥
विपति उबारन विरद तिहारौ,
सुनि एनि मन भरिया ॥
'छत्त' छिप्र अब होउ सहाई,
कहीं पगां पडिया ॥ राज० ॥ ३ ॥

[३१३]

राग–जिलौ

रे जिय तेरी कौंन भूल यह,
जो गुरु सीख न मानै है रे ॥
जो अबोध व्याधी पियूष सम,
भेषज हिये न आनै है रे ॥
जा करी दुखी भया है होगा,
तिस ही में चित सानै है रे ॥
विद्यमान भावी सुख कारन,
ताहि न टुक सनमानै है रे ॥
रे० ॥ १ ॥
परभावनि सों भिन्न ग्यान,
आनन्द सुभाव न ठानै है रे ॥

अपर गेह सम्बन्ध थकी,
सुख दुख उतपति वखानै है रे ॥
रे० ॥ २ ॥

दुर्लभ अवसर मिला, जात यह,
सो कहा न तू जानै है रे ॥
'छत्त' ठठेरा का नभचर जो,
निडर भया थिति थानै है रे ॥
रे० ॥ ३ ॥

[३१४]

राग—कालंगडो

रे भाई आतम अनुभव कीजै ॥
या सम सुहित न साधक दूजौ,
ज्ञान द्रगन लखि लीजै ॥ रे० ॥१॥
पुदगल जीव अनादि संजोगी,
जो तिल तेल पतीजै ॥
होत जुदौ तौ मिलौ कहां हैं,
खलि सब प्रति दिठि दीजै ॥ रे० ॥२॥
जीव चेतनामय अविनाशी,
पुदगल जड मिलि छीजै ॥
रागादिक पर-नमन भूलि निज गये,
साम्य रंग भीजै ॥ रे० ॥३॥
निरउपाधि सरवारथ पूरन,
आनन्द उदधि सुनीजै ॥

'छत्त' तास गुन रस स्वाद तें,

उदभव सुखरस पीजै ॥ रे० ॥४॥

[३१५]

राग-भंभौटी

लखे हम तुम सांचे सुखदाय ॥

वीतराग सर्वज्ञ महोदय,

त्रिभुवन मान्य अघाय ॥ लखे० ॥१॥

तारन अतिशय प्रभुतापन धर,

परमौदारिक काय ॥

गुन अनंत बुध कौन कहि सकै,

थकित होय सुरराय ॥ लखे० ॥२॥

सुखमय मूरति सुखमय सूरति,

सुखमय वचन सुभाय ॥

सुखमय शिक्षा सुखमय दिक्षा,

सुखमय क्रिया उपाय ॥ लखे० ॥३॥

'छत्त' सुमन अलिपदसरोज पर,

लुब्ध भयो अधिकाय ॥

पूरव कृत विधि उदै बिथा कौ,

हरौ शांति रस प्याय ॥ लखे० ॥४॥

[३१६]

राग—जोगी रासा

बोवत बीज फलत अंतर सों,
धरम करत फल लागत है ॥
जों घन घोर बीजली चमकनि,
लोय प्रकाश साथ जागत है ॥
तीव्र कषाय रूप अघकारज,
त्याग सुभाश्रव को आश्रत है ॥
वीतराग विज्ञान दशा मय,
छिप्र विधि रिन जावत है ॥ बोवत० ॥१॥
दोऊ धरें निराकुलतापन,
सोई सुख जिन श्रुत आहृत है ॥
धरम जहां सुख यह कहना सति,
आन गहै सठ जन चाहत है ॥ बोवत० ॥२॥
इम लखि ढील कहा साधन में,
औसर गये न कर आवत है ॥
'छत्त' न्याय यह चलै लहै थल,
किये विना कहिं को पावत है ॥ बोवत० ॥३॥

[३१७]

राग-होरी

सुनि सुजन सयाने तो सम कौन अमीर रे।
निज गुन विभव विसरि करि भोंदू।
गेलत भयो फकीर रे ॥ सुनि० ॥१॥

गुरु उपदेश संभालि खोलि हिय ।
नैंन निरखि धरि धीर रे ॥
निपट नजीक सुसाध्य ज्ञान द्रग ।
बीरज सुख तुझ तीर रे ॥ सुनि० ।२॥
समरस असन अचाह कोष वृष ।
वसनाभरन सरीर रे ॥
द्रव्य निरत की परजै पलटनि ।
निरत विलोकि अभीर रे ॥ सुनि० ॥३॥
सुनि त्रिभुवनपति राज सचीपति ।
सेवग मुनिगन धीर रे ॥
'छत्त' चरित विराग भाव गहि ।
साधन आदि अखीर रे ॥ सुनि० ॥४॥

[३१८]

राग-जिलो

हम सम कौन अयान अभागौ,
जो वृष लाभ समय खोवत है ॥
जो दुख कटुक फलनि करि फलता,
पाप अनोकुह वन बोछत है ॥
इस विरिया में जे सुविवेकी,
पूरव कृत विधि मल धोवत है ॥ हम० ॥
हम भ्रम भूलि मूढ हैं अह निश,
निवड अचेत नींद सोवत है ॥ हम० ॥

परम प्रशांति स्वानुभव गोचर,
निज गुन-मनि-माल न पोवत है ॥ इम० ॥
इन्द्रिय द्वार विषै रस वस ह्वै,
आपनपौ भव जल डोवत है ॥ इम० ॥
पर निज मानि मिलत विछुरत में,
सुख दुख मानि हसति रोवत है ॥
'छत्र' स्वतन्त्र परम सुख मूरति,
वर वैराग्य न द्रग जोवत है ॥ इम० ॥

[३१६]

राग–दीपकचंदी

समझ विन कौन सुजन सुख पावै,
निज द्रिढ विधि बंध बढावै ॥
पाटकीट जों उगलि तारकों,
आपन यौ उलझावै ॥ समझ० ॥१॥
भाटा लेय धुने सिर अपनो,
दोष तास सिर थावै ॥
मलिन वसन चिकटास सलिलसौं,
धोवत मन न लगावै ॥ समझ० ॥२॥
चिर मिथ्यात कनिक रस भोया,
तिन कलधौत वतावै ॥

जिन आयस बाहिज निज जोगा,
अनुष्ठान ठहरावै ॥ समझ० ॥३॥
'छत्त' स्वभाव ग्यान द्रिढ सरधा,
समरस सुख सरसावै ॥
सो न कषाय कलह रस पीवत,
बहु उतपात उठावै ॥ समझ० ॥४॥

[३२०]

राग–जिलौ

धन सम इष्ट न अन्य पदारथ,
प्रान देय धन देन न चाहै ॥
परधन हरन समान न दुकृत,
इस परभव दुखदाय सदा है ॥
परधन हरन प्रयोग विषै रत,
तिन सम अधम न अवर नरा है ॥
तस्कर ग्रही ग्रहैं जे मानव,
ते तिन तें बहु दोष भरा है ॥ धन० ॥१॥
नृप हांसिल मारू हीनाधिक,
देत लेत जे लोभ धरा है ॥
प्रति रूपक विवहारक हूँ बहु,
मत न करै वृत चक्र अरा है ॥ धन० ॥२॥

त्यागी मन वच तन कृत कारित,
अनुमत जुत संतोष धरा है ॥
'छत्तर' विद्यमान समयांतर,
सुखी होय करि वृत सुचिरा है ॥ घन० ॥३॥

[३२१]

राग–जिलौ

काहूँ के धन बुद्धि भुजावल,
होत स्वपर हित साधन हारा ॥
काहू के निज अहित दुखित कर,
काहू के निज पर दुखकारा ॥

जे जिन श्रुत–रसज्ञ जन तें तौ,
स्वपर सुहित साधत अनिवारा ॥
स्वपद भग भय धन संचय रुचि,
तें निज अहित फंसे निरधारा ॥
काहू० ॥ १ ॥

जे निरिच्छ परम वैरागी,
साधत सुहित न अन्य विचारा ॥
मिथ्या विषय कषाय लुब्ध जन,
करत आप पर अहित विथारा ॥
॥ काहू० ॥ २ ॥

तातैं इह सिद्धांत तिहू करि,
सिद्धि करौ वैराग्य उदारा ॥
'छत्त' बिना वैराग्य क्रिया इम,
जिम बिन अंक सून्य परिवारा ॥
॥ काहू० ॥ ३ ॥

[३२२]

राग–जिलौ

ऐसो रचौ उपाय सार बुध,
जा करि काज होय अनिवारा ॥
सुजस बधै सुख बधै, बधै वृष,
जो सब भव दुख मेटन हारा ॥

जा करि अजस होय अघ प्रगटै,
बधै भवांतर लौं दुखभारा ॥
सो उपाय परहरौ सयाने,
करि जिन आयस रहसि विचारा ॥
ऐसो० ॥ १ ॥

मृतिका कलश उपाय साध्य है,
बारू कलश न होत लगारा ॥

तजि प्रयास सब आस वृथा करि,
कारन काज विचार सुठारा ॥
॥ औसो० ॥ २ ॥

यह संसार दशा छिनभंगुर,
प्रभुता विघटत लगत न बारा ॥
क्यों टुक जीवन पै गरवाना,
'छत्त' करौ किनि सुहित सभारा ॥
॥ औसो० ॥ ३ ॥

[३२३]

राग-सोरठ

आयु सब यो ही बीती जाय ॥
बरस अयन रितु मास महूरत,
पल छिन समय सुभाय ॥ आयु० ॥ १ ॥

बन न सकत जप तप व्रत संजम,
पूजन भजन उपाय ॥
मिथ्या विषय कषाय काज में,
फंसौ न निकसौ जाय ॥ आयु० ॥ २ ॥

लाभ समै इह जात अकारथ,
सत प्रति कहू सुनाय ॥

होति निरंतर बिधि बधवारी,
इस पर भव दुखदाय ॥ आयु० ॥ ३ ॥

धनि वे साधु लगै परमारथ,
साधन में उमगाय ॥

'छत्त' सफल जीवन तिनही का,
हम सम शिथिल न पाय ॥ आयु० ॥ ४ ॥

[३२४]

पं० महाचन्द

पं० महाचन्द जी सीकर के रहने वाले थे। ये भट्टारक भानुकीर्ति की परम्परा में पाण्डे थे तथा इनका मुख्य कार्य गृहस्थों से धार्मिक क्रियाओं को सम्पन्न कराना था। सरल परणामी एवं उदार प्रकृति के होने के कारण ये लोकप्रिय भी काफी थे।

इन्होने त्रिलोकसार पूजा को जो इनकी सबसे बड़ी रचना है सम्वत् १६१५ में समाप्त किया था। यह इनकी अच्छी कृति है तथा लोकप्रिय भी है। इन्होंने तत्वार्थ सूत्र की हिंदी टीका भी लिखी थी तथा कितने ही हिंदी पदों की रचना की थी। इनके अधिकांश पद भक्ति स्तुति एवं उपदेशात्मक हैं। सभी पद सीधी सादी भाषा में लिखे गये हैं। पदों की भाषा पर राजस्थानी का प्रभाव है।

राग—जोगी रासा

मेरी ओर निहारो मोरे दीन दयाला ॥ मेरी० ॥
हम कर्मन तें भव भव दुखिया,
तुम जग के प्रतिपाला ॥
मेरी० ॥ १ ॥

कर्मन तुल्य नही दुख दाता,
तुम सम नहि रखवाला ॥
तुम तो दीन अनेक उबारे,
कौन कहै तैं सारा ॥
मेरी० ॥ २ ॥

कर्म अरी कौं वेगि हटाऊं,
ऐसी कर प्रभु म्हारा ॥
बुध महाचन्द्र चरण युग चर्चें,
जांचत है शिवमाला ॥
मेरी० ॥ ३ ॥

[३२५]

राग—जोगी रासा

मेरी ओर निहारो जी श्री जिनवर स्वामी अंतरयामी जी ॥
मेरी ओर निहारो० ॥

दुष्ट कर्म मोय भव भव मांही,
देत रहैं दुखभारी जी ॥
जरा मरण संभव आदि कछु,
पार न पायो जी ॥ मेरी ओर० ॥ १ ॥
मैं तो एक आठ संग मिलकर,
सोध सोध दुख सारो जी ॥
देते हैं बरज्यो नही मानैं,
दुष्ट हमारो जी ॥ मेरी ओर० ॥ २ ॥
और कोऊ मोय दीसत नाहीं,
सरणागत प्रतपालो जी ॥
बुध महाचन्द्र चरण ढिग ठाडो,
शरणूं थांको जी ॥ मेरी ओर० ॥३॥

[३२६]

राग—सारंग

कुमति को छाडो हो भाई ॥
कुमति रची इक चारुदत्त ने, वेश्या संग रमाई ॥
सब धन खोय होय अति फीके गुप्त ग्रह लटकाई ॥
कुमति० ॥ १ ॥
कुमति रची इक रावण नृप नै सीता को हर ल्याई ॥
तीन खंड को राज खोय के दुरगति वास कराई ॥
कुमति० ॥ २ ॥

कुमति रची कीचक ने ऐसी द्रोपदि रूप रिझाई ॥
भीम हस्त तैं थंभ तले गडि दुक्ख सहे अधिकाई ॥
कुमति० ॥ ३ ॥

कुमति रची इक धवल सेठ ने मदनमंजूसा ताई ॥
श्रीपाल की महिमा देखिर डील फाटि मर जाई ॥
कुमति० ॥ ४ ॥

कुमति रची इक ग्रामकूट ने करने रतन ठगाई ॥
सुन्दर सुन्दर भोजन तजि के गोबर भक्ष कराई ॥
कुमति० ॥ ५ ॥

राय अनेक लुटे इस मारग वरणत कौन बड़ाई ॥
बुध महाचंद्र जानिये दुख कों कुमती द्यो छिटकाइ ॥
कुमति० ॥ ६ ॥

[३२७]

राग-सारंग

कैसे कटै दिन रैन, दरस विन ॥ कैसे० ॥

जो पल घटिका तुम बिन बीतत,
सोही लगै दुख दैन ॥ दरस० ॥ १ ॥

दरशन कारण सुरपति रचिये,
सहस नयन की लैन ॥ दरस० ॥ २ ॥

ज्यों रवि दर्शन चक्रवाक युग,
चाहत नित प्रति सैन ॥ दरस० ॥ ३ ॥

तुम दर्शन तैं भव भव सुखिया,
होत सदा भवियैन ॥ दरस० ॥ ४ ॥
तुमरो सेवक लखिहैं जिन बुध,
महाचंद्र को चैन ॥ दरस० ॥ ५ ॥

[३२८]

राग–विलावल

जिया तूने लाख तरह समझायो,
लोभीडा नाही मानै रे ॥
जिन करमन संग बहु दुख भोगे,
तिनही से रुचि ठानै,
निज स्वरूप न जानै रे ॥ जिया० ॥ १ ॥
विषय भोग विष सहित अन्नसम,
बहु दुख कारण खाने,
जन्म जन्मान्तरानै रे ॥ जिया० ॥ २ ॥
शिव पथ छांडि नर्क पथ लाग्यो,
मिथ्याभर्म भुलानै ।
मोह की घैल आनै रे ॥ जिया० ॥ ३ ॥
ऐसी कुमति बहुत दिन बीते,
अब तो समझ सयाने,
कहै बुधमहाचन्द्र छानै रे ॥ जिया० ॥ ४ ॥

[३२९]

राग–सोरठ

जीव निज रस राचन खोयो,
यो तो दोष नही करमन को ॥ जीव० ॥

पुद्‌गल भिन्न स्वरुप आपणूं,
सिद्ध समान न जोयो ॥ जीव० ॥१॥

विषयन के संग रक्त होय के,
कुमती सेजां सोयो ॥
मात तात नारी सुत कारण,
घर घर डोलत रोयो ॥ जीव० ॥२॥

रूप रंग नवजोबन परकी,
नारी देखर मोयो ॥
पर की निन्दा आप बडाई,
करता जन्म विगोयो ॥ जीव० ॥३॥

धर्म कल्पतरु शिवफल दायक,
ताको जर तैं न टोयो ॥
तिस की ठोड महाफल चाखन,
पाप बबूल ज्यों बोयो ॥ जीव० ॥४॥

कुगुरु कुदेव कुधर्म सेय के,
पाप भार बहु ढोयो ॥
बुध महाचन्द्र कहे सुन प्रानी,
अंतर मन नही धोयो ॥ जीव० ॥५॥

राग-सोरठ

जीव तू भ्रमत भ्रमत भव खोयो,
जब चेत भयो तब रोयो ॥ जीव० ॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप,
यह धन धूरि विगोयो ॥
विषय भोग गत रस को रसियो,
छिन छिन में अतिसोयो ॥ जीव० ॥ १ ॥
क्रोध मान छल लोभ भयो,
तब इन ही में उरझोयो ॥
मोहराय के किंकर यह सब,
इनके वसि ह्वै लुटोयो ॥ जीव० ॥ २ ॥
मोह निवार संवार सु आयो,
आतम हित स्वर जोयो ॥
बुध महाचन्द्र चन्द्र सम होकर,
उज्वल चित रखोयो ॥ जीव० ॥ ३ ॥

[३३१]

राग–सोरठ

धन्य घड़ी याही धन्य घडी री,
आज दिवस याही धन्य घड़ी री ॥
पुत्र सुलक्षण महासैन घर,
जायो चन्द्रप्रभ चन्द्रपुरी री ॥ धन्य० ॥१॥

गज के बदन शत बदन रदन बसु,
रदन पै तरुवर एक करी री ॥
सरवर सत पणवीस कमलिनी,
कमलिनी कमल पचीस खरी री ॥ धन्य ॥२॥
कमल पत्र शत-आठ पत्र प्रति,
नाचत अपसरा रंग भरी री ॥
कोडि सताइस गज सजि ऐसो,
आवत सुरपति प्रीति धरी री ॥ धन्य० ॥३॥
ऐसो जन्म महोत्सव देखत,
दूरि होत सब पाप टरी री ॥
बुध महाचन्द्र जिके भव मांहो,
देखे उत्सव सफल परी री ॥ धन्य० ॥४॥

[३३२]

राग—जोगी रासा

निज घर नाहिं पिछान्या रे, मोह उदय होने तैं मिथ्या
भर्म भुलाना रे ।
तू तो नित्य अनादि अरूपी सिद्ध समाना रे ।
पुद्गल जड़में राचि भयो तू मूर्ख प्रधाना रे ॥ १ ॥
तन धन जोबन पुत्र बधू आदिक निज माना रे ।
यह सब जाय रहन के नांही समझ सयाना रे ॥ २ ॥

बालपने लड़कन संग जोबन त्रिया जवाना रे ।
वृद्ध भयो सब सुधि गई अब धर्म भुलाना रे ॥ ३ ॥

गई गई अब राख रही तू समझ सियाना रे ।
बुध महाचन्द बिचारिके निज पद नित्य रमाना रे ॥ ४ ॥

[३३३]

राग–जोगी रासा

भाई चेतन चेत सकै तो चेत अब,
नातर होगी खुवारी रे ॥ भाई• ॥

लख चौरासी में भ्रमता भ्रमता,
दुरलभ नरभव धारी रे ।
आयु लई तहां तुच्छ दोष तैं,
पंचम काल मझारी रे ॥ भाई० ॥ १ ॥

अधिक लई तब सौ वरषन की,
आयु लई अधिकारी रे ।
आधी तो सोने में खोई,
तेरा धर्म ध्यान विसरारी रे ॥ भाई० ॥२॥

बाकी रही पचास वर्ष में,
तीन दशा दुखकारी रे ।
बाल अज्ञान जवान त्रिया रस,
वृद्धपने बल हारी रे ॥ भाई० ॥३॥

रोग अरु सोक संयोग दुःख वसि,
बीतत हैं दिनसारी रे ।
वाकी रही तेरी आयु किती अब,
सो तैं नांहि विचारी रे ।। भाई० ।।४।।
इतने ही में किया जो चाहै,
सो तू कर सुखकारी रे ।
नहीं फंसेगा फंद बिच पंडित,
महाचन्द्र यह धारी रे ।। भाई० ।। ५ ।।

[३३४]

राग—सोरठ

भूल्यो रे जीव तूं पद तेरो ।। भूल्यो० ।।
पुद्गल जड में राचिराचि कर,
कीनों भववन फेरो ।
जामण मरण जरा दौं दाझ्यो,
भस्म भयो फल नरभव केरो ।। भूल्यो० ।। १ ।।
पुत्र नारि बान्धव धन कारण,
पाप कियो अधिकेरो ।
तेरो मेरो यूं करि मान्यु इन में,
नहीं कोई तेरो न मेरो ।। भूल्यो० ।। २ ।।
तीन खंड को नाथ कहावत
मंदोदरी भरतेरो ।

काम कला की फौज फिरी तब,
राज खोय कियो नर्क बसेरो ॥ भूल्यो॰ ॥ ३ ॥
भूलि भूलि कर समझ जीव तू,
अबहूँ औसर हेरो ।
बुध महाचन्द्र जाणि हित अपणू,
पीवो जिनवानी जल केरो ॥ भूल्यो॰ ॥ ४ ॥
[३३५]

राग–जोगी रासा

मिटत नही मेटे सैं या तो होणहार सोइ होइ ॥
माघनन्द मुनिराज वै जी गये पारणै हेत ।
व्याह रच्यो कुमहार-धी सूं बासण घडि घडि देत ॥
मिटत० ॥ १ ॥
सीता सती बडी सतवंती जानत है सब कोय ।
जो उदयागत टलै नही टाली कर्म लिखा सोही होय ॥
मिटत० ॥ २ ॥
रामचन्द्र से भर्ता जाके मंत्री बड़े विशिष्ट ।
सीता सुख भुगतन नही पायो भावनि बडी बलिष्ट ॥
मिटत० ॥ ३ ॥
कहां कृष्ण कहां जरद कुंवर जी कहां लोहा की तीर ।
मृग के धोके वन में मारयो बलभद्र भरण गये नीर ॥
मिटत० ॥ ४ ॥

महाचन्द्र तै नरभव पायो तू नर बडो अज्ञान।
जे सुख भुगते चावे प्रानी भजलो श्री भगवान॥
मिटत०॥ ५॥

[३३६]

राग-जोगी रासा

राग द्वेष जाके नहिं मन मैं हम ऐसे के चाकर हैं॥
जो हम ऐसे के चाकर तो कर्म रिपू हम कहा करि है।
राग०॥ १॥

नहिं अष्टादश दोष जिनू में छियालीस गुण आकर है।
सप्त तत्व उपदेशक जग में सोही हमारे ठाकुर हैं॥
राग०॥ २॥

चाकरि में कछु फल नहिं दीसत तो नर जग में थाकि रहै।
हमरे चाकरि में है यह फल होय जगत के ठाकुर है॥
राग०॥ ३॥

जांकी चाकरि बिन नहि कछु सुख तातैं हम सेवा करि है।
जाकै करणैं तैं हमरे नहि खोटे कर्म विपाक रहैं॥
राग०॥ ४॥

नरकादिक गति नाशि मुक्तिपद लहै जु ताहि कृपा धर है।
चंद्र समान जगत में पंडित महाचंद्र जिन स्तुति करि है॥
राग०॥ ५॥

[३३७]

राग–सोरठ

देखो पुद्गल का परिवारा,
जामें चेतन है इक न्यारा ॥ देखो० ॥
स्पर्शन रसना घ्राण नेत्र फुनि,
श्रवण पंच यह सारा ॥
स्पर्श रस फुनि गंध वर्ण,
स्वर यह इनका विषयारा ॥ देखो० ॥ १ ॥
क्षुधा तृषा अर रागद्वेष रुज,
सप्त धातु दुख कारा ॥
बादर सूक्ष्म स्कंध अणु आदिक,
मूर्ति मई निरधारा ॥ देखो० ॥ २ ॥
काय वचन मन स्वासोछ्वास जू,
थावर त्रस करि डारा ॥
बुध महाचन्द्र चेतकरि निशदिन,
तजि पुद्गल पतियारा ॥ देखो० ॥ ३ ॥
[३३८]

भागचन्द

कविवर भागचन्द्र १६ वीं शताब्दी के विद्वान् थे। इनका संस्कृत एवं हिन्दी दोनों पर एकसा अधिकार था। थे ईसागढ (ग्वालियर) के रहने वाले थे। इनकी अब तक ६ रचनायें प्राप्त हो चुकी है जिसमें उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला भाषा, प्रमाणपरीक्षा भाषा, नेमिनाथपुराण भाषा, अमितिगतिश्रावकाचार भाषा के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सभी कृतियां संवत् १६०७ से १६१३ तक लिखी गई है जिससे ज्ञात होता है उनके वह साहित्यिक जीवन का स्वर्ण युग था।

भागचन्द जी उच्चविचारक एवं आत्म चिन्तन करने वाले विद्वान् थे। पदों से आत्मा एवं परमात्मा के सम्बन्ध में उनके सुलझे

हुए विचारों का पता चल सकता है। 'सुमर सदा मन आतमराम' पद से इनके आत्म चिन्तन का पता चल सकता है। 'जब आतम अनुभव आवै तब औरकछू न सुहावे' इनके एकाग्र चित रहने के लक्षण है। कवि के अब तक ८६ पद उपलब्ध हो चुके हैं जो सभी उच्चस्तर के हैं।

राग–ईमन

महिमा है अगम जिनागम की ॥
जाहिं सुनत जड भिन्न पिछानी,
हम चिन्मूरति आतम की ॥ महिमा० ॥ १ ॥
रागादिक दुखकारन जानें,
त्याग बुद्धि दीनी भ्रमकी ॥
ज्ञान ज्योति जागी घट अन्तर,
रुचि वाढी पुनि शम दम की ॥ महिमा० ॥ २ ॥
कर्म बन्ध की भई निरजरा,
कारण परम्परा क्रम की ॥
भागचन्द शिव लालच लागो,
पहुँच नहीं है जहां जम की ॥ महिमा० ॥ ३ ॥

[३३६]

राग–बिलावल

सुमर सदा मन आतमराम, सुमर सदा मन आतमराम ॥
स्वजन कुटुम्बी जन तू पोखे, तिनको होय सदैव गुलाम ।
सो तो हैं स्वारथ के साथी, अन्तकाल नहिं आवत काम ॥
सुमर० ॥ १ ॥
जिमि मरीचिका में मृग भटके, परत सो जब ग्रीषम घाम ।
तैसे तू भवमाहीं भटके धरत न इक छिनहू विसराम ॥
सुमर० ॥ २ ॥

करत न ग्लानी अब भोगन में, धरत न वीतराग परिनाम।
फिर किमि नरकमाहिं दुख सहसी, जहां सुख लेश न आठौं जाम।
सुमर० ॥ ३ ॥

तातैं आकुलता अब तजिके, थिर ह्वै बैठो अपने धाम।
भागचन्द बसि ज्ञान नगर में, तजि रागादिक ठग सब ग्राम ॥
सुमर० ॥ ४ ॥

[३४०]

राग-चर्चरी

सांची तो गंगा यह वीतराग वानी।
अविच्छन्न धारा निज धर्म की कहानी ॥
सांची० ॥

जामें अति ही विमल अगाध ज्ञान पानी।
जहां नहीं संशयादि पंक की निशानी ॥
सांची० ॥ १ ॥

सप्त भंग जहं तरंग उछलत सुखदानी।
संत चित मरालवृंद रमैं नित्य ज्ञानी ॥
सांची० ॥ २ ॥

जाके अवगाहन तैं शुद्ध होय प्रानी।
'भागचन्द' निहचै घटमांहि या प्रमानी ॥
सांची० ॥ ३ ॥

[३४१]

राग-मांढ

जब आतम अनुभव आवै, तब और कछु ना सुहावै।
रस नीरस हो जात ततच्छिण, अच्छ विषय नहीं भावै ॥१॥
गोष्ठी कथा कुतूहल विघटे, पुद्गल प्रीति नशावै ॥२॥
राग दोष जुग चपल पक्षयुत, मनपक्षी मर जावै ॥३॥
ज्ञानानन्द सुधारस उमगै, घट अन्तर न समावै ॥४॥
भागचन्द' ऐसे अनुभव को हाथ जोरि शिर नावै ॥५॥

[३४२]

राग—सारंग

जीव ! तू भ्रमत सदीव अकेला, संग साथी कोई नहीं तेरा।
अपना सुख दुख आप हि भुगतै, होत कुटुम्ब न भेला।
स्वार्थ भयें सब बिछुरि जात हैं, विघट जात ज्यों मेला ॥१॥
रक्षक कोई न पूरन ह्वै जब, आयु अन्त की बेला।
फूटत पारि बंधत नहीं जैसे, दुद्धर जल को ठेला ॥२॥
तन धन जीवन विनशि जात ज्यों, इन्द्र जाल का खेला।
भागचन्द' इमि लख करि भाई, हो सतगुरु का चेला ॥३॥

[३४३]

राग–बसन्त

संत निरंतर चिंतत ऐसैं,
आतमरूप अबाधित ज्ञानी ॥

रोगादिक तो देहाश्रित हैं,
इनतैं होत न मेरी हानी ।
दहन दहत ज्यों दहन न तद्गत,
गगन दहन ताकी विधि ठानी ॥ १ ॥

वरणादिक विकार पुद्गल के,
इनमें नहिं चैतन्य निशानी ।
यद्यपि एक क्षेत्र अवगाही,
तद्यपि लक्षण भिन्न पिछानी ॥ २ ॥

मैं सर्वांग पूर्ण ज्ञायक रस,
लवण खिल्लवत लीला ठानी ।
मिलो निराकुल स्वाद न यावत,
तावत परपरनति हित मानी ॥ ३ ॥

'भागचन्द्र' निरद्वन्द निरामय,
मूरति निश्चय सिद्धसमानी ।
नित अकलंक अवंक शंक बिन,
निर्मल पंक बिना जिमि पानी ॥ ४ ॥

[३४४]

(२६३)

राग–सोरठ

जे दिन तुम विवेक बिन खोये ॥

मोह वारुणी पी अनादि तैं,
पर पद में चिर सोये ।
सुख करंड चित पिंड आप पद,
गुन अनंत नहिं जोये ॥ जे दिन० ॥ १ ॥

होय बहिर्मुख ठानी राग रुख,
कर्म बीज बहु बोये ।
तसु फल सुख दुख सामग्री लखि,
चित में हरषे रोये ॥ जे दिन० ॥ २ ॥

धवल ध्यान शुचि सलिल पूरतें,
आस्रव मल नहिं धोये ।
पर द्रव्यनि की चाह न रोकी,
विविध परिग्रह ढोये ॥ जे दिन० ॥ ३ ॥

अब निज में निज नियत तहां,
निज परिनाम समोये ।
यह शिव मारग समरस सागर,
भागचन्द हित तोये ॥ जे दिन० ॥ ४ ॥

राग—मल्हार

अरे हो अज्ञानी तूने कठिन मनुष भव पायो।
लोचन रहित मनुष के कर में,
ज्यों बटेर खग आयो ॥ अरे हो० ॥ १ ॥
सो तू खोवत विषयन माही,
धरम नहीं चित लायो ॥ अरे हो० ॥ २ ॥
भागचन्द उपदेश मान अब,
जो श्रीगुरु फरमायो ॥ अरे हो० ॥ ३ ॥
[३४६]

विविध कवियों के पद

इस अध्याय के अन्तर्गत टोडर, शुभचन्द्र, मनराम विद्यासागर, साहिबराय, भ० सुरेन्द्र कीर्ति, देवाब्रह्म, बिहारी- दास, रेखराज, हीराचन्द्र, उदयराम, माणकचन्द, धर्मपाल, देवीदास, जिनहर्ष, सहजराम आदि कवियों के ५५ पद दिये गये है। अधिकांश जैन कवियों ने अच्छी संख्या में पद लिखे है। एक तो उन सबको एक ही पुस्तक में देना सम्भव नहीं था इसके अतिरिक्त इनमें से अधिकांश कवियों का कोई विशेष परिचय भी उपलब्ध नहीं होता इसलिए इस अध्याय के अन्तर्गत इन कवियों के पद थोड़े थोड़े उदाहरण के रूप में दिये गये हैं। उनसे पाठकों एवं विद्वानों को जैन कवियों की विद्वत्ता एवं हिन्दी प्रेम का पता चल सकता है। इनमें भी कुछ पद

बहुत ही उच्चस्तर के हैं। मनराम का 'चेतन इह घर नाहीं तेरो' बहुत सुन्दर पद है। देवाब्रह्म ने अपने पदों में राजस्थानी भाषा का प्रयोग किया है। 'रस थोडा कांटा घणा नरका में दुख पाई' इसका एक उदाहरण है।

राग–कल्याण

तूं जीय आनि के जतन अटक्यौ,
तेरे तौ कछुव नहीं खटक्यौ ॥
तूं सुजानु जडरयौ कहि रचि रह्यौ,
चेततु क्यौ न अजान मूढमति घट २ ह्वौं भटक्यौ ॥१॥

रचि तन तात मात वनिता संग,
निमिष न कहू मटक्यौ ।
मार्जारी मीच ग्रस तन संभारी,
कीरसु धरि पटक्यौ ॥२॥

ए तेरे कवन कहा तू इनकौ,
निसि दिनु रह्यौ लपट्यौ ।
टोडर जन जीवन तुछ जग मैं,
सोचि सम्हारि विचारि ठटु विघट्यौ ॥३॥

[३४७]

राग–भैंरू

उठि तेरो मुख देखू नाभि जू के नंदा ।
तासे मेरे कटै ये करम के फंदा ॥
रजनी तिमर गयो किरन उद्योत भयो ।
दीजे मोकूं दरस तुरत जरे फदा ॥ उठि० ॥१॥

जागिये राज कुमार सुर नर ठाडे दुवार।
तेरो मुख जोवत चकोर जैसे चदा ॥ उठि० ॥२॥

श्रवन सुनत सुख तन कौ नासत दुख।
दूरि कीजे नाथजी अनाथन के फंदा ॥ उठि० ॥३॥

कीजे प्रभु उपगार मनकौ मिटै विकार।
कलपब्रष कौ दिल होत जैसे मन्दा ॥ उठि० ॥४॥

टोडर जनक नेम तुम ही सू लाग्यो प्रेम।
तुम्हारो ही ध्यान धरत निति वंदा ॥ उठि० ॥५॥

[३४८]

राग-नट

पेखो सखी चंद्रप्रभ मुख-चंद्र।
सहस किरण सम तन की आभा देखत परमानंद ॥
॥ पेखो० ॥१॥

समवसरण शुभ भूति विभूति सेव करत सत इंद्र।
महासेन-कुल-कंज दिवाकर जग गुरु जगदानंद ॥
॥ पेखो० ॥२॥

मनमोहन मूरत्ति प्रभु तेरी, मैं पायो परम मुनिंद।
श्री शुभचंद्र कहे जिनजी मोंकू राखो चरन अरविंद ॥
॥ पेखो० ॥३॥

[३४९]

राग- सारंग

कोन सखी सुध लावे, श्याम की ॥
कोन सखी सुध लावे ॥

मधुरी ध्वनि मुख-चंद्र विराजित ।
राजमति गुण गावे ॥ श्याम० ॥१॥

अंग विभूषण मनिमय मेरे ।
मनोहर माननी पावे ॥

करो कछू तंत मंत मेरी सजनी ।
मोहि प्राननाथ मिलावे ॥ श्याम० ॥२॥

गज-गमनी गुण-मन्दिर श्यामा ।
मनमथ मान सतावे ॥

कहा अवगुन अब दीनदयाला ।
छोरि मुगति मन भावे ॥ श्याम० ॥३॥

सब सखी मिल मन मोहन के ढिंग ।
जाय कथा जु सुनावे ॥

सुनो प्रभु श्री शुभचंद्र के साहिब ।
कामिनी कुल क्यो लजावे । श्याम० ॥४॥

राग–गुंज्जरी

जपो जिन पार्श्वनाथ भव तार ॥
अश्वसेन वामा कुल मंडन, बाल ब्रह्म अवतार ॥
जपो० ॥ १ ॥

नीलमणि सम सुन्दर सोभे, बोध सुकेवलधार।
नव कर उन्नत अंग अतिदीपे, आवागमन निवार ॥
जपो० ॥ २ ॥

अजरामरनु दुख निवारण तारण भवोदधिवार।
विबुध वृंद सेवे शिरनामी, पालै पंचाचार ॥
जपो० ॥ ३ ॥

कलियुग महिमा मोटी दीसे जिनवर जगदाधार।
मानव मनवांछित फल पामे, सेवक जन प्रतिपाल ॥
जपो० ॥ ४ ॥

सिद्ध स्वरूपी शिवपुर नायक नाथ निरंजन सार।
शुभचंद्र कहे करुणा कर स्वामी, आपो संसार पार ॥
जपो० ॥ ५ ॥

[३५१]

राग – जोगी रासा

चेतन इह घर नाही तेरो।
घट पटादि नैनन गोचर जो नाटक पुद्गल केरो ॥ चे० ॥

तात मात कामनि सुत बन्धु करम बंध को घेरो।
करि है गौन आनगति को जब, को नहिं आवत नेरौं ॥ चे० ॥
भ्रमत भ्रमत संसार गहनवन, कीयो आनि बसेरो ॥ चे० ॥
मिथ्या मोह उदै तै समझो, इह सदन है मेरो ॥ चे० ॥
सद्गुरु वचन जोइ घर दीपक, मिटै अनादि अंधेरो ॥ चे० ॥
असंख्यात परदेस ग्यान मय, ज्यों जानहु निज मेरो ॥ चे० ॥
नाना विकलप त्यागि आपको आप आप महिं हेरो ॥
ज्यो 'मनराम' अचेतन परसों सहजै होइ निवेरो ॥

[३५२]

राग–मल्हार

रे जिय जनम लाहो लेह ॥
चरण ते जिन भवन पहुंचै।
दान दे कर जेह ॥ रे जिय० ॥१॥
उर सोई जामैं दया है।
अरु रूधिर कौ गेह ॥
जीभ सो जिन नांम गावै।
सांस सौं करैं नेह ॥ रे जिय० ॥२॥
आंख ते जिनराज देखैं।
और आंखै खेह ॥
श्रवन तें जिन वचन सुनि सुभ।
तप तपै सो देह ॥ रे जिय० ॥३॥

सफल तन इह भांति ह्वै है।
और भांति न केह ॥
ह्वै सुखी मनराम ध्यावौ।
कहै सद्गुरु एह ॥ रे जिय० ॥४॥
[३५३]

राग–बिलावल

अखीयां आजि पवित्र भई मेरी ॥ अखीयां० ॥
निरखत वदन तिहारो जिनवर प्रमानंद विचित्र भई ॥
मेरी अखीयां० ॥१॥
आयो जु तुम दुवार आजि ही सफल भये मेरे पांय।
आजि ही सीस सफल भयौ मेरो नयो आजि जु तुमकों आय ॥
मेरी अखीयां ॥२॥
सुनि वानी भवि जीव हितकरणी सफल भये जुग कान।
आजि ही सफल भयो मुख मेरो सुमरत तव भगवान ॥
मेरी अखीयां ॥३॥
आजि ही हिरदै सफल भयो मेरों ध्यान करत तुवनाथ।
पूजित चरण तुम्हारो जिनवर सफल भये मोहि हाथ ॥
मेरी अखीयां० ॥४॥
अबलग तुम मै भेद न पायो दुख देखे तिहुँ काल।
सेवग प्रभु मनराम उधारो तुम प्रभु दीन दयाल ॥
॥ मेरी अखीयां ॥५॥
[३५४]

राग—केदार

मैं तो या भव योंहि गमायो ॥
अहनिशि कनक कामिनी कारण ।
सबहिसुं वैर बढायो ॥ मैं० ॥१॥
विषयहि के फलस्वाय के राच्यो ।
मोहनी में उरझायो ॥
यौवन मद थे कषाय जु बाढे ।
परत्रिया में चित लायो ॥ मैं० ॥२॥
त्रिस सेवत दया रस छारयो ।
लोभहि में लपटायो ॥
चक परी मोहि विद्यासागर ।
कहे जिनगुण नहीं गायो ॥ मैं० ॥३॥
[३५५]

राग—मांढ

तुम साहिब मैं चेरा, मेरे प्रभु जी हो ॥
बूडत हूँ संसार कूप मैं ।
काढो मोहि सवेरा ॥ प्रभु० ॥ १ ॥
माया मिथ्या लोभ सोच पर ।
तीनूं मिलि मुझि घेरा ॥
मोह फासिका बंध डारिकै ।
दीया बहुत भटभेडा ॥ प्रभु० ॥ २ ॥

गोती नांती जग के साथी ।
चाहत है सुख केरा ॥
जम की तपति पडै जब तन पर ।
कोई न आवै नेरा ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥
मैं सेया बहु देव जगत के ।
फंद कट्या नहि मेरा ॥
पर उपगारी सब जीवन का ।
नाम सुन्या मैं तेरा ॥ प्रभु० ॥ ४ ॥
अैसा सुजश सुण्या मैं तब ही ।
तुम चरणन कूं हेरा ॥
'साहिब' अैसी कृपा कीज्ये ।
फेर न ल्यो भव फेरा ॥ प्रभु० ॥ ५ ॥

[३५६]

राग-होरी

समझि औसर पायो रे जिया ॥
तैं परकूं करि मान्यों यां तैं ।
आपा कूं विसरायौ रे ॥ जिया० ॥१॥
गल बिचि फांसि मोह की लागी ।
इन्द्रिय सुख ललचायौ रे ॥ जिया० ॥२॥
भ्रमत अनादि गयौ अैसेही ।
अजहूँ वोर (ओर) न आयौ रे ॥ जिया ॥३॥

करत फिरत परकी चिंता तूं ।
नाहक जन्म गमायौ रे ॥ जिया० ॥४।

जिन साहिब की वांणी उरधरि ।
शुद्ध मारग दरसायो रे ॥ जिया० ॥५॥

[३५७]

राग—सोरठ

जग में कोई नही मितां तेरा ॥
तू समझि सोचकर देख सयाने ।
तू तो फिरत अकेला ॥ जग में० ॥१॥

सुपनेदा संसार बण्या है ।
हटवाडेदा मेला ॥
विनसि जाय अंजुली का जल ज्यूं ।
तू तो गर्व गहेला ॥ जग में० ॥२॥

रस दां मांता कुमति कुमाता ।
मोह लोभ करि फैला ॥
ये तेरे सवही दुखदायी ।
भूलि गया निज गैला ॥ जग में० ॥३॥

अब तूं चेत संभालि ज्ञान करि ।
फिरि नै मिलै यह वेला ॥

जिनवांणी साहिब उर धरि करि।
पावो मुक्ति महेला ॥ जग मैं० ॥४॥

[३५८]

राग–जोगी रासा

जनमें नाभि कुमार।
बधाई जग मैं छारही है॥

मरुदेवी कै आंगन माहीं।
गावत मंगलाचार ॥ बधाई० ॥१॥

इन्द्राणी मिलि चौक पुरावत।
भर भर मोतियन थाल॥
तांडव नृत्य हरी जहां कीनों।
आनंद उमंग अपार ॥ बधाई० ॥२॥

नरनारी पुरकैं आंगन माहीं।
बांधत बांदरवार ॥
नीर जु अगर अर्गजा बहु विधि।
छिड़कत घर घर द्वार। बधांई० ॥३।

अश्व गज रतन बटत पाटंवर।
जाचक जन कूं सार॥
इहि विधि हर्ष भयो त्रिभुवन मैं।
कहत न आवत पार॥ बधाई० ॥४॥

कारण स्वर्ग मुक्ति को है यह।
सब जीवन हितकार ॥
'साहिब' चरण लागि नित सेवों।
ज्यों उतरो भवपार ॥ बधाई० ॥५॥

[३५६]

राग–सोरठ

भोर भयो, उठ जागो, मनुवा, साहब नाम संभारो ॥
सूतां सूतां रैन विहानी, अब तुम नींद निवारो।
मंगलकारी अमृतवेला, थिर चित काज सुधारो ॥
भोर भयो, उठ जागो मनुवा ॥
खिन भर जो तूं याथ करैगो, सुख निपजैगो सारो।
बेला बीत्या है, पछतावै, क्यूं कर काज सुधारो ॥
भोर भयो, उठ जागो मनुवा ॥
घर व्यापारे दिवस बितायो, राते नींद गमायो।
इन बेला निधि चारित आदर, 'ज्ञानानन्द' रमायो ॥
भोर भयो, उठ जागो मनुवा ॥

[३६०]

राग–जोगी रासा

अवधू, सूतां, क्या इस मठ में !
इस मठ का है कवन भरोसा, पड जावे चटपट में।
अवधू, सूतां० ॥

छिनमें ताता, छिनमें शीतल, रोग शोक बहु घट में ।
अवधू. सूतां० ॥
पानी किनारे मठ का वासा, कवन विश्वास ये तट में ।
अवधू सूतां० ॥
सूता सूता काल गमायो, अज हुँ न जाग्यो तू घट में ।
अवधू सूतां० ॥
घरटी फेरी आटौ खायौ, खरची न बांची वट में ।
अवधू सूतां० ॥
इतनी सुनि निधि चारित मिलकर, 'ज्ञानानन्द' आये घटमें ।
अवधू सूतां० ॥

[३६१]

राग-जोगी रासा

क्योंकर महल बनावै, पियारे ।
पांच भूमि का महल बनाया, चित्रित रंग रंगाये पियारे ।
क्योंकर० ॥
गोखें बैठो, नाटक निरखै, तरुणी-रस ललचावै ।
एक दिन जंगल होगा डेरा, नहिं तुझ संग कछु जावै पियारे ।
क्योंकर० ॥
तीर्थंकर गणधर बल चक्री, जंगलवास रहावै ।
तेहना पण मन्दिर नहि दीसे, थारी कवन चलावै ॥
क्योंकर० ॥

हरि हर नारद परमुख चल गये, तू क्यों काल वितावै ।
तिनतें नव निधि चारित आदर, 'ज्ञानानन्द' रमावै पियारे ॥
क्योंकर० ॥

[३६२]

राग जोगी रासा

प्यारे, काहे कूँ ललचाय ।
या दुनियाँ का देख तमासा, देखत ही सकुचाय ।
प्यारे० ॥

मेरी मेरी करत बाउरे, फिरे जीउ अकुलाय ।
पलक एक में बहुरि न देखे, जल बुंद की न्याय ॥
प्यारे० ॥

कोटि विकल्प व्याधि की वेदन, लही शुद्ध लपटाय ।
ज्ञान-कुसुम की सेज न पाई, रहे अघाय अघाय ॥
प्यारे० ॥

किया दौर चहूँ ओर ओर से, मृग तृष्णा चित लाय ।
प्यास बुझावन बूंद न पाई, यौं ही जनम गमाय ॥
प्यारे० ॥

सुधा-सरोवर है या घट में, जिसते सब दुख जाय ।
'विनय' कहे गुरुदेव दिखावे, जो लाऊँ दिलठाय ॥
प्यारे० ॥

[३६३]

राग जिलो

चेतन ! अब मोहि दर्शन दीजे ।
तुम दर्शन शिव-सुख पामीजे, तुम दर्शन भव दीजे ॥
चेतन० ॥
तुम कारन संयम तप किरिया, कहो, कहां लौं कीजे ।
तुम दर्शन बिनु सब या झूठी, अन्तरचित्त न भीजे ॥
चेतन० ॥
क्रिया मूढ़मति कहे जन कोई, ज्ञान और को प्यारो ।
मिलत भावरस दोउ न भाखें, तू दोनों तें न्यारो ॥
चेतन० ॥
सब में है और सब में नाहीं, पूरन रूप अकेलो ।
आप स्वभावे वे किम रमतो, तूँ गुरु अरु तूँ चेलो ॥
चेतन० ॥
अकल अलख तू प्रभु सब रूपी, तू अपनी गति जाने ।
आगमरूप आगम अनुसारें, सेवक सुजस बखाने ॥
चेतन० ॥
[३६४]

रागजिलो

राम कहो, रहमान कहो कोऊ, कान कहां महादेव री ।
पारसनाथ कहो, कोई ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेव री ॥

भाजन भेद कहावत नाना, एक मृतिका रूप री।
तैसे खण्ड कल्पनारोपित, आप अखण्ड सरूप री॥
राम कहो० ॥

निज पद रमे राम सो कहिए, रहिम करे रहिमान री।
कर्षे करम कान सो कहिए, महादेव निर्वाण री॥
राम कहो० ॥

परसे रूप पारस सो कहिए, ब्रह्म चिन्हे सो ब्रह्म री।
इह विधि साधो आप 'आनन्दघन,' चेतनमय निष्कर्म री॥
राम कहो० ॥

[३६५]

राग-केदारो

विरथा जनम गमायो, मूरख।
रंचक सुखरस वश होय चेतन, अपना मूल नसायो।
पांच मिथ्यात धार तू अजहूँ, साँच भेद नहिं पायो॥
विरथा० ॥

कनक-कामिनी आस एहथी, नेह निरन्तर लायो।
ताहू थी तूँ फिरत सुरानो, कनक बीज मनु खायो॥
विरथा० ॥

जनम जरा मरणादिक दुख में, काल अनन्त गमायो।
अरहट घटिका जिम, कहो याको, अन्त अजहुँ नविआयो॥
विरथा० ॥

लख चौरासी पहरया चोलना, नव नव रूप बनायो।
विन समकित सुधारस चाख्या, गिणती कोउ न गिणायो ॥
विरथा० ॥

एते पर नवि मानत मूरख, ए अचरिज चित आयो।
'चिदानन्द' ते धन्य जगत में, जिण प्रभु सूँ मन लायो ॥
विरथा० ॥

[३६६]

राग–कनडी

अटके नयनां तिय चरनां हां हां हो मेरी विफलघरी ॥
धरि बहु राग तिय तनु निरख्यो।
इक चिति वरते चढे जिम नटके ॥
अंग अंग सकल उपमां दे पोख्यो।
अधर अमृत रस गटके ॥ अटके० ॥१॥
तृप्ति न होत रूप रस पीवत।
लालच लगे कुच तटके ॥
नवल छवीली मृग दृग निरखत।
त्यजत नहीं वाहों क्यौन झटके ॥अटके० ॥२॥
अैसे करत करत नहिं छूटत।
सेइ सेइ करि अनन्त भव भटके ॥
दशमुख सरिसे इन संगि दुखपायो।
ताकी संख्या नांहि इम चटके ॥ अटके० ॥३॥

जिनगुरु आगम सीख अब उर धरि करि ।
कीर्त्ति सुरेंद्र त्यजि शिवतिय सुख सटके ॥
जिनवर चरन निरखि इन नयनन सूं ।
छाडत नांही जिम नव तिय घूंघटके ॥ अटके० ॥४॥

[३६७]

राग–मालकोश

इस भव का नां विसवासा, अणी वे ॥
बिजरी ज्युं तन क्षण मैं नासै धन ज्युं जलहुं पतासा ।
अणी वे इस० ॥१॥

मात पिता सुत बंधु सखीजन मित्र हितू गृहवासा ।
पूरव पुन्य करि सब मिलिया सांझ अरुण सम भासा ॥
अणी वे इस० ॥२॥

यौवन पाय तू मद छकि है सो मेघ घटा ज्युं छिन नासा ।
नारी रमिवो सब जग चाहै ज्युं गज करन चलासा ॥
अणी वे इस० ॥३॥

स्वारथ के सब गरजी जिनकी तू नित्य करत दिलासा ।
आतम हित कूं अब मन ल्यावो मेटि सबै मन सांसा ॥
अणी वे इस० ॥४॥

मरन जरा तुझि जोलग नाहीं सन्मुख है दुखरासा ।
कीर्त्ति सुरेन्द्र करि निज हितकारिज जिनवर ध्यान हुलासा ॥
अणी वे इस ॥५॥

[३६८]

राग-ख्याल तमाशा

रस थोडा कांटा घणा नरका मैं दुख पाइ चंचल जीवडा रै।
विषै ये बड़े दुखदाइ ॥

कजली वन मै गज भयो रै, छकि मद रह्यो रै लुभाइ।
कागद कुंजरी कारणै रै पडीयो खाडा रै मांहि ॥
चंचल० ॥१॥

मीन समद मैं तू भयो रे, करतो केलि अपार।
रसना इन्द्री परवस रे, मुउ थल परि आइ ॥
चंचल० ॥२॥

कवल माहि भंवरो हुवो रे, घ्राण इन्द्री कै सुभाव।
सूरज असत समै मुदि गयो रै सोवी तज्या रै प्राण ॥
चंचल० ॥३॥

पतंग दीप मैं तुम भयो रै, चख्यु इन्द्री कै सुभाव।
सोवी वलि भसमी हुई रै अधिको लोभ लुभाइ ॥
चचल० ॥४॥

वन मै मृग सरप तु भयौ रै, कांनां सुणतो रै नादि।
बाण वधिक जत्र मुकीयो रे, थरहर कांप रै काइ ॥
चंचल० ॥५॥

ज्यो इक इक इंद्री मुकलाई रै, भो भो भरमै अधिकाइ।
ज्यो पांचु इंद्री मुकलाई रै, सो तो नरका मैं जाइ ॥
चंचल० ॥६॥

सो इक इक इंद्री बसि करी रै, सोही सुरगा मै जाइ।
ज्यो पांचु इन्द्री वसि करी रै, सो तो मुकत्या मै जाइ ॥
चंचल० ॥७॥

इन्द्री के जीत्या विना रै, सुख नही उपज हो रंच।
देवाब्रह्म अैसै भनै हो, मन वच जानु हो संच ॥
चंचल० ॥८॥

[३६६]

राग-ढाल होली में

चेतन सुमति सखी मिल।
दोनों खेलो प्रीतम होरी जी ॥
समकित व्रत कौ चौक बणावौ।
समता नीर भरावो जी ॥
क्रोध मांन की करो पोटली।
तो मिथ्या दोष भगावो जी ॥ चेतन० ॥१॥
ग्यान ध्यान की ल्यौ पिचकारी।
तौ खोटा भाव छुडावो जी ॥
आठ करम को चूरण करि कै।
तौ कुमति गुलाल उड़ावो जी ॥ चेतन० ॥२॥
जीव दया का गीत राग सुणि।
संजम भाव बधावो जी ॥
बाजा सत्य वचन ये बोलो।
तौ केवल बाणी गावो जी ॥ चेतन० ॥३॥

दान सील तौ मेवा कीज्यौ ।
तपस्या करो मिठाई जी ॥
देवाब्रह्म या रति पाई छै ।
तौं मन वच काया जोई जी ॥ चेतन० ॥४॥

[३७०]

राग-मारु

करौं आरती आतम देवा ।
गुण परजाय अनन्त अभेवा ॥ करू० ॥ १ ॥
जामैं सब जग वह जग मांही ।
बसत जगत मैं जग सम नाही ॥ करू० ॥ २ ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर ध्यावै ।
साधु सकल जिह के गुण गावै ॥ करू० ॥ ३ ॥
बिन जानै जिय चिर भव डोलै ।
जिहि जानै छिन सिव-पट खोलै ॥ करू० ॥ ४ ॥
ब्रतीं अब्रती विध व्यौहारा ।
सो तिहुँ काल करम सौ न्यारा ॥ करू० ॥ ५ ॥
गुरु शिष्य उभै वचन करि कहियै ।
बचनातीत दसा तिस लहियै ॥ करू० ॥ ६ ॥
सु-पर भेद कौ खेद न छेदा ।
आप आप मैं आप निवेदा ॥ करू० ॥ ७ ॥

सो परमातम पद सुखदाता ।
हौद बिहारीदास विख्याता ॥ करू० ॥ ८ ॥

[३७१]

राग–परज

सखी म्हानै दीज्यों नेमि बताय ॥
उभी राजुल अरज करै छै ।
नेमि जी कूं सेऊं निहार ॥
सखी० ॥१॥

सांवली सूरति मोहनी मूरति ।
गलि मोतियन कौं हार ॥
सखी० ॥२॥

समुदविजै सिवादेवी कों नंदन ।
जादू – कुल – सिरदार ॥
सखी० ॥३॥

या विनती सुणि रेखा की ।
आवगमन निवार ॥
सखी० ॥४॥

[३७२]

राग–सारंग

हे काहूँ की मैं बरजी ना रहूँ ।
संग जाऊगी नेमि कुवार के ॥
सब उपाय करता राखण कों ।
मो मन ओर विचार ॥

हूँ रंग राची नेमि पिया कै।
लखि संसार असार ॥ हे काहूँ ॥ १ ॥

सुनियो री म्हारी सखी हे सहेली।
मात पिता परिवार ॥ हे काहूँ० ॥ २ ॥

वल न पडत घडी पल छिन मोकूं।
सबसे कहत पुकार ॥
रेखा तू ही हितू हमारो।
पहुंचावो गिरनार ॥ हे काहूँ० ॥ ३ ॥

[३७३]

राग–सारंग

हेरी मोहि तजि क्यों गये नेमि प्यारे ॥

ऐसी चूक परी कहा हम सूं,
प्रीति छांडि भये न्यारे ॥ हेरी मोहि० ॥ १ ॥

कैसें करि धीर धरु अब सजनी,
भरि नहि नैन निहारे।
आज्ञा द्यो हम जाय प्रभू पै,
पाइन परैं हों तिहारैं ॥ हेरी मोहि० ॥ २ ॥

भूंठो दोष दियो पसुवन सिर,
मन वैराग्य विचारै ।

करम गति सूक्ष्म गति रेखा,
क्यों हो टरत न टारै ॥ हेरी मोहि० ॥ ३ ॥
[३७४]

राग-काफी होरी

जाऊंगी गढ गिरनारि सखीरी,
अपने पिया से खेलूंगी होरी ॥

समकित केसर अबीर अरगजा,
ज्ञान गुलाल उदार ॥
सप्त तत्व की भरि पिचकारी,
शील सलिल जल धार ॥ सखी० ॥ १ ॥
दश विधि धर्म को मांदल गुंजत,
गुण गण ताल अपार ॥
अशुभ कर्म की होरी बनाई,
ध्यान दियो अंगार ॥ सखी० ॥ २ ॥
इन विधि होरी खेलत राजुल,
पायौ स्वर्ग द्वार ॥
कहत हीराचन्द होली खेलो,
महिमा अगम अपार ॥ सखी० ॥ ३ ॥
[३७५]

(३२०)

राग–केदारो

बसि कर इन्द्रिय भोग–भुजंग,
इन्द्रिय भोग–भुजंग ॥
कागद हथनी लखि स्पर्शन तैं,
बंधी पडत मतंग ॥
रसना के रस मछली गले को,
खैंचत मरत उमंग ॥ बसि० ॥ १ ॥
कमल परिमल नासा रत ह्वै,
प्राण गमावत भृंग ॥
नयन अक्ष मोहे झपलावै,
दीपक देख पतंग ॥ बसि० ॥ २ ॥
करणेन्द्रिय बस घंटा रव तैं,
पारधि हनत कुरंग ॥
इक इक विषय करि ऐसा तो,
क्या कहु पण का रंग ॥ बसि० ॥ ३ ॥
खाज खुजावत हंसै फिर रोवै,
त्यौं इनका परसंग ॥
कहत हीराचन्द इन जीतै सो,
पावै सौख्य अभंग ॥ बसि० ॥ ४ ॥

राग-होरी

द्रग ज्ञान खोल देख जग में कोई न सगा ।
एक धर्म बिना सब असार हंस में बगा ॥

सुत मात तात भाई बंधु घर तिया जगा ।
संसार जलधि में सदा ए करत हैं दगा ॥
द्रग ज्ञान० ॥ १ ॥

धन धान दास दासी नाग चपल तूरगा ।
इन्द्रजाल के समान सकल राज नृप खगा ॥
द्रग ज्ञान० ॥ २ ॥

तन रूप आयु जोबन बल भोग संपदा ।
जैसे डाभ-अणी-बिंदु और नयन ज्यों कगा ॥
द्रग ज्ञान० ॥ ३ ॥

अमुलिक सुत हीरालाल दिल लगा ।
जिनराज जिनागम सुगुरु चरण में पगा ॥
द्रग ज्ञान० ॥ ४ ॥

[३७७]

राग—सोरठ

तुम बिन इह कृपा को करै ॥
जा प्रसाद अनादि संचित करम-गन थरहरै ।
॥ तुम० ॥ १ ॥

मिटी बुधि मिथ्यात सब विधि ग्यान सुधि विस्तरै ।
भरत निज आनन्द पूरण रस स्वभाविक झरै ॥
॥ तुम० ॥ २ ॥

प्रगट भयो परकास चेतन ज्वलत क्यों हो न दुरै ।
जास परणति सुद्ध चेतन उदै थिरता धरै ॥
॥ तुम० ॥ ३ ॥

[३७८]

राग-देशी चाल

(जोगीया मेरे द्वारै अब कैसी धूनी दई ।)
दई कुमती मेरे पीऊ कौ कैसी सीख दई ॥
स्वपर छांडि पर ही संग राचत ।
नाचत ज्यौं चकई ॥ दई० ॥ १ ॥

रत्नत्रय निज निधि विगाय कैं ।
जोडत कर्म कई ॥
रंक भये घर घर डोलत ।
अब कैसी निरमई ॥ दई० ॥ २ ॥

यह कुमति म्हारी जनम की वैरिनि ।
पीय कीनौ आपुमई ॥
पराधीन दुख भोगत मौंदू ।
निज सुध विसरि गई ॥ दई० ॥ ३ ॥

'मानिक' अरु सुमति अरज सुनि।
सतगुरु तो कृपा भई ॥
बिछुरे कंत मिलावहु स्वामी।
चरण कमल बलि गई ॥ दई० ॥ ४ ॥

[३७६]

राग—झंझोटी

आकुलता दुखदाई, तजो भवि ॥
अनरथ मूल पाप की जननी।
मोहराय की जाई हो। आकुलता० ॥१॥
आकुलता करि रावण प्रतिहरि।
पायो नर्क अघाई हो ॥
श्रेणिक भूप धारि आकुलता।
दुर्गति गमन कराई हो ॥ आकुलता० ।२॥
आकुलता करि पांडव नरपति।
देश देश भटकाई हो ॥
चक्री भरत धारि आकुलता।
मान भंग दुख पाई हो ॥ आकुलता० ॥३॥
आकुलता करि कोटीध्वज हूँ।
दुखी होइ बिललाई हो ॥
आकुल बिना पुरुष निर्धन हूँ।
सुखिया प्रगट लखाई हो ॥ आकुलता ॥४॥

पूजा आदि सर्व कारज मैं।
विघन करण बुधिगाई हो।।
मानिक आकुलता बिन मुनिवर।
निर आकुल बुधि पाई हो॥ आकुलता० ॥५॥

[३८०]

राग–बसन्त

जब कोई या विधि मन कौ लगावै।
तब परमातम पद पावै॥
प्रथम सप्त तत्वनि की सरधा।
धरत न संशय लावै॥
सम्यक् ज्ञान प्रधान पवन बल।
भ्रम बादल विघटावै॥ जब० ॥१॥
वर चरित्र निज में निज थिर करि।
विषय भोग बिरचावै॥
एकदेश वा सकलदेश धरि।
शिवपुर पथिक कहावै॥ जब० ॥२॥
द्रव्यकर्म नोकर्म भिन्नकरि।
रागादिक विनसावै॥
इष्ट अनिष्ट बुद्धि तजि पर में।
शुद्धातम कौ ध्यावै॥ जब० ॥३॥

नय प्रमाण निक्षेप करण के।
सब विकल्प छुटकावै ॥
दर्शन ज्ञान चरण मय चेतन ।
भेद रहित ठहरावै ॥ जव० ॥४॥
शुकल ध्यान धरि घाति घात करि ।
केवल ज्योति जगावै ॥
तीन काल के सकल ज्ञेय जुति ।
गुण पर्यय झलकावै ॥ जव० ॥५॥
या क्रम सौ वड भाग्य भव्य ।
शिव गये जांहि पुनि जावै ॥
जयवंतो जिन वृष जग मानिक।
सुर नर मुनि जश गावै ॥ जव० ॥६॥

[३८१]

राग-सोरठ

आकुल रहित होय निश दिन,
कीजे तत्व विचारा हो ॥
को ? मैं, कहा ? रूप है मेरा।
पर है कौन प्रकारा हो ॥ आकुल० ॥ १ ॥
को ? भव कारण बंध कहा ।
को ? आश्रव रोकन हारा हो ॥

खिपत कर्म-बंधन काहे सौं।
स्थानक कौन हमारा हो ॥ आकुल० ॥ २ ॥
इम अभ्यास किये पावत है।
परमानंद अपारा हो ॥
मानिकचंद यह सार जानिकै।
कीज्यौं बारंबारा हो ॥ आकुल० ॥ ३ ॥
[३८२]

राग-सोरठ

आतम रूप निहारा।
सुद्ध नय आतम रूप निहारा हो ॥
जाकी बिन पहिचानि।
जगत में पाया दुःख अपारा हो ॥ आतम० ॥ १ ॥
बंध पर्स बिन एक नियत।
है निर्विशेष निरधारा हो ॥
पर तें भिन्न अभिन्न अनोपम।
ज्ञायक चित हमारा हो ॥ आतम० ॥ २ ॥
भेद ज्ञान-रवि घट परकासत।
मिथ्या तिमिर निवारा हो ॥
'मानिक' बलिहारी जिनकी तिन।
निज घट मांहि सम्हारा हो ॥ आतम० ॥ ३ ॥
[३८३]

राग–सोरठ

ऐसे होरी खेलो हो चतुर खिलारि ॥
धर्म थान जहँ सब सज्जन जन, मिलि बैठो इकठार ॥१॥

ज्ञान सलिल पूरण पिचकारी, बानी बरषा धार ।
मेलत प्रेम प्रीति सौ जेते, धोवत करम विकार ॥२॥

तत्वन की चरचा शुभ चोबो, चरचौ बारंबार ।
राग गुलाल अबीर त्याग भरि रंग रंगो सुविचार ॥३॥

अनहद नाद अलापो जामैं, सोहे सुर झंकार ।
रीझि मगनता दान त्याग पर 'धर्मपाल' सुनि यार ॥४॥

[३८४]

राग–विहाग

जिया तू दुख से काहे डरे रे ॥
पहली पाप करत नहिं शंक्यो अब क्यों सांस भरे रे ॥ १ ॥

करम भोग भोगे ही छुटेंगे शिथिल भये न सरे रे ।
धीरज धार मार मन ममता, जो सब काज सरे रे ॥ २ ॥

करत दीनता जन जन पे तू कोईयन सहाय करे रे ।
'धर्मपाल' कहै सुमरो जगतपति वे सब विपति हरे रे ॥ ३ ॥

[३८५]

राग-रामकली

आयौ सरन तिहारी, जिनेसुर ॥
कृपा कर राखो निज चरनन,
आवागमन निवारी ॥ जिने० ॥ १ ॥
करम वेदना च्यारों गति की,
सो नहि परत सहारीं ॥
तारण विरद तिहारो कहिये,
भुगति मुकति दातारी ॥ जिने० ॥ २ ॥
लख चौरासी जौनि फिर्यौ हूँ,
मिथ्यामति अनुसारी ॥
दरसन देहु नेह करि मो पर,
अब प्रभु लेहु उबारी ॥ जिने० ॥ ३ ॥
जादोवंश मुकट मणि जिनवर,
नेमिनाथ अवतारी ॥
तुम तौ हो त्रिभुवन के पालक,
कितीयक बात हमारी ॥ जिने० ॥ ४ ॥
[३८६]

राग-काफी

प्रभु विन कौंन उतारै पार ।
भव जल अगम अपार ॥ प्रभु० ॥

कृपा तिहारी तै हम पायौ ।
नाम मंत्र आधार ॥ प्रभु० ॥ १ ॥
तुम नीकौ उपदेस दीयौ ।
इह सब सारन कौ सार ॥
हलके होइ चले तेई निकसे ।
बूडे तिन सिर भार ॥ प्रभु० ॥ २ ॥
उपगारी कौं ना बिसरिये ।
इह धरम सुखकार ॥
'धरमपाल' प्रभु तुम मेरे तारक ।
किम प्रभु लौं उपगार ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥
[३८७]

राग–आसावरी

अरे मन पापनसों नित डरिये ॥
हिंसा झूंठ बचन अरु चोरी, परनारी नहीं हरिये ।
निज परको दुखदायन डायन तृष्णा बेग बिसरिये ॥ १ ॥

जासों परभव बिगड़े वीरा ऐसो काज न करिये ।
क्यों मधु–बिन्दु विषय को कारण अंधकूप में परिये ॥ २ ॥

गुरु उपदेश विमान बैठके यहांते वेग निकरिये ।
'नयनानन्द' अचल पद पावे भवसागर सो तिरिये ॥ ३ ॥
[३८८]

राग–जंगला

किस विधि किये करम चकचूर ।
थांकी उत्तम क्षमा पै ।अचंभो म्हाने आवैजी ।।
एक तो प्रभु तुम परम दिगम्बर, पास न तिलतुष मात्र हजूर ।
दूजे जीव दयाके सागर, तीजे संतोषी भरपूर ।। १ ।।
चौथे प्रभु तुम हित उपदेशी, तारण तरण जगत मशहूर ।
कोमल वचन सरल सम वक्ता, निर्लोभी संजम तप–शूर ।। २ ।।
कैसे ज्ञानावरण निवारयो, कैसे गेरयो अदर्शन चूर ।
कैसे मोह–मल्ल तुम जीते, कैसे किये च्यारौं घातिया दूर ।। ३ ।।
त्याग उपाधि हो तुम साहिब, आकिंचन व्रतधारी मूल ।
दोष अठारह दूषण तजके, कैसे जीते काम क्रूर ।। ४ ।।
कैसे केवल ज्ञान उपायो, अन्तराय कैसे कियो निर्मूल ।
सुरनर मुनि सेवैं चरण तिहारे, तो भी नहीं प्रभु तुमको गरूर ।।५।।
करत दास अरदास 'नैनसुख' येही वर दीजे मोहे दान जरूर ।
जन्म जन्म पद–पंकज सेऊं और नहीं कछु चाहूँ हजूर ।। ६ ।।

[३८६]

राग – जंगला

जिस विधि कीने करम चकचूर–
सो विधि बतलाऊँ तेरा ।
भरम मिटाऊँ वीरा ।
जिस विधि कीने करम चकचूर

सुनो संत अर्हंत पंथ जन ।
स्वपर दया जिस घट भरपूर ॥
त्याग प्रपंच निरीह करें तप ।
ते नर जीते कर्म करूर ॥ १ ॥

तोडे क्रोध निठुरता अघ नग ।
कपट क्रूर सिर डारी धूर ॥
असत अंग कर भंग बतावे ।
ते नर जीते कर्म करूर ॥ २ ॥

लोभ कंदरा के मुखमें भर ।
काठ असंजम लाय जरूर ॥
विषय कुशील कुलाचल फूँके ।
ते नर जीते करम करूर ॥ ३ ॥

परम क्षमा मृदुभाव प्रकाशे ।
सरलवृत्ति निरवांछक पूर ॥
धर सजम तप त्याग जगत सब ।
ध्यावैं सतचित केवलनूर ॥ ४ ॥

यह शिवपंथ सनातन संतो ।
सादि अनादि अटल मशहूर ॥
या मारग "नैनानन्द" हु पायो ।
इस विधिजीते कर्म करूर ॥ ५ ॥

राग–प्रभाती

मेटो विथा हमारी प्रभूजी मेटो बिथा हमारी ।।
मोह विषमज्वर आन सतायौ ।
देत महा दुःखभारी ।।
यो तो रोग मिटनको नाहीं ।
औषध बिना तिहारी ।। १ ।।

तुम ही बैद धन्वन्तर कहिये ।
तुमही मूल पसारी ।।
घट घट की प्रभु आप ही जानो ।
क्या जाने बैद अनारी ।। २ ।।

तुम हकीम त्रिभुवनपति नायक ।
पाऊँ टहल तुम्हारी ।।
संकट हरण चरण जिनजी का ।
नैनसुख शर्ण तिहारो ।। ३ ।।

[३६१]

राग–काफी कनडी (ताल एक)

जिनराज थे म्हारा सुखकार ।।
और सकल संसार बढावत ।
तुम शिव मग दातार ।। जिन० ।। १ ।।

तुमरे गुण की गणना महिमा ।
करि न सकै गणधार ॥
वानी श्रवण रूप निरखत ए ।
दोऊ ही मो हितकार ॥ जिन० ॥ २ ॥
दुखद कर्म वसु मैं उपजाये ।
ते न तजैं मेरी लार ॥
दूरि करन की विधि अब समझी ।
तुमसों करि निरधार ॥ जिन० ॥ ३ ॥
स्वपर भेद लखि रागद्वेष तजि ।
संवर धारि उदार ॥
करम नाशि जिन पाय प्रभुढिंग ।
नयन लहौ भवपार ॥ जिन० ॥ ४ ॥

[३६२]

राग-ललित

जिया बहु रंगी परसंगी बहु विधि भेष बनावत ॥
क्रोध मान छल लोभ रूप ह्वै ।
चेतन भाव दुरावत ॥ जिया० ॥ १ ॥
नर नारक सुर पशु परजै धर ।
आकृति अमित सिखावत ॥
सपरस रस अरु गंध वरण मय ।
मूरतिवंत लखावत ॥ जिया० ॥ २ ॥

कबहूँ रंक कबहूँ ह्वै राजा ।
निरधन सधन कहावत ॥ जिया० ॥ ३ ॥
इह विधि विविधि अवस्था करि करि ।
मूरख जन भरमावत ॥
जिनवानी परसाद पायकै ।
चतुरसुनयन जनावत ॥ जिया० ॥ ४ ॥
[३६३]

राग–मारु

चलै जात पायो सरस ज्ञान हीरा ॥
दुख दारिद्र सुकृत सुकृत ।
दूरि भई पर पीरा ॥ चलै० ॥ १ ॥
सित वैराग्य विवेक पंथ परि ।
वरपत सम रस नीरा ॥
मोह धूलि वह जात, जगमग्यो ।
निर्मल ज्योति गहीरा ॥ चलै० ॥ २ ॥
अखिल अनादि अनंत अनोपम ।
निज विधि गुण गम्भीरा ॥
अरस अगंध अपरस अनीतन ।
अलख अभेद अचीरा ॥ चलै० ॥ ३ ॥
अरुण सुपेत न स्वेत हरित दुति ।
स्याम वरण सु न पीरा ॥

आवत हाथ काच सम सूझै।
पर पद आदि शरीरा ॥ चलै० ॥ ४ ॥
जासु उद्योत होत शिव सन्मुख।
छोडि चतुर्गति कीरा ॥
देवीदास मिटै तिनही की।
सहज विषम भव पीरा ॥ चलै० ॥५॥

[३६४]

राग-सोहनी

इस नगरी में किस विधि रहना,
नित उठ तलब लगावेरी रहैना ॥

एक कुवे पांचो पणिहारी,
नीर भरै सब न्यारी न्यारी ॥ १ ॥
बुर गया कुवा सूख गया पानी,
बिलख रही पांचों पणिहारी ॥ २ ॥
बाज़ू की रेत ओसकी टाटी,
उड गया हंस पड़ी रही माटी ॥ ३ ॥
सोने का महल रूपे का छाजा,
छोड चले नगरी का राजा ॥ ४ ॥
'घासीराम' सहज का मेला।
उड गया हाकिम लुट गया डेरा ॥ ५ ॥

[३६५]

राग—भैंरू

भोर भयो उठि भज रे पास।
जो चाहै तू मन सुख वास ॥
चंद किरण छवि मंद परी है।
पूरब दिशि रवि किरण प्रकास ॥ भोर० ॥१॥
ससि अर विगत भये हैं तारे।
निश छोरत है पति आकाश ॥ भोर० ॥२॥
सहस किरण चहुँ दिस पसरी है।
कवल भये वन किरण विकाश ॥ भोर० ॥३॥
पखीयन ग्रास ग्रहण कुं उडे।
तमचुर बोलत है निज भास ॥ भोर० ॥४॥
आलस तजि भजि साहिब कूं।
कहै जिन हर्ष फलै जु आस ॥ भोर० ॥५॥

[३६६]

राग--कनडी

मेरौ कह्यौ मानि लै जीयरा रे ॥
दुर्लभ नर भव कुल श्रावक कौ जिन वच दुर्लभ जानि लै ॥
जीयरा रे० ॥१॥
जिहि बसि नरकादिक दुखपायौं, तिहि विधि कौ अब भानिलै।
सुर सुख भुंजि मोखिफल लहिये असी परणति ठांनि लै।
जीयरा० रे० ॥२॥

पर सौं प्रीति जानि दुखदैंनी आतम सुखद पिछांनि लै।
आश्रव बंध विचार करीनै संवर हिय मैं आनि लै ॥
जीयरा रै ॥३॥

दरसण ग्यान मई अपनौ पद, तासौ रुचि की बांनि लै।
सहज करम की होय निरजरा, असो उदिम तांनि लै ॥
जीयरा रै० ॥४॥

मुनि पद धारि ग्यांन केवल लहि, सिवतिय सौं हित सांनि लै।
किसनस्यंघ परतीति आंनि अब, सद्गुर के वच कांनि लै ॥
जीयरा रै० ॥५॥

[३६७]

राग–गोडी

साधो भाई अब कोठी करी सराफी।
वडे सराफ कहै ॥
भव विसतार नगर के भीतर।
वणिज करण को आए ॥ साधो० ॥१॥
कुमति कुग्यान करी अति जाजिम।
ममता टाट बिछाया ॥
अधिक अग्यान गद्दी चढि बैठे।
तकिया भरम लगाया ॥ साधो० ॥२॥
मन मुनीम वानोतर कीन्हा।
औगुन पारिख राखा ॥

इंद्री पंच लगादे पठाई ।
लोभ दलाल सु भाखा ॥ साधो० ॥३॥
उदै सुभाव कीया रुजनामा ।
तिसना बही वधाई ॥
राग दोष की रोकड राखी ।
पर निंदा बदलाई ॥ साधो० ।४।
आठ करम आढतिये भारी ।
साहुकार सवाये ॥
पुन्य पाप की हुन्डी पठाई ।
सुख दुख दाम कमाऐ ॥ साधो० ॥५॥
महा मोह कीन्ही वढवारी ।
कांटा कपट पसारा ॥
काम क्रोध का तोला कीन्हा ।
तोला सब संसारा ॥ साधो० ॥६॥
जब हम कीना ग्यान अडेवा ।
सदगुर लेखा ठाया ॥
सहजराम कहै या वानिज मैं ।
नफा हाथ न कछु आया ॥ साधो० ॥७॥

[३९८]

राग—ईमन

बहुरि कब सुमरोगे जिनराज हो ॥
औसर बीति जायगो तब ही,
पछितै होवि न काज ॥ बहुरि० ॥ १ ॥

बालापन ख्यालन मैं खोयो,
तरुनायो तियराज ॥
विरध भये अजहूँ क्यौ न समरों,
देव गरीबनिवाज ॥ बहुरि० ॥ २ ॥
मिनषा जनम दुर्लभ पै है,
अरु श्रावग कुल काज ॥
औसौ संग बहुरि नहीं मिलि है,
सुन्दर सुघर समाज ॥ बहुरि० ॥ ३ ॥
माया मगन भयो क्या डोलै,
देखि देखि गज बाज ॥
यह तौ सब सुपने की संपति,
चुरइलि कौ सो साज ॥ बहुरि० ॥ ३ ॥
पांच चोर तेरौ घर मोसै,
तिन कौ करो इलाज ॥
अब बस पकरि करो मनवां को,
सर्बाइन को सिरताज ॥ बहुरि० ॥ ५ ॥
औरन को कछु जात नाहिं न,
तेरो होत अकाज ॥
लालचन्द विनोदी गावै,
सरन गहै की लाज ॥ बहुरि० ॥ ६ ॥

राग–ललित

कहियै जो कहिबे की होय ॥
आप आप में परगट दीसै,
बाहिर निकस न पावै कोइ ॥ कहियै० ॥ १ ॥
बचन राशि सब पुद्गल परजै,
पुद्गल रूप नहीं पद सोय ॥ कहियै० ॥ २ ॥
निर-विकलप अनुभूति सास्वती,
मगन सुज्ञान आन भ्रम खोय ॥ कहियै० ॥ ३ ॥
[४००]

राग–ख्याल तमाशा

जिया तुम चोरी त्यागोजी, बिन दिया मत अनुरागोजी ॥
पंच पाप के मध्य विराजे नाम सुनत दुख भाजे।
हितू मिलापीं लखिकर भाजे, सुख सुपने नहिं छाजे ॥ १ ॥
राजा दंडै लोकां भंडे, सज्जन पंच विहंडै।
पंच भेद युत समझ तजो, जो पदस्थ तिहारी मंडै ॥ २ ॥
प्राण समान जान परधन को, मत कोई हरन विचारो।
हिंसा ते भी बडो पाप है, यह भाखी गणधारो ॥ ३ ॥
सत्यघोष यातैं दुख पायो, और भी कुगति डुलाये।
'पारश' त्याग किया सुख उपजे, दोउ लोक उजलाये ॥ ४ ॥
[४०१]

शब्दार्थ

१. वृषभ—प्रथम तीर्थङ्कर भगवान आदिनाथ। संसारार्णवतार–संसार रूपी समुद्र के तारने वाले। नाभिराय–भगवान आदिनाथ के पिता। मरुदेवी–भगवान आदिनाथ की माता, धनुष–चार हाथ अथवा दो गज प्रमाण एक धनुष।

२. नेम–२२ वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ, श्रीकृष्ण के चचेरे भाई। गिरिनारि–जूनागढ के पास गिरनार पर्वत, इसका नाम 'उज्जयन्त' भी है। सारंग–मृग समूह। सारगु–कामदेव। सारंगनयनि–मृगनयनी। तंतमंत–तंत्रमंत्र। सांवरे–श्यामवर्ण वाले नेमिनाथ। राजुल–राजा उग्रसेन की पुत्री जिसका नेमिनाथ के साथ विवाह होने वाला था।

३. मनमोहन–नेमिनाथ। बोहरे–लौट गये। पोकार–पुकार। पलरति–रत्ती भर, बिलकुल। तानो–व्यंगात्मक शब्द। दिवाजे–महाराजा। सारंगमय–धनुष युक्त। धूनी ताने–तीर साधे हुए। छोरी–छोड़ी। मुगति वधू विरमानो–मुक्ति रूपी स्त्री से रमने को।

४. हलधर–बलराम। हरषीयनसूं–इनसे हर्षित हुये। चन्द्र-बदनी–राजुल। थीर–स्थिर।

५. नरिन्द्र—नरेन्द्रराजा। रजत है—धूल के समान लगा है। संकर—शंकर, कल्याणकारी।

६. सावनि—श्रवण। नेरे—पास। कीर—कील या सूआ। गुपति—गुप्त। निठोर—निष्ठुर।

७ वरज्यो—मना करने पर। मतिफोर—ज्ञान को ठुकराकर।

८. मण्डन—शृंगार। कजरा—काजल। पोरहुँ—पिरोती हूँ। गुननी—गुणों की। बेरी—माला। गमे—रुचे। कुरंगिनी—हरिणी। सर—शर, बाण।

९. सुदर्शन—सुन्दर है दर्शन जिनका—ऐसा सेठ सुदर्शन। अभिया रानी—अभया रानी—जो सेठ पर मोहित हो गई थी।

१०. हरिवदनी—चन्द्रवदनी, राजुल। हरि को तिलक—हरिवंश तिलक। हरि—नेमिनाथ। कंवरी—कुमारी राजुल। हरी—हरा अथवा पीला रंग। ताटक—कानों का गहना। हरि—हरण कर। श्रवनि—कान। हरि—सूर्य, चन्द्रमा। हरि सुता-सुत—राजुल-नेमि, सिंह के बच्चे बच्ची। द्विज—चन्द्रमा। चिबुक—ठोडी। मृनाल—कमल। देही—शरीर। हरी गवनी—सिंह की सी चाल वाली। कुहरि—प्रताप। वेजी—भेष। जवनी—जाने लगे।

११. पेनीले—पीले और नीले। नरपटोरी—सुन्दर वस्त्र। नो साह कुं—वर। मान मरोरी—मान को मरोड़ कर।

१२. राका–पूर्णिमा। शशधर–चन्द्रमा। जनक सुता–सीता। बारिज–नेत्र रूपी कमल। बारी–पानी, आंसू। विदर–विदर्भ। सीआ·सीता। मते–सलाह।

१३. निमिष–आंख मीचने जितना समय। वरिषमो–वर्ष बराबर। सारगधर–राम।

१४. बोहोरी–वापिस, लौटकर। समुद्‌विजय–नेमिनाथ के पिता। इन्दु–चन्द्रमा। छारि–छांडि। चरे–चढ़े।

१५. पास जिनेशा–जिनेन्द्र देव, २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ। फणेंदा–सर्प का फण। कमठ–भ० पार्श्वनाथ का पूर्व भव का वैरी-एक असुर। भविक–भव्यजन। तमोपह–अन्धकार नष्ट करने वाले। भुविज-दिविजपति–भूपति इन्द्र। वामानंदा–वामा देवी के पुत्र पार्श्वनाथ।

१६. निवाजत–कृपा करना। महीरुह–कल्पवृक्ष। सारंग–मयूर।

१७. बाधि–वृथा। त्रिषै–विषय भोगों में। कूट–कूट-नीति। निपट–बिल्कुल। विटल–बदमाश। त्रिघटायो–घटाया। मोही–मुझसे।

१८. चिन्तामणि–सब मनोरथ पूर्ण करने वाला रत्न। विरद–यश, कर्त्तव्य। निबहिये–निभाइये। बिकाने–बिक गये।

१६. नित्राज–कृपा। व्याल–सर्प। हणीजे–मारना। दीन–दिन। छूई–छूना। बाधि–बांधकर। जीजे–जीता हूँ।

२०. घरहि घरहि–घडी घडी। बिसुरत–याद करते करते। बाउरी–बावली। कल–चैन। जीउ–जिय, चित्त।

२१ तस भर–तृषा युक्त। वसंत हेमभर–बसंत ऋतु की सी ठडी बौछार। दादुर–मेंढक। दामिनी–बिजली।

२२. सहिय–सभी। सहिलडी संगे–सखियों के साथ। पास–पार्श्वनाथ। मनरंगे–प्रसन्न मनसे। सहू पातक–सभी पाप। भव भय–संसार के भय। वारण–निवारण करने वाले। हरणवारु–हरने वाले।

२३. लोडण पास–लोडण पार्श्वनाथ। वृजिनि–दुष्ट पापी। जिनवर–जिन श्रेष्ठ (पार्श्वनाथ)।

२४. जिनि–जिनको। जिते–जीत लिये जावे। रजनी राज–निशाचर। अंक–चिह्न। अहिपति–सर्प, पार्श्वनाथ का चिह्न।

२५. सवारथ–स्वार्थ। यान–अज्ञानी। घीउ–घृत।

२६. अजहूँ–आज तक।

२७. नय विभाग विन–स्याद्वाद सिद्धांत के जाने बिना। कलपि कलपि–कल्पना कर करके। चिद्रूप–चिदानन्द। जारयउ–जलायो।

मनमथु–कामदेव। प्रीतपाले–रक्षा करे। खटुकाई–षट् काय के जीव। फणिपति–फणीन्द्र। पाई–पांव। करन–इन्द्रियां। अतिसाई–अतिशय युक्त।

२८. फनी–फणिपति। बिनु अंबर–बिना वस्त्र-दिगम्बर। सुभ करनी–शुभ करने वाले। तरुन तरनी–तरुण सूर्य-मध्यान्ह काल का सूर्य। वसुरस–आठ प्रकार का रस। साधुपनी–साधुपन। दुरितु–पातक।

२६. सरवरि–बराबरी। जड़रूप–मतिहीन। पंकज–कमल। हिम–पानी। अमृत श्रवनि–अमृतमय उपदेश सुनने के लिये। सिरि वसनी–वैभवमय आवास।

३०. सिराइ–प्रसन्न होना। सहताइ–संतोषित। पराछित–दूर जाते हैं। पसाइ–प्रसाद। उपसमहि–शांत। मारी–महामारी। निरजरहि–निर्जरा होना, धीरे २ समाप्त होना।

३१. सक्र–इन्द्र। चक्रधर–चक्रवर्ति। धरन प्रमुख–धरणी प्रमुख, राजा। बहि रंग–बाह्य। संग–परिग्रह। परिसह–परीषह।

३२. कल्याणक–गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और मोक्ष के समय होने वाले महोत्सव। सचीपति–इन्द्र। सिवमारग–मोक्ष मार्ग। समोसरन–केवल ज्ञान प्राप्त होने के बाद-उपदेश देने

की सभा। सिरिराज–श्री जिनराज। केवल-केवलज्ञान-पूर्ण ज्ञान। मज्जत–डूबते हुए।

३३–निरंवर-निर्वस्त्र। कटाख–कटाक्ष।

३४. सासति–दण्ड देना। वधु–बध, हिंसा। मृषा–झूंठी। वित्त वधू–वेश्या। अविधा-अविद्या। संतान–परम्परा।

३५. संतत–बराबर रहने वाला। पारे–पावे, प्राप्त करे। जाड्य-जडता। निवेरौ–हरने वाले। कुमुद-बिरोधि-कमलों के मुर्झाने वाला, चन्द्रमा। कृसी कृत सागरू–सागर के साथ घटने बढने वाला। श्रवै–वहता है। वन–बिनु।

३६. करम–कर्म। विगोयो–वृथा खोता है। चिंतामनि–रत्न। वाइस को–काग उडाने को। कुंजर–हाथी। वृष–धर्म। गोयो–मोड लिया। धिरत–घृत। माति–मस्त। कंदर्प्प–कामदेव।

३७. अरसात–आलस्य करता है। चतुर गति–देव, मनुष्य-तिर्यंच और नरक गति। विर्पात–बन। विरमात–रम रहा है। सहज–स्वाभाविक। अघात-थकना। ओसनि–ओस-हवा में मिली हुई भाप जो रात्रि के समय सरदी से जम कर जल कण के रूप में गिरती है।

३८. लौ–लौ लगाना। चेतन–आत्मा। चेतन–जीव।

३६. जिन—जनि, मत करो। प्रकृति—स्वभाव। तू—हे आत्मन्। सुज्ञान—विवेकी। यहु—यह। तऊ—तोभी। परतीति—भरोसा। सुह्वौ—हो चुका। सुयहु—होगया। समिति—बराबरी। मोहि—मुझको। वसिकै—बस करके। सुतोहि—तुमको। करन—करने की। फीति—फिरता है।

४०. मधुकर—भौंरा। कुभयो—खराब हो गया। अनत—अन्य जगह। कुविसन—खराब व्यसन। अवस—बेवस। राजहंस—परम गुरु। सनमानो—सम्मानित। सहतीने—समाती हुई।

४१. मे मे -मैं मैं। सुक्यों—क्यों। गठनि—गठने वाला। कर—हाथ में। कुसियार—एक प्रकार का ईख। सुक—तोता।

४२. श्रवन—कान।

४३. कल्हि—कल। सु अहलै—साधारण। भायो—अच्छा लगता है।

४४. उरगानौ—सेवक, चेरा। त्रासनि—डर से। मदनु-कामदेव। छपानौ—छकाया। राजु—राज्य। वसु प्रतिहार—अष्ट प्रातिहार्य-केवल ज्ञान होने पर तीर्थंकरों के आठ विशेष गुण उत्पन्न होते हैं :-(१) अशोक वृक्ष, (२) रत्नमय सिंहासन, (३) तीन छत्र, (४) भामंडल, (५) दिव्य ध्वनि, (६) देवों द्वारा पुष्प

वृष्टि, (७) चौसठ चंवरों का ढुलना, (८) दुंदुभि बाजों का बजना। अनन्त चतुष्टय—केवल ज्ञान होने पर अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य (बल) प्रकट होते हैं। चौतीस अतिसय—तीर्थंकरों के ३४ अतिशय होते हैं, १० जनम के, १० केवल ज्ञान के और शेष १४ अतिशय देवताओं द्वारा किये जाते हैं। समोसरन—तीर्थंकर को केवल ज्ञान प्रकट होने पर देवों द्वारा रचित सभा स्थल जहां भगवान का उपदेश होता है। रानौं—राजा। बानौं—स्वरूप।

४५. सर्वज्ञ—पूर्ण ज्ञानी। कत—क्यों। टोहि—खोज करके।

४६. मिथ्या—मिथ्यात्व। बिसयो—अस्त हो गया। सुपर—स्वपर। मोह—मोह-माया। कुनय—पदार्थों को जानने के मिथ्या उपाय [ज्ञान]। अथयो—हुआ। गंतर—अन्य गतियों में। जीड मांगई—जडता चली गई। नयो—झुक गया, चला गया। चक्रवाक—चकवा। विलयो—नष्ट हो गया। सिवसिरि—मुक्ति।

४७. अनय पत्त—मिथ्यान दृष्टि। जारौ—जलाकर। नास्यो—नष्ट कर दिया। अनेकांत—एक से अधिक दृष्टियों से पदार्थों को जानने का मार्ग, जैन धर्म का सबसे बड़ा सिद्धांत इसे 'स्याद्वाद' भी कहते हैं।

विराजत—सुशोभित। भान—ज्ञान सूर्य। सत्तारूप—शाश्वत

रहने वाला, सत्स्वरूप। ज्ञेयाकार—पदार्थ के आकार को। विकास्यौ—प्रकाशित करने वाला। अमंद—मंदता रहित। सूरति—मूर्त्तिमान-सूरत शकल वाला।

४८. भीनौं—भीगा। अविद्या—अज्ञानता। कीनौं—क्षीण किया। विरंग—कई प्रकार के रंग। वाचक—कहने वाला। चित्र—विचित्र। चीन्ही—देखा।

४६. उमरो—अमीर। आन—अन्य। को—कौन। सिगरौ—सम्पूर्ण। श्रेणिक—राजगृही के राजा।

५०. संकतु—शंका करना। परत्र—पर। कत—किसे। मदनउ—कामदेव। जार—जला रहे हैं। महावत—हाथी का चालक अथवा महाव्रत। तकसीर—गलती। धुर—धुरा।

५१. कलुष—मलिन। परिनाम—परिणाम, भाव। सल्यनिपाति—कांटे को निकालना। वसु—अष्ट प्रकार।

५२. धौकलु—धमकल-शोरगुल। जम—यम। बांचे—बचे।

५४. आरति-चिन्ता। लसुन-लहसन। वरबस-लाचार। बाल गोपाल-बच्चे तक भी। गोइ-छिपाकर। लुनिये-काटिये। बोइ-बोना।

५५. अपनपौ-अपनापन अथवा अपने स्वरूप को। दारादि-स्त्रियों को। कनक-स्वर्ण। कनक-धतूरा। चौराई-

पागलपन छाना। रजत-चांदी। पुद्गल-अचेतन, जड़ कसठ-कष्ट। मूठि-मुट्ठी।

५६. विगसे-फूले। मकरंदु-पराग (फूलों का)। मुंचत-छोड़ते हैं। चित चकोर-चित्त रूपी चकोर पक्षी। बाढ़्यो-बढ़ा। दंदु-द्वंद। अंतरगत-हृदय में। मंदु-धीमा, मंद। सहतानै-सहित। छंदु-पद-कविता।

५७. नारे-गाय का बछड़ा। आउ-आयु। प्रति बंधक-रोकने वाला। अकुलात-आकुलित होना। परोक्ष-इन्द्रियों की सहायता से होने वाला ज्ञान, परोक्ष ज्ञान। अवरन-आवरण। भारे-भारी।

५८. कुवह-कुबुद्धि, मूर्ख। निवह्यो-त्रहक करके। साल-मकान (नीचे का कमरा)। वरबस-जबरन। डह्यो-डाह दिया। दारुण-कंपादेने वाला। रेवातटु-रेवा नदी के किनारे-सिद्धवरकूट क्षेत्र।

५६. मिथ्या देव-झूंठे देव। मिथ्या गुरु-झूंठे गुरु। भरमायौ-भ्रमाया। सरयौ-बना। परिभायौ-भ्रमण करता रहा। निवेरहि-दूर करो।

६०. असदृश-कोई बराबरी वाला नहीं। राजसु-शोभित होना। रज-धूलकण। ताप विधि--तपस्या द्वारा। बडेरौ-बढ़ाने वाला। नासुन-नष्ट करने वाला। करेरौ-

करने वाला। जनितु—पैदा हुआ। पसरयउ—फैला हुआ। आन—दूसरी जगह।

६१. आउ—आयु। महारथ—योद्धा। बापरो—बेचारा। कुसुमित—खिले हुए।

६२. परसौ—अन्य से। जान—ज्ञान। हीन—तुच्छ। परु-पर। पजवान—प्रधान। गुमान—घमण्ड। निदान—निश्चित।

६३. पातगु—पाप। पटितर—सदृश।

६४. नटवा—नट। नाइक—नायक। लाइकु—योग्य। काछ-कछाइन—नटका वस्त्र विशेष। पखावजु—ढोलक। रागादिक—राग द्वेष आदि। पर—अन्य। परिनति—भाव।

६५. समीति—समीपता, अभिन्नता। डहकतु—जलाना। बसीति—बसना। दाउ—दांव। कैफीति—कैफियत, विवरण।

६६ मोह—ममता। गुनंनि—गुणस्थान, आत्मा के भावों का उतार चढाव। उदितउ—उदय से। विअसि—बिना तलवार के। सरचाप-धनुष बाण। दाप-दर्प, घमंड। कौनु-कौन।

६७. बलि-बलशाली। पास-पार्श्व जिनदेव। विस हरउ-विष हरने वाले। थावर-स्थावर जीव, एकेन्द्रिय वाले जीव। जंगम-त्रसकायिक जीव, दो इन्द्रिय से लेकर पांच

इन्द्रिय वाले जीव। कमठ-पार्श्वनाथ के पूर्व भव का वैरी। ऊभौ—खड़ा। वालु—बालक।

६८. सेखर—मस्तक। पाटल—पाटल पुष्प के समान। पदुमराग—पद्मरागमणि। जाड्य—जड़ता। दरिसन—दर्शन। दुरित—पातक।

६९. विषाद—दुःख। विस्मय—आश्चर्य। अहमेव—अभिमान, अहंकार, मद। परसेव—पसीना। भेव—भेद।

७०. निरंजन—निर्दोष। सर—मस्तक। खंजन दृग—खंजन पक्षी के समान आंखों वाले।

७१. साझा—सीर। गह—ग्रहण कर। गह—गृह, (घर)। मुकद्दम—गांव का चौधरी।

७२. वनज—व्यापार। टांडा—बालद। उल्फत—प्रेम। निरवाना—मुक्ति।

७३. मूलन बेटा जायो—मूल नक्षत्र में पुत्र उत्पन्न हुआ, शुद्धोपयोग। खोज-खोज २ कर। बालक-शुद्धोपयोग उत्पन्न हुआ।

७४. महाविकल—व्याकुल। हिंसारंभ—आरंभी हिंसा, गृहस्थ के प्रतिदिन के कार्यों में होने वाली हिंसा। मृषा—असत्य। निरोधै—रोके। हिये—हृदय में। दरब—द्रव्य। परजाय—पर्याय। उदयागति—उदय में आने वाले।

७५. चिंतामनि–चिंतामणि पार्श्वनाथ । मिथ्यात–मिथ्यात्व । निवारिये–दूर कीजिये । निसवेरा–अज्ञान रूपी रात्रि के समय । बिंब–प्रतिमा ।

७६. भौंदू भाई–बुद्धू, मूर्ख । करषैं–खींचते हैं । नाखैं–डालते हैं । कृतारथ–कृतकृत्य । केवलि–केवल ज्ञानी, तीर्थंकर । भेद–निजपर का भेद । अपूठे–एक तरफ । निमेखैं–निमिष मात्र, पल भर भी । विकलप–विकल्प । निरविकलप–निर्विकल्प, जहां किसी प्रकार का भेद न हो ।

७७. सबद–शब्द । पागी–लीन होना । विलोवैं–देखे । ओट–आड में । पुद्गल–जड़ । भ्रामक–बहकाने वाली । जंगम काय–त्रसकायिक । थावर–स्थावर, एकेन्द्रिय । भीम को हाथी–महामूढ़ ।

७८. दिति–दैत्यों की माता । धारणा–ध्यान करते समय हृदय में होने वाली । निकांछित–सम्यग्दर्शन के निकांक्षित आदि आठ गुण । बलखत–रोता हुआ । दरयाव–समुद्र । सेतुबंध–समुद्र में पुल बांधना । छपक–क्षपक श्रेणी । कबंध–धड़ ।

७९. विलाय–दूर होना । पौन–पवन, हवा । राधारौनसौं–राधा से (आत्मा) रमण की इच्छा । बौनसौं–वमन से । लौनसौं–सौन्दर्य । अवगौनसौं–आवागमन से ।

८०. दुबिधा–शंका ।

८१. नेक–कुछ। वेढे–घिरा हुआ। निरवार–छुटकारा। पखान पाषाण। पखार–स्नान करके, धोकर। छार–धूल। उगलि–उगाल कर। पाट–रेशम। कीरा–कीड़ा। कबूतर लौटन–भूमि पर लुढकने वाला कबूतर।

८२. आरत–दुःखी। नारकिन–नरक में रहने वाले प्राणियों के, दुष्टों के।

८३. भरत–प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र। समकित–सम्यक्त्व। उद्दोत–उदय। गोत–गोत्रकर्म। सुकुमाल–सुकुमाल मुनि।

८४. मथानी–मथने वाली। पिण्ड–शरीर। वेदै–जाने। उछेदे–उखाड देना। रज–मिट्टी। न्यारिया–रास्तों में नालियों के नीचे की मिट्टी को शोधकर चांदी-सोना निकालने वाले। कर्म विपाक–कर्मों का पकाना। मन कीलैं–मन को एकाग्र करता है। भीलै–लवलीन होना।

८५. मरीचिका–किरणों की परछाई मृग-तृष्णा। चुरैल का पकवान–जिससे खूब खाने पर भी भूख न मिटै। अपावन–अपवित्र। खेह–मिट्टी। अपनायत–अपनापन।

८६. अलख–जो देखने में न आवे। भेसा–भेष में। प्रवान–प्रमाण। लै–गाने की लय का जैसा। दरवित–द्रवित। खे सा–आकास के समान। वरता–वरतने वाला, होने वाला।

८७. पटपेखन–एक प्रकार का खेल, कपड़े से मुंह ढक कर खेला जाने वाला खेल। वेला–समय। परि–पडी। तोहि–तेरे। गल–गले में। जेला–जंजाल, कांटेदार जेली के समान। छेला–बकरा। सुरमेला–सुलझाड़ा।

८८ बंध–बंधु, भाई। जा बंध–बंध जा। विभूति–वैभव। ठानै–करने का दृढ विचार। बंध–कर्मों का आत्मा के प्रदेशों के साथ चिपट जाना। हेत–हेतु, कारण।

८६ हित–हित करने वालों मे। बिरचि–विरक्त हो। रचि–लवलीन, स्नेह। निगोद–साधारण बनस्पतिकायिक जीवों की पर्याय विशेष, जहां ज्ञान का सबसे कम क्षयोपशम हो। पहार–पहाड़, पर्वत। सुरज्ञान–श्रेष्ठ ज्ञान से युक्त।

६०. समता–समभाव। तीन रतन–सम्यग्यदर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र रूपी त्रिरत्न। व्यसन–बुरी आदतें, व्यसन सात होते हैं:–(१) जूआ खेलना, (२) चोरी करना, (३) वेश्या-सेवन, (४) शराब पीना, (५) मांस खाना, (६) शिकार खेलना, (७) पर स्त्री गमन नरना। मद–आठ मद हैं। कषाय–जो आत्मा को कषै अर्थात् दुःख दे, कषाय के २५ भेद हैं:–अनंतानुबंधी, प्रत्याख्यान, अप्रत्याखान एवं संज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभ की चोकड़ी तथा हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, एवं नपुंसक वेद। निदान–क्रिया के फल की आकांक्षा करना। मोहर्यों–मोह ममत्व।

६१. कलत्र–स्त्री। उदय–कर्मोदय। पुद्‌गल–जड़, शरीर। भव परनति–संसार परिणमन। आश्रव–नवीन कर्मों का आना। लहरि तड़ता–बिजली की लहर अथवा चमक। विलाया–नष्ट होना। गहल–मस्ती, नशा। घररावा–गड़गड़ाहट, घर्राना। अनत चतुष्टय–अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, एवं अनन्त वीर्य।

६२. समकित–सम्यक् दर्शन, सम्यक्त्व। बटसारी–एक प्रकार का खाद्य पदार्थ। सिवका–पालकी।

६३. भौ भार–संसार का बोझा।

६४. धायो–भागा। कूंपल–पेड़ के नये पत्ते। सुआयाजी–लायाजी।

६७. अष्ट द्रव्य–जल, चन्दन, अक्षत पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, एवं फल ये पूजा करने के लिए आठ द्रव्य होते हैं।

६६. निज परणति–अपनी आत्मा में विचरण करना।

१००. रति–प्रेम। रुद्रभाव–बुरे विचार।

१०१. झर–लगातार बौछार। मगदरसी–मार्ग दर्शन करने वाला।

१०३, कल्पवृक्ष–भोग-भूमि का वृक्ष जिससे सभी प्रकार की वाञ्छित वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। जिनवाणी–भगवान जिनेन्द्र देव

का उपदेश। तत्व–वस्तु, तत्व ७ प्रकार के होते हैं–जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, और मोक्ष। सरधा–श्रद्धा, विश्वास।

१०४. जामण–जन्म लेना। विरद्–अपनी बात अथवा प्रसिद्धि।

१०५. रविसुत–यमराज, शनि।

१०६. अरिहंत–जिनदेव-जिन्होंने घातिया कर्मों को नष्ट कर दिया है। संजम–संयम।

१०७. पगे–रत रहना।

१०८. श्रावग–श्रावक, जैन गृहस्थ।

१०६. भीना–लवलीन होना। हीना–सूक्ष्म। उगीना–उगेरणी करना, दोहराना।

११०. करन–कर्ण, कान।

१११. त्रसना–तृष्णा, लालच।

११२. सिद्धान्त–जैन सिद्धांत। बखान–व्याख्यान, वर्णन।

११३. छानी–छुपी हुई। प्रथम वेद–जैन साहित्य चार वेदों (भागों) में विभाजित हैं–चार वेद अर्थात् अनुयोग–प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग। ग्रन्थबंध–ग्रन्थ के रूप में बांधकर।

११४. नैक-किंचित। असाता-दुःख, अशुभ, वेदनीय कर्म का भेद। साता-सुख। तनक-किंचित।

११६. श्रमण-तीर्थंकर। साधरमी-समान धर्म मानने वाले बन्धु।

११७. टेरत-पुकारना। हेरत-देखना।

११८ परीसह-शारीरिक कष्ट, ये २२ प्रकार के होते हैं।

११६. बालक-तीर्थंकर, नेमिनाथ। समदविजैनन्दन-समुद्र विजय के पुत्र। हरिवंश-वंश का नाम। सुरगिरि-सुमेरु पर्वत। प्रक्षाल-न्हवन, स्नान। शची-इन्द्राणी।

१२०. अलख नाम-अदृष्ट प्रभु। अष्ट कर्म—आठ प्रकार के कर्म-ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। बीस आभूषण-२० प्रकार के रत्न।

१२१. चूक-गल्ती, भूल। चाकरी-नौकरी। टहल-सेवा। वेरा-बेडी, जंजीर। उरझेरा-उलझाडा। नेरा-नजदीक।

१२२. कर्मजनित-कर्मों के उदय से। पसारो-निवास। अविकारी-विकार रहित।

१२३. जडी-वनौषध। गानउ-ज्ञान।

१२४. अंग-भेद। क्षुधित-भूखा। पाज-पार उतारने वाला जहाज।

१२५. पंचपाप–हिंसा, चोरी, झूंठ, अब्रह्म, परिग्रह । विकथा–४ प्रकार की विकथायें हैं:–स्त्रीकथा, राजकथा, देशकथा भोजनकथा । तीन जोग–मनोयोग, वचनयोग, और काय योग । कलिकाल–कलियुग ।

१२६. सुकुमाल–सुकोमल ।

१२७. नसाही–नष्ट हो जावे । अमरापुर–मोक्ष ।

१२८. मो सौं–मुझ से । मदीत–सहायता । रावरी–आपकी ।

१२९. निजघर–अपने आप में । परपरणति–पर रूप परिणमन होना । मृग जल–मृगतृष्णा ।

१३०. जोग–योग,३ प्रकार के हैं-मनो योग, वचन योग,काय योग । क्षपक श्रेणी–कर्मों को नाश करने वाली सीढ़ी । घातिया–आत्मा का बुरा करने वाले कर्म–ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय और अन्तराय–ये ४ 'घातिया कर्म' कहलाते हैं । सिद्ध–जिन्होंने आठों कर्मों को नष्ट कर मोक्ष प्राप्त कर लिया है ।

१३१. वाम–स्त्री ।

१३२. भेद ज्ञान–'स्वपर' का भेद जानने वाला ज्ञान । आगम–तीर्थंकरों की वाणी का संग्रह । नवतत्व–वस्तु तत्व सात प्रकार के हैं–जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा-मोक्ष–इनके पुण्य और पाप ये दो मिलाने से ९ पदार्थ होते हैं । यहां

नव तत्व से अर्थ नव-पदार्थ है। अनुसरना-अनुसार चलना, धारण करना।

१३३. आरसी–कांच, दर्पण। लवलाय–लौ लगाकर। छहों द्रव्य-जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल, ये छह द्रव्य कहलाते हैं।

१३४. रति–प्रेम। विसरानी–भुला दी। पटतर–समानता। सूरानी-सूर्य की।

१३५. गेय–ज्ञेय, पदार्थ। ग्यायक, ज्ञायक–जानने वाला। अरिहंत–जिनके ४ घातिया कर्म नष्ट हो गये हैं तथा जो १८ दोष रहित एवं ४६ गुण युक्त हैं। सिद्ध-जिनके ४ घातियां तथा ४ अघातियां-आठों ही कर्म नष्ट होगये हैं तथा जिनके आठ गुण प्रकट हो गये हैं। सूरि–आचार्य परमेष्ठी इनके ३६ मूलगुण होते हैं। गुरु–उपाध्याय-इनके २५ मूल गुण होते हैं। मुनिवर–सर्व साधु-इनके २८ मूल गुण होते हैं। विभ्रम–भ्रम, भूल। चेरी–चेली। एकेन्द्री–स्पर्शन इन्द्रिय वाला। पञ्चेन्द्री–स्पर्शन रसना, घ्राण, चक्षु तथा श्रोत्रेन्द्रियधारी। अतिन्द्री–इन्द्रिय रहित।

१३६. सिद्धक्षेत्र–सिद्धालय, मुक्ति। बाना–वेश। अयाना–अज्ञानी।

१३७. तन–शरीर। काल–वर्त्तना, समय। बंध–आत्मा

के साथ कर्मों का बंधना। निखरेंगे–खरे उतरेंगे। दो अक्षर–अंह'।

१३८. हवाल–हाल। बकसो–क्षमा करो।

१३९. परजाय–पर्याय। बिरानी–परायी।

१४०. बटेर–एक प्रकार की चिड़िया।

१४१. विभाव–वैभाविक, संसार भाव। नय–प्रमाण द्वारा निश्चित हुई वस्तु के एक देश को जो ज्ञान ग्रहण करता है उसे 'नय' कहते हैं। परमाण–सम्यक् ज्ञान, सच्चे ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। निक्षेप–पदार्थों के भेद को न्यास या निक्षेप कहा जाता है (प्रमाण और नय के अनुसार प्रचलित हुए लोक व्यवहार को निक्षेप कहते हैं)

१४३. अनहद्–स्वतः उत्पन्न हुआ। न–क्रीड़ा।

१४४. लोक रंजना–लोक दिखाऊ। प्रत्याहार–योग का एक भेद। पंच-परावर्तन-पंच भूतों का परिवर्तन। पतीजै–विश्वास करना।

१४५. रतन–रत्नत्रय। परसन–प्रश्न। आठ-काठ–अष्टकर्म रूपी काष्ठ।

१४६. नवल–नवीन। चतुरानन–ब्रह्मा, चतुर्मुखी भगवान। खलक–संसार।

१४७. सत्ता—सत् आदि का स्थान। समता—समभाव। माट—मटका। नय दोनों—निश्चय और व्यवहार नय। चोवा—चन्दन।

१४८. भौ-भव, जन्म-मरण। दस आठ—१८ बार। उश्वास सास—श्वासोश्वास। साधारन—साधारण वनस्पति। विकलत्रै—तीन इन्द्रियों का धारी। पुतरी—पुतली। नर भौ—मनुष्य जन्म। जाया—उत्पन्न हुआ। दरव-लिंग—द्रव्यलिंग-पर्याय।

१४९. रिझावन—प्रसन्न करने को। दरवेस—साधु। विसेखा—विशेप।

१५०. गरभ छमास अगाऊ—गर्भ में आने से छ मास पूर्व। कनकनग—स्वर्ण परकोटा युक्त। मेरु—सुमेरु पर्वत। कहार—पालकी उठाने वाले। पंचकल्याणक—गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण कल्याणक।

१५१. खिन—क्षण। चक्रधर—चक्रवर्ति। रसाल—सुन्दर। विषै—इन्द्रियों के विषय।

१५२. फरस विषै—स्पर्शन इन्द्रिय के विषय। रस—रसना। गंध—घ्राणेन्द्रिय के विषय। लखि—देखने के वश-चक्षु-इन्द्रिय। सलभ—पतंगा। सुनत—सुनते ही। टेकैं—टेक।

१५३. दीन—कमजोर। संघनन—शरीर की शक्ति के द्योतक-संहनन ६ प्रकार के हैं:—वज्रवृषभनाराच-संहनन, वज्रनाराच संहनन, नाराचसंहनन, अर्द्धनाराच संहनन, कीलक सहनन, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन। आऊषा—आयु। अलप—अल्प। मनीषा—इच्छा। शाली—चावल। समोई—समा करके।

१५४. समाधिमरन—धर्म ध्यान पूर्वक मरण। सक्र—इन्द्र। सुरलोई—स्वर्ग। पूरी आइ—आयु पूर्ण कर। विदेह—विदेह क्षेत्र। भोइ—भोगकर। महाव्रत—हिंसा, झूंठ चोरी, कुशील और परिग्रह का पूर्ण रूपेण सर्वथा त्याग—महाव्रत कहलाता है। इसका पालन मुनि लोग करते हैं। विलसै—भुगते।

१५५. थिति—स्थिति। खिर खिरजाई—खिरना, समाप्त होना।

१५६. मूढ़ता—अज्ञानता। सिहड़ा—पिंजरा। तिहडारी—उस डाली पर।

१५७. मूढ़ौ—मूर्खो में। माता—मस्त हुआ, पागल की तरह। साधौ—सत्पुरुष, साधु। नाल—साथ में।

१५८. नय—वस्तु के एक देश को ग्रहण करनेवाला ज्ञान—यह सात प्रकार का है—नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समाभिरूढ़ और एवंभूत। निहचै—निश्चयनय। विवहार—व्यवहार नय। परजय—पर्यायार्थिक नय, दरबित—द्रव्यार्थिक नय, सुतुला·कांटा। वस्तै—वस्तु।

१५६. सिवमत-शैव। आगम-धार्मिक मूल ग्रंथ।

१६०. वहे-चलता रहे, वाह जोत में काम आवे।

१६१. मनका-मणिये, माला। सराई-सराहना, प्रशंसा।

१६२. इन्द्रीविषय-इन्द्रियों के विषय। खयकार-क्षय करने वाले। काम-कामदेव। उनहार-सदृश। छार-मिट्टी। अनिवार-अवश्य।

१६३. गरज-आवश्यकता। सरीना-पूर्ण नहीं होना।

१६४. गरवाना-घमण्ड करना। गहि अनन्त भवतै-तूने अनेक जन्म धारण कर। उचाना-ऊँचे। बिगल-चबाना। असन-भोजन। पोख्यो-पोषण किया। विहाना-दिन। वांटत-घटाना। गिलाय-ग्लानि। मूये-मरने पर। प्रेत-पिशाच। पांच चोर-पञ्चेन्द्रिय विषय। ठाना-लगा दिया। ब्रह्मज्ञान-आत्म स्वरूप।

१६५. सपत-शीघ्र। असनाई-प्रेम। नींव-नीम। तरजाई-तिरजाना। कुधात-लोहा। बूंद-सीप में पड़ी हुई बूंद। उर्द्ध पदवी-मोती बनकर मुकुट में जाना। करई-कड़वी। तोंवर-तूम्बी। बचखात-'बच' जो पंसारी के मिलती है उसके खाने से। बाई-बकाई। सरधाई-श्रद्धा कर ली गई है।

१६६, थिरता-स्थिरता। राजै-सुशोभित होना। साजै-

धारण करै। उपाजै–उपार्जन करै, बांधना।

१६७. वपु–शरीर।

१६८. नग सो–नगीने के समान। सटकै—चला जाय।

१६९. ख्याति लाभ–प्रशंसा, प्रसिद्धि। आव–आयु। जुवती–युवा स्त्री। मित–मित्र। परिजन–बन्धु। दाव–मौका।

१७०. भवि-अघ-दहन—संसार रूपी पाप की अग्नि। वारिद–बादल। भरम-तम-हर-तरनि—भ्रम रूपी अधंकार को हरने के लिए सूर्य। करम-गत–कर्म समूह। करन–करने वाला। परन–प्रण।

१७१. निकन्दन–नष्ट करने वाले। वानी–वाणी। रोप-विदारण–क्रोध को नष्ट करने वाले। बालयती–बाल ब्रह्मचारी। समकिती–सम्यक्त्व धारण करने वाले। दावानल–अग्नि।

१७२. सेठ सुदर्शन-निर्दोष सुदर्शन सेठ को रानी के बहकावे में आकर राजा ने शूली चढाने का आदेश दिया था, किन्तु देवों ने शूली से 'सिंहासन' कर दिया। वारिषेण–'बारिषेण' नाम के एक जैन मुनि-जिन पर दुष्टों ने तलावार से वार किया था। धन्या–धन्यकुमार। वापी–बावड़ी। सिरीपाल–राजा श्रीपाल को धवल सेठ ने उनकी पत्नी 'रैन मञ्जूषा' से आसक्त होकर जहाज से समुद्र में गिरा दिया था। सोमा 'सोमा सती':–'सोमा' के

चरित्र पर सन्देह कर उसके पति ने एक घड़े में बड़ा काला सांप बंदकर शयन कक्ष में रख दिया और उससे कहा कि इसमें तुम्हारे लिए सुन्दर हार है। जब सोमा ने अहार निकालने के लिए घड़े में हाथ डाला तो उसके सतीत्व के प्रभाव से वह सर्प मोतियों का हार बन गया।

१७३. अन्तर–हृदय। क्रपान–कृपाण, कटार। विषै–इन्द्रियों के विषय। लोक रंजना–लोक दिखावा, लोगों को प्रसन्न रखना। वेद–ग्रन्थ।

१७४. बंध–कर्मों का बन्धन। वित्ति–धन।

१७५. बेरस–बिना रस।

१७६. समकित–सम्यक्त्व। पावस–वर्षा ऋतु। सुरति–प्रेम। गुरुधुनि–गुरु की वाणी। साधकभाव–आत्म साधना के भाव। निरचू–पूर्ण रूपेण।

१७७. पासे–चौपड़ खेलने के पासे। काकै–किसके।

१७८. टेव–आदत।

१८०. चक्री–चक्रवर्ती। बायस–कौआ।

१८१. पाखान–पाषाण, पत्थर। अमलों–कार्यों।

१८३. मालका–चरखे की मालका। बादही–छाती।

१८५. संवर–नये कर्मों को आने से रोकना। गरिमा–बडाई, प्रसंशा।

१८६. कंथ–पति। कुलटा–व्यभिचारिणी।

१८७ मुहत–समय।

१८८ दुहेला–कठिन कार्य। व्यवहारी–व्यवहार में लाने योग्य। निह्चै–निश्चय, वास्तविक।

१८६. वियोगज–वियोग से उत्पन्न। कच्छ-सुकच्छ–कच्छ-सुकच्छ नाम के राजा। उग्रसेन—राजुल के पिता का नाम, कृष्ण के नाना। वारी–पुत्री राजुल। समदविजै नेमिनाथ के पिता समुद्र विजय।

१६०. हेली–सहेली। नियरा–नजदीक। करूर—क्रूर। कलाधर—चन्द्रमा। सियरा—ठण्डा।

१६१. वारि—बबूला, जल बुद्‌बुद। कुदार—कुदाली। कंध—कंधे पर। वसूला—लकड़ी काटने का बसोला।

१६२. संधि—जोड। वरण—रंग।

१६४. अछेव—अपार। अहमेव—अहंपना। भेव—भेद।

१६८. निमष—निमिष मात्र के लिए भी। लरदा—लड़ने को तैयार। अखदा—कहता हूँ। आरजूदा—इच्छा।

२००. विगोवै—भटकाता है, दुःख देता है। लकोवे छै—छुपाता है। जोवे—देखना।

२०१. बरज्यो मना किया। कुलगारि—कुल नष्ट करने वाले। अकारि—अकार्य, कुकर्म।

२०२. निरवानी—मौन। जादोपति—यादव वंश के पति—'नेमिनाथ'।

२०४. दिगम्बर—नग्न। लौंच—सिर के केश उखाड़ना। पछेती—सबके पीछे। हेती—हितधारी। धनिवेती—धन्य है, धनवान बनते हैं।

२०५. तलफत—तड़फते हैं।

२०६ मिस—बहाना। हेमसी—स्वर्ण के समान सुन्दर वर्ण वाली।

२०७. खांवद—पति। जपाई—जपना। विरद—कार्य। निवाही—निभाना।

२०८. दंद—द्वंद, उथल-पुथल। रिंद—समूह। वृंद—राशि, समूह। तारक—तारने वाला।

२१०. ठगोरी—ठगने वाली। गोरी—नारी। चोवो—सुगन्धित द्रव्य। पौरी—द्वार, पौल।

२११. निज परनति-अपने स्वभाव में लीन होना।

किसोरी–किशोर अवस्था वाली। पिचरिका–फुंहारे-पिचकारी तणी–की। गिलोरी–बीड़ा। अमल–अफीम। गोरी–गोली। टौरी—टल्ला, धक्का। बरजोरी—जबरदस्ती।

२१२. मगरुरि—घमण्ड, अभिमान। परियण—परिजन, कुटुम्बीजन। वदी—बुराई। नेकी—भलाई। खरी—सही।

२१३. पाहन—पत्थर। श्रुत—शास्त्र। निरधार—निश्चय।

२१४. सलीता—संयुक्त। पुनिता—पवित्र। करि लीता–कर लिया। श्रवनन—कानों से।

२१५. वारी—बलिहारी। पातिग—पाप। विडारी—भगाये। दोष अठारा—तीर्थंकरों में निम्न १८ दोष नहीं होते हैं—१. जन्म, २. जरा, ३, तृषा, ४. क्षुधा, ५. विस्मय, ६. अरति, ७. खेद, ८. रोग, ९. शोक, १०. मद, ११. मोह, १२. भय, १३. निद्रा, १४. चिन्ता, १५. स्वेद, (पसीना), १६. राग १७ द्वेष, १८. मरण। गुन छियालीस—अरहन्तों के निम्न ४६ गुण होते हैं—३४ अतिशय (जन्म के दस केवल ज्ञान के दस तथा देवरचित १४) आठ प्रतिहार्य और ४ अनन्त चतुष्टय।

२१६. नेम—नियम। द्रगयनि—नेत्र।

२१७. जोइयो—देखा। बिथुरिये—फैलाता है।

२१६. सरसावो—हरी-भरी करो।

२२०. विलय—देरी। भवसंतति—संसार परिभ्रमण।

२२१. न्यद—निन्दनीय। निकंद—नष्ट कर।

२२२. निछरावल—न्यौछावर। आवागमन—जन्म-मरण।

२२३. सुक—तोता। वचनता—बोलने की शक्ति। उपल—पत्थर। षटपद—भ्रमर। छाई—छूने से। नाग दमनि—एक प्रकार की मणी। कटकी—'कुटकी चिरायता'-कडवी दवा। करवाई—कडवापन। नग—नगीना। लाख-लाक्षा, चपड़ी। बपरी-बेचारी। म्हाधमी-अत्यन्त नीच। मधि परनामी-सम भाव रखने वाले।

२२५. चार-खारे। वाहि तैं-भुजाओं से। नावैं-नौकाए। नांव-नामकी।

२२६. ध्यावांणी-ध्याऊंगा। दिसदा-लगता है। मेड़ा-मेरा। दीठा-दिखायी दिया।

२२७. नरजामा-मनुष्य देह। भामा-स्त्री। ठामा-महल आदि। विसरामा-विश्राम।

२२८. फरस-स्पर्श। साना-सना हुआ।

२२९. तिल-तुष—तिल तथा तुष का भेद रूप ज्ञान।

२३०. निरना–निर्णय निश्चित।

२३१. सुभटन का–योद्धाओं का।

२३५. सीत-जुरी–शीतज्वर। परतख-प्रत्यक्ष।

२३६. झंपापात–ऊपर से नीचे की ओर एक दम झपटना।

२३७. निजपुर–अपने आप में, आत्मा में। चिदानन्दजी–आत्माराम। सुमती–सुबुद्धि। पिकी छोरी–पिचकारी छोड़ी। अजपा–सोऽहं। अनहद–अनाहत शब्द।

२३८. पोरी–पोल, द्वार। फगुवा–फाग के उपलक्ष में दिया जाने वाले उपहार। पाथर–पत्थर।

२३६. चौरासी–चोरासी लाख योनियों में। आरज—'आर्यखण्ड' जहां भारतवर्ष है। विभाव–वैभाविक, राग-द्वेष रूप भाव।

२४१. 'भरत-बाहुबलि'—प्रथम तीर्थंकर भ० आदिनाथ के पुत्र-भरत बड़े तथा बाहुबलि छोटे थे। भरत छः खण्ड के राजा चक्रवर्ति होगये किन्तु बाहुबलि उनके अधीन नहीं हुये। दोनों में परस्पर नेत्र-युद्ध, जल-युद्ध, तथा मल्ल-युद्ध हुये, तीनों में ही बाहुबलि लम्बे (दीर्घ-काय) होने के कारण विजयी हुए। पर विजय से विरक्त हो दीक्षा धारण की तथा कई वर्षों तक तपस्या की। उनके शरीर में पक्षियों ने घोंसले तक बना लिये,

और बेलें छा गई। आज भी दक्षिण भारत में संसार प्रसिद्ध 'बाहुबलि' की विशाल मूर्ति विराजमान है।

२४२. मोह-गहल–मोह का नशा। हूँ–मैं। चिन्मूरति—चिदानन्द।

२४३. सुकृत-अच्छा कार्य, धर्म। अध–पाप। अटूट—अनन्त।

२४४. सितावी–शीघ्र।

२४५. जीरन-चीर–जीर्ण वस्त्र या देह। बोरत–डुबाना। ढीठ-निकम्मा।

२४७. उसा–जैसा।

२४८. विधि निषेधकर-अस्ति-नास्ति अथवा स्याद्वाद स्वरूप। द्वादस अंग–द्वादशाङ्ग-वाणी, धर्म। क्षयिक-समकित—'क्षयिक सम्यक्त्व' [मिथ्यात्व, सम्यग् मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ इन सात प्रकृतियों के अत्यन्त क्षय से होने वाला सम्यक्त्व क्षयिक सम्यक्त्व कहलाता है।] भवतिथि–भवस्थिति। गाही–नष्ट की।

२४६. कर ऊपर कर–हाथ पर हाथ रखकर। भूति-भस्म, राख। आशावासा-इच्छाओं को रोक कर। नासादृष्टि-नाक के अग्रभाग पर दृष्टि। सुरगिर–सुमेरु पर्वत। हुताशन–अग्नि। वसु विधि समिध–अष्ट प्रकार की कर्म रूपी ईंधन।

स्यामलि-काले। अलिकावलि-बालों का समूह। तृनमनि— घास और मणि।

२५०. दावानल-अग्नि। गनपति-गणधर, भगवान की वाणी को झेलने वाले। गहीर-गहरा। अमित-बेहद, अपार। समीर-हवा। कोटि-बार बार, करोड़ों बार। हरहु-दूर करो। कतर-काट दो।

२५१. वर-श्रेष्ठ।

२५२. उद्यम-परिश्रम। घाटी-घाटा। माटी-मृतक शरीर। कपाटी-किंवाड़।

२५३. भुजङ्ग-सर्प। स्वपद-अपने पद को। विसार-भूल कर। परपद-पर पदार्थ में। मदरत-नशा किये हुए के समान। बौराया-पागल की तरह बकना। समामृत-समता रूपी अमृत। जिनवृष-जैन धर्म। विलखे-विलाप करते हैं। मणि-चिन्ता-मणि रत्न।

२५४. निजघर-अपने आपकी पहिचान। पर परणति-पर पदार्थों के स्वभाव में। चेतन भाव-आत्म स्वभाव। परजय बुद्धि-पर्याय बुद्धि। अजहू-अब तो।

२५५. अशुभ-बुरे कर्म। सहज-स्वाभाविक। शिव—कल्याण, मुक्ति।

२५६. निपट–बिल्कुल। अयाना–अज्ञानी। आपा–अपने आपको। पीय–पीकर। लिप्यो–लिप्त होना, सनजाना। कजदल–कमल पत्र। बिराना–पराया। अजगन–बकरियों के समूह में। हरि–सिंह।

२५७. शुक–तोता। नलिनी–कमल जाल में फंसा रहा। अविरुद्ध–विरोध रहित। दरश बोधमय–दर्शन ज्ञान से युक्त। पाग–लगा रहना। राग रुख–राग-द्वेष। दायक–देने वाला। चाहदाह–इच्छा रूपी अग्नि। गाहै–ग्रहण करे।

२५८ संसय–शंका। विभ्रम–व्यामोह, भ्रम। विवर्जित–रहित। अदत–बिना दिया हुआ। आकिंचन–परिग्रह रहित। प्रसंग–सम्बन्ध। पच समिति–यत्नाचार पूर्वक प्रवृति को 'समिति' कहते है। उसके पांच भेद हैं–'ईर्यासमिति' भाषा, समिति, एषणा समिति, आदान निक्षेपण समिति और उत्सर्ग समिति। गुप्ति–भले प्रकार मनवचन काय के योग को रोकना, निग्रह करना 'गुप्ति' कहलाती है। यह ३ प्रकार की है: मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और काय गुप्ति। व्यवहार चरन–व्यवहार चरित्र। कुकुम–सुगन्धित द्रव्य, रोली। दास–सेवक। व्याल–सर्प। माल–माला। समभावै–एक रूप। आरत-रौद्र–आर्त्त ध्यान, रौद्र ध्यान। अविचल–निश्चल।

२५६. मोसम–मेरे समान।

२६०. तारत–पार लगाना। तकसीर–गल्ती, भूल।

अघ-पाप। विसन-व्यसन। शूकर-सुअर। सुर-स्वर्ग। मो-मेरी। खुवारी-बुरबादी। बिसारी-भूली।

२६१ तीन पीठ-तीन कटनियों पर। अधर-बिना सहारे। ठही-ठहरा हुआ। मार-कामदेव। मार-नष्टकर। चार तीस-चौतीस। नवदुग-अठारह। सतत-निरन्तर। प्रफुलावन-विकसित करने को। भान-सूर्य।

२६२. भाये-अच्छे लगे। भ्रम भौंर-भ्रम रूपी भँवर। बहिरातमता-आत्मा का बाह्य स्वरूप। अन्तर दृष्टि-आत्मा को पहचानने की दृष्टि। रामा-स्त्री। हुताश-अग्नि।

२६३ सोज-सोच। भेदै नष्टकर। तताई-उष्णता। रव-शब्द। करन विषय-इन्द्रियों के विषय। दारु-लकड़ी। जघान-नष्ट कर। विरागताई-वैराग्यपना।

२६४. काकताली-काकतालीय न्यायः--कौए का वृक्ष के नीचे से उडते हुए मुंह का फाडना तथा संयोग से एकाएक उसके मुंह में आम्रफल का आजाना। नरभव-मनुष्य जन्म। सुकुल-उत्तम वंश। श्रवण-सुनना। ज्ञेय-पदार्थ। सोंज-सामग्री। हानी-नष्ट की। अनिष्ट-हानिकारक। इष्टता-प्रेम बुद्धि। अवगाहै-ग्रहण करता है। लाय लय-लौ लगाओ। समरस-समता रूपी रस। सानी-सना हुआ।

२६५. घिनगेह–घृणा का स्थान। अस्थिमाल–हड्डियों का समूह। कुरंग–हरिण। थली–स्थल। पुरीष–टट्टी, मल। चर्म मंडी–चमड़े में मढ़ी हुई। रिपु कर्म–कर्म शत्रुओं को। घड़ी–गढ़ी-छोटा गढ़। मेद–चर्बी। क्लेद–मवाद। मदद गद-व्याल पिटारी–मत्त रोग रूपी सांप की टोकरी। पोषी–पोषण किया। शोषी–सोख लेना। सुर धनु–इन्द्र धनुष। शम–शांति।

२६६. गैलवा–मार्ग। मोहमद–मिथ्याभिमान। वार–जल। भियौ–डरा। मैलवा–मैल, विकार। धरन–पृथ्वी। फिरत–फिरता रहना। शैलवा–समूह। सुथल–अच्छा देश, स्थान। छिटकायो–छोड़ा।

२६७. विरचि–विरक्त होकर। कुबजा–कुबडी, फूट पैदा कराने वाली कुमति। राधा–श्रीकृष्ण की पत्नी सदृश। बाधा–विघ्न। रलौ–खुशी। कारी–काली। चिद्‌गुण–चैतन्य, आत्मा। स्व समाधि–अपने आप। कुथल–खराब स्थान।

२६८. शिवपुर–मोक्ष।

२६९. मृग-तृष्णा–मृग मरीचिका। जेवरी–रस्सी। महिप–राजा। तोय–पानी। खपत–विनाश। परभावन–आत्मा के विपरीत भाव। करता–करने वाला। काल लब्धि–योग्यता', उपयुक्त समय। तोष-रोष–सन्तोष से नाराज ही रहा।

२७० मुनो–मनन। प्रशस्त–निर्मल। थिरा–स्थिर। भवाब्धि–ससार समुद्र। सादि–इतर निगोद अर्थात् जिसमें जीव नित्य निगोद से निकल कर अन्य पर्याय धारण करके फिर निगोद में जाते हैं। अनादि–नित्य निगोद–जिसने आज तक नित्य निगोद के अलावा कोई दूसरी पर्याय नहीं पाई। अङ्क–गिनती का अङ्क। ऊवरा–अक्षर शेष रहा। भव–पर्याय। अन्तर मुहूर्त–एक समय कम ४८ मिनट। गनेश्वरा–गणधर। छयासठ सहस त्रिशत छतीशा–छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस। तहांतैं–निगोद से। नीसरा–निकला। भू–पृथ्वीकायिक। जल–जयकायिक। अनिल–वायुकायिक। अनल–तेजकायिक, अग्निकायिक। तरु–वनस्पतिकायिक। अनुंधरीसु कुंथु कानमच्छ अवतरा–एकेन्द्रिय जीव से पंचेन्द्रिय मच्छ तक जन्म धारण किया। खचर–आकाश में विचरण करने वाले जीव। खरा–श्रेष्ठ। लाघ–लांघना, पार करना। अनुत्तरा–उत्कृष्ट आयु वाला देवपद।

२७१. बोधे–सम्बोधित किये। लोकसिरो–मुक्ति। द्रव्य लिंग मुनि–बाह्य रूप से मुनि। उग्रतपन–घोर तपश्चरण। नव ग्रीवक–१६ वें स्वर्ग से ऊपर का स्थान। भवार्णव–संसार समुद्र।

२७२. देहाश्रित–शरीर के सहारे होने वाली। शिव-मगचारी–मोक्ष मार्ग पर चलने वाला। निज निवेद–अपने

आपका ज्ञान। विफल–फल रहित। द्विविध–अंतरंग और बाह्य। विदारी–नष्ट की।

२७३. बंध–आत्मा के बन्धन। समरना–याद करना। सन्धिभेद–अलग २ करना। छैनी–लोहे अथवा पत्थर को काटने वाली छीनी। परिहरना–छोडना। शंकै–शंका करे। परचाह–आत्मा से जो पर है उनकी इच्छा। भव मरना–जन्म तथा मरण।

२७४. ठही–करी। जडनि–पुद्गल, अचेतन। पाग–लगना। गहत–ग्रहण करना। जिनवृष–जैन धर्म। लही–प्राप्त किया।

२७५. अयानी—अज्ञानी, अटपटी। आनाकानी—टालमटोल करना। बोध—ज्ञान। शर्म—धर्म, कल्याण। बिलोवत—मंथन करना, बिलोना। सदन—घर। बिरानी–पराया। परिनमन—परिवर्तन। दृढ़-ज्ञान चरन—दर्शन ज्ञान और चरित्र। लखावन—बतलाने वाली।

२७६. पुद्गल—शरीर, जीव रहित पदार्थ। निश्चै—निर्विकल्प। सिद्ध सरुप—मुक्ति। कीच—कीचड।

२७७. मोहमद—मोह रूपी मदिरा। अनादि—अनादि काल से। कुबोध—कुज्ञान। अव्रत—व्रत रहित। असारता–निःसार। कृमि विट थानी—विष्टा के स्थान में की होना—एक राजा मरकर विष्टा के स्थान में कीडा बना था : उसकी कथा

प्रसिद्ध है। हरि —नारायण। गदगेह—रोग का घर। नेह—प्रेम। मलीन—मलयुक्त। छीन—क्षीण। करमकृत—कर्मों द्वारा किया हुआ। सुखहानी—सुखों को नष्ट करने वाली। चाह—इच्छाएं। कुलखानी—वंश को खाने वाली, नष्ट करने वाली। ज्ञानसुधासर—ज्ञान रूपी अमृत का सरोवर। शोषन—सुखाने के लिए। अमित—अपार। मृतु—मृत्यु। भवतन भोग—सांसारिक शारीरिक भोग। रुष राग—द्वेष और प्रेम।

२७६. यारी—दोस्ती। भुजंग-सर्प। डसत—डसना, काटना। नसत—नष्ट होना। अनन्ती—अनन्त बार। मृतु-कारी मारने वाला। तिसना—इच्छा। तृषा—प्यास। सेये—सेवन करने से। कुठारी—कुल्हाडी। केहरि-सिंह। करि-हाथी। अरी—अड़ी, वैरी। रचे-मग्न हुये। आक—आकड़ा। आम्रतनी—आम की। किंपाक—एक ऐसा फल जो देखने में सुन्दर किन्तु खाने में दुःखदायी। खगपति—देवताओं का राजा।

२८०. भोरी—भोली। थिर—स्थिर। पोषत—पोषण करना। ममता-प्रेम। अपनावत—अपनाना। बरजोरी—जबरदस्ती से। मना-मन में। बिलसो—विलास करो। शिवगौरी—मोक्ष रूपी स्त्री। ज्ञान पियूष—ज्ञान रूपी अमृत।

२८१. चिदेश—चिदानन्द स्वरूप भगवान। वमू—मुंह-मोड़ूं। दुचार—चार के दुगुणे अर्थात् अष्ट कर्म। वमू—

सेना। दमूं-नष्ट करूं। राग आग-राग रूपी अग्नि। शर्म बाग-धर्म रूपी बगीचा। दागिनी-जलाने वाली। शमू-शान्त करूं। दृश-सम्यक् दर्शन। ज्ञान-सम्यक् ज्ञान। सत्व-प्राणिमात्र। छमूं-क्षमा याचना करूं। मल्ल-मल। लिप्त-सना हुआ। त्रिशल्य-तीन प्रकार की शल्य माया मिथ्यात्व और निदान। मल्ल-शक्तिशाली, पहलवान। पमूं-प्राप्त करूं। अज-पैदा न होने वाला। भव विपिन-ससार रूपी वन में। पूर-पूर्ण करो। कौल-वायदा, वचन।

२८२. मिरदंग-तबला या ढोलक। तमूरा-बजाने का यंत्र। सम्हारी-सम्भाली। बोरी-डूब गई। चतुर दान-चार प्रकार का दान-औषध दान, ज्ञान दान, अभय दान, और आहार दान। जिन धाम-जिन मन्दिर।

२८३. अरि-वैरी। सरवसुहारी-सर्वस्व हरण करने वाला। बार-बाल-केश। हार-हीरे की तरह श्वेत। जुग जानु-दोनों घुटने। श्रवन-कान। प्रकृति-स्वभाव। भखत-खाने पर। असन-भोजन। बालाबाल-छोटे बड़े। न कान करें-बात नहीं मानते। बीज-मूल कारण। जम-यमराज।

२८४. अन्तर-आन्तरिक। बाहिज-बाह्य, बाहर का। त्याग-छोड़ना, दान करना। सुहित साधक-हित का साधन करने वाला। मुंज-लंगड़ा। साधन-कारण। साध्य-कार्य अलभ-अप्राप्य। थोथे गाल बजाये-कोरी बात बनाने से।

२८५. समरहि–सुख दुःख में बराबर रहकर। तिल तुष मात्र-किञ्चित भी। बिपरजै–बिपरीत। जाति–पदार्थ। सुभाव–स्वभाव।

२८६. बदन–मुंह। समीर–हवा। प्रतिबोध–सजग।

२८७. बिस्तरती–फैलती। कंज–कमल। भरमध्वांत—भ्रम को नष्ट करना। वृष–धर्म। चित्स्वभावना–चैतन्य स्वभावपना। वर्तमान······ फरती—वर्तमान में नये कर्मों का बंध नहीं होना तथा पूर्वकृत कर्मों का फल देकर निर्जरा होजाना, (झड़ जाना)। सुख–इन्द्रिय सुख। सरवांग उघरती–सर्व गुणों को दिखाती।

२८८. अपात्र–अयोग्य। पात्र–योग्य। बंदगी–सलाम। ऊर–अंत। नमै–नमस्कार करें। सराहै–सराहना करें। अवगाहै–प्राप्त होता है। दुसह–कठिनता से सहने योग्य। सम—बराबर। आयस–आज्ञा। महानग–कीमती नगीना, अमूल्य रत्न। पद्धति–विधि। गेय–जानने योग्य।

२८९. विगोया—भुलाया। मधुपाई—शराबी। इष्ट-समागम–प्रिय वस्तु की प्राप्ति। पाटकीट–रेशम का कीड़ा। आप आप –अपने आप। मेल—मैल। टोया—टटोला। समरस—समता रूपी रस।

२९०. तैं—तू। गेय—पदार्थ। परनाम—स्वभाव।

परनमत—पर्याय रूप में पलटना। अन्यथा—अन्य प्रकार से। अपमें—पानी में। जलज दलनि—कमल दल। ग्यायक—ज्ञानी। बरतें—प्रवर्त्तें। निवाजै—निवारण करें।

२६१. उनमारग—खोटा मार्ग। प्रभुता छकौ—प्रभुता के मद में मस्त रहना। जुग करि—काफी समय। मीडै—इकट्ठा करना, मसलना।

२६२. वादि—वाद विवाद, बकवाद। अनर्थ—अर्थहीन। अपरके—अपना तथा पराया। उवारा—प्रकट। समाकुल—व्याकुल। समल—मल सहित। अंब—आम।

२६३. छेम—कुशल। अवगाह—ग्रहण करना। सुरभ—गंध। इनमई—इन ही रूप। सुध्रुव—निश्चित रूप से स्थित। धतूरा—एक ऐसा पेड़ जिसके खाने से नशा आवे। कलधौत—सोना, चांदी। दाह्यो—जला हुआ। सिराये—ठंडा होना। बोध सुधाने—ज्ञानामृत को।

२६४. छिन छई—क्षण भर में नष्ट होने वाले। पसारौं—फैलाव। विस्मै—आश्चर्य। सुहृद—मित्र। रीझ—प्रसन्नता। सदवृत्य—सदाचार। कंज—कमल। छिमा—क्षमा।

२६५. जिनमत—जैन सिद्धान्त। परमत—जैनेतर सिद्धान्त। रहस—रहस्य। करता—सृष्टि कर्त्ता। प्रमाण—सम्यक् ज्ञान।

गुरु मुख उदै–गुरु के मुख से उत्पन्न हुई अर्थात् वाणी।

२९६. प्रवरतौ–रहो। असम–असदृश। मिथ्याध्वांत–मिथ्या अन्धकार। सुपर–स्वपर। भविक–भव्य जन।

२९७. आसरे–सहारे।

२९८. आवरण–पर्दा, ढकने वाली वस्तु। गत–चले गये। अतिशय–विशेषता। मोया–मोहित होकर। भूरि–बहुत।

२९९. त्रिपति–तृप्ति। नेमत–व्रत नियम। गोचर भइयो–सुनली।

३००. साख–टहनियां। भेषज–औषधि। वाहिज–वाह्य। सुदिढ़–सुदृढ़। सुरथानै–स्वर्ग। स्वथा करौ–हृदयंगम करो। वृष–धर्म।

३०१. छुल्लक–चुल्लक–११ वीं प्रतिमा धारी श्रावक जो एक चादर तथा लंगोटी रखता है। अैश्यल–ऐलक–११ वीं प्रतिमाधारी श्रावक जो लंगोटी मात्र परिग्रह रखते हैं। अलेख–बिना देखे। इस्थानक–स्थान। श्रुत विचार–शास्त्र-ज्ञान। उदर–पेट। तुष–तुच्छ, तुष मात्र। निरापेक्ष–अपेक्षा रहित। पिण्ड–समूह।

३०२. भवतव्य–होनेवाली, होनहार। लखी–देखी।

वज्र-रेख—वज्र की रेखा के समान। अनिवार—न मिटने योग्य। मनि—मणि। साध्य—होने योग्य।

३०४. कारन—हेतु। अवस्थित—सहारे स्थित। उपाधिक—उपाधि जनित। संतति—सन्तान। उदित—उदय। छना—क्षण।

३०५. कलिकाल—कलियुग। डांडे जात—डण्डे लगाये जाते हैं। मरालनु—हंस। कोंदू-कन—एक प्रकार का धान। डूम—गाने बजाने वाले। हेम धाम—स्वर्ण महल। जो—ज्यौं। दिनांत—संध्या समय। घाम—गर्मी। दंभधारी—पाखण्डी। पेरा—प्रेरा। जाम—घड़ी।

३०६. सिल-पत्थर। उतरावै-तिरावे। कनक-धतूरा। कुपथ-अपथ्य। गाउर पूत-गाय का बच्चा। म्रगारि-सिंह। वासक-शेषनाग। औली-नाला। मगरें-मगरी, पहाड़ी की चोटी। थावै-चढ़े। हुकभुक-गर्मी पहुँचाने वाली।

३०७. मिश्र-मिला हुआ। कन-धान। त्रिन-त्रण, घास। बारन-हाथी। विभाव-भाव। दुहुका-दोनों का।

३०८. उजरी-उजली, श्वेत। घायक-नाश करने वाला। खरी-सही। रज-धूल। तरी-नौका।

३०६. सरोज-कमल। भागि जोगा-भाग्य के संयोग से।

३१०. तस्कर–चोर। बटमार–लुटेरे। कु संतति–खराब सन्तान। छय–क्षय।

३११. जान की–जाने की। ठाड़ी–खड़ी। विलम–देरी। प्रयास–प्रयत्न। नसा–नष्ट कर।

३१२. आस–आशा। रास–राशि या समूह। विद्यमान–वर्तमान। भावी–भविष्यत्, आगामी। अविचारी–विचार हीन सहचारी–साथ विचरण करने वाले।

३१३. नावरिया–नौका। पलटनि–समूह, फौज। दुइ-करियां–नाव की दो कड़ियां-शुभ-अशुभ कर्म। छिप्र–शीघ्र ही।

३१४ अबोध–अज्ञानी। व्याधि–रोगी। पियूष–अमृत। भेषज–औषधि। ठठेरा का नभचर–जिस प्रकार ठठेरा के यहां नभचर (तोता, मैना) आदि शब्द सुनने का आदी होकर निडर होजाता है।

३१५. पतीजै–विश्वास करे। जुदी–अलग। खलि—खल, तेल निकालने के बाद तिलों का भूसा। परनमन–परिणमन, उस रूप होजाना। निरुपाधि–उपाधि रहित।

३१६. परमौदारिक काय–मनुष्य तथा तिर्यञ्चों के शरीर को 'औदारिक शरीर' कहते हैं। सुमन अलि–मन रूपी भौंरा।

पद सरोज-चरण कमल। लुब्ध-लालायित, मोहित। विथा-व्यथा।

३१७. लोय-लोक। श्रुत-शास्त्र। आहत है-कहते हैं।

३१८. अमीर—धनवान। गेलत—गहले की तरह फिरने वाला। ज्ञान द्रग बीरज सुख—अनन्त ज्ञान, दर्शन वीर्य एवं सुख। निरत—लीन होना।

३१९. अनोकुह—वृक्ष। वोछत—काटना-छांटना। विरिया—बार। पूरव कृतविधि—पूर्व में किये हुए कर्मों का। निवड़—अत्यन्त। गुन-मनि-माल—गुण रूपी मणियों की माला।

३२०. विधि-कर्म। पाटकीट-रेशम का कीड़ा। चिकटास-चिकनाई। सलिल-जल। कनिक रस-धतूरा। भोया-खाया। अनुष्ठान-धार्मिक विधान।

३२१. दुकृत-खराब कार्य। अवर-अन्य। प्रयोग-उपाय। तस्कर ग्रही-चोर द्वारा चुराई हुई। हांसिल-लगान। मारु-मारने वाला। हीनाधिक देत लेत-देने के कम लेने के अधिक बाट-तराजू आदि रखना। प्रतिरूपक विवहारक-अधिक मूल्य की वस्तु में वैसी ही कम मूल्य की वस्तु मिलाकर चलाना। वृत-नियम, धर्म। कृत-करना। कारित-करवाना।

अनुमत–करने वाले की प्रशंसा करना–अनुमोदना। समयांतर–भविष्य। मुखी–सन्मुख। वृत–व्रताचरण, धर्म।

३२२. जिनश्रुतरसज्ञ—जैन शास्त्रों के मर्म को जानने वाले। निरिच्छ—इच्छा रहित। विथारा—विस्तार।

३२३. मृतिका—चिकनी मिट्टी। बारु—बालू रेत। बारा–देर। टुक—थोडे से। गरवाना—गर्व करना।

३२४. अयन—छह मास। अकारथ—व्यर्थ। विधि—कर्म।

३२५. शिवमाला—मोक्ष रूपी माला।

३२७. चारुदत्त—एक सेठ का पुत्र। गुप्त ग्रह–तहखाना। भीम हस्ततें—भीम के हाथों से। धवल सेठ–एक सेठ जो राजा श्रीपाल का धर्म का बाप बना था तथा श्रीपाल की रानी मदन मञ्जूषा पर मोहित होकर श्रीपाल को समुद्र में गिरा दिया। श्रीपाल—एक राजा जो कोढ़ी हो जाने के कारण अपने चाचा द्वारा राज्य से बाहर निकाल दिये गये थे तथा जो कोटिभट के नाम से भी प्रसिद्ध थे। श्रीपाल चरम शरीरी थे। डील–शरीर। ग्रामकूट—गांव का मुखिया–सत्यघोष नामक एक पुरोहित था। जो असत्य बोलने में अपनी जीभ काटने का दावा करता था। एक बार एक सेठ के पांच रत्न धरोहर

रख जाने के बाद वापस मांगने पर इन्कार कर दिया। बात राजा तक पहुँची। जांच करने के बाद राजा ने 'सत्यघोष' को असत्य बोलने के अपराध में तीन दण्ड दिये। जिसमें एक दण्ड गोबर की थाली भरकर उसे खिलाने का भी था।

३२८. सहस—हजार। लैन—पंक्ति। सैन—शयन। भवियैन—भविजन।

३३०. राचन—अनुरक्त होना। जोयो—देखा। मोयो—मोहित हुआ। विगोयो—व्यर्थ खोया। शिव फल—मोक्षफल। जरतैं—जलता हुआ। टोयो—देखा। ठोड—स्थान।

३३१. उरझोयो—उलझा। मोहराय—मोह राजा। किंकर—नौकर।

३३२. महासेन—भगवान चन्द्रप्रभ के पिता। चन्द्र प्रभ—आठवें तीर्थंकर। बदन—मुंह। रदन—दांत। सत—सात। पणवीस—पच्चीस। शत आठ—एक सौ आठ। अपसरा—नाचने वाली देवियां। कोडि—करोड़, कोटि।

३३३. मर्म—भ्रम। रहन—रहने वाला।

३३४. नातर—नहीं तो। खुवारी—बरबादी, बुरी दशा। पंचम काल—पांचवां काल, काल के मुख्यत दो भेद हैं:—उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी। प्रत्येक में छः काल होते हैं:—(१) सुखमा सुखमा, (२) सुखमा, (३) सुखमा, दुखमा (४) दुखमा सुखमा, (५) दुखमा (६) दुखमा दुखमा। उत्सर्पिणी काल में यह क्रम उल्टा चलता है।

३३५. दौ दाभ्यो-से जला। मंदोदरी-रावण की स्त्री। भरतेरो-भर्त्तार, पति। हेरो-देखो।

३३६. माघनन्द-माघनन्दि नाम के आचार्य। पारणै हेत-उपवास के बाद भोजन करने के लिए। धी-लड़की। उदयागत-उदय में आये हुये। विशिष्ट-विशेषता युक्त। भावनि-होनहार। जरद कुंवर-जिनके हाथों श्रीकृष्ण की मृत्यु हुई थी। बलभद्र-बलदेव।

३३७ कर्म रिपु-कर्म शत्रु। अष्टादश-अठारह। आकर-खान, खजाने। ठाकुर-भगवान्।

३३८. विषयारा-ग्रहण करने योग्य। रुज-रोग। स्कंध-दो या दो से अधिक परमाणुओं का समूह। अणु-पुद्गल का सबसे छोटा टुकड़ा जिसका फिर कोई टुकड़ा न हो सके। पतियारा-विश्वास।

३३९. जिनागम-जैन वाङ्मय। शमदम-शमन तथा दमन की। निरजरा-कर्मों का खिरना, झड़ना। परम्परा-सिलसिले से।

३४०. आठों जाम-आठों पहर।

३४१. अविच्छन्न-लगातार। अगाध-अथाह। सप्तभंग-स्यादस्ति नास्ति आदि ७ अपेक्षाएँ। मरालवृंद-हंसों का समूह। अवगाहन-ग्रहण करना, डुबकी लगाकर स्नान करना। प्रमानी-प्रमाण मानना।

३४२. अच्छ–अक्ष, इन्द्रियां। गोष्ठी—सभा। बिघटे–नाश होना। पक्षयुत–पंखों से युक्त।

३४३. पारि–पाल। दुद्धर–भयानक। ठेला–धक्का। इन्द्रजाल–जादूगरी।

३४४. अवाधित–जिसे किसी द्वारा बाधा न पहुंचाई जा सके। दहन–अग्नि। दहत–जलाती है। तदगत–उसमें रहने वाली। वरणादिक–रूप रसादि। एक क्षेत्र अवगाही–एक ही क्षेत्र में रहने वाले। खिल्लवत–खाने के समान। निरद्वन्द–जिसका कोई विरोध करने वाला न हो। निरामय–निर्दोष। सिद्ध समानी–सिद्धों के समान। अवंक–सीधा।

३४५. वारुणी–मद्य। करंड–समूह। धवल ध्यान–शुक्ल ध्यान, उत्कृष्ट ध्यान। पूर–प्रवाह। ढोये–इधर से उधर पटकना। नियत–निश्चित। समोये—समेटे। तोये–तेरे।

३४६. बटेर–तीतर अथवा लवा पक्षी जैसी छोटी चिड़िया।

३४७. आनि–अन्य। जतन–यत्न। कछुव–कुछ भी। सुजानु–चतुर। मटक्यौ–हिलना। मार्जारी–बिल्ली। मीच–मृत्यु। ग्रस–पकड़ना। कीरसु–तोते की तरह। मार्जारीमीच ...... पटक्यौ–मृत्यु रूपी बिल्ली तेरे शरीर को तोते तरह धर पटक रही है। अतः तू संभल। ठट्ठ–ठाठ। विघट्यौ–बिगाड़ जायगा।

३४८. किरन–किरणों। उद्योत–प्रकाश। जोवत—देखते हैं।

३४९. पेखो–देखो। सहस किरण–सहस्त्र किरणों वाला सूर्य। आभा–कान्ति। भूति विभूति–वैभव। दिवाकर–सूर्य। अरविन्द–कमल।

३५०. श्याम–नेमिनाथ। मधुरी–मीठी। विभूषण—आभूषण। माननी–स्त्री। तंत मंत्र–जादू टोना। गज गमनी–हथिनी के समान चाल चलने वाली। कामिनी–स्त्री, राजुल।

३५१. वामा–भ० पार्श्वनाथ की माता। नव–नौ। कर–हाथ। शिरनामी–नमस्कार करके। पंचाचार–आचार ५ प्रकार का होता है:–दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार। आपो–पार उतारो।

३५२ घट–घड़ा। पटादि–कपड़ा। गौन–गमन। आनगति–अन्य गति में। नेरौं–नजदीक। सदन–घर।

३५३. लाहो–लाभ। ते–वे। खेह–धूल।

३५४. नयो–नमस्कार किया। पूजित–पूजा करने से। अबलग–अब तक। उधारो–उद्धार करो।

३५५. कनक–स्वर्ण। मोहनी–स्त्री। विस–विषय।

३५६. भटभेड़ा–टक्करें। गोती–एक ही गोत्र वाले भाई-बन्धु। नांती–भानजे दोहिते आदि। सुख केरा–सुख प्राप्त

करना। तपति-गर्मी। सेया-सेवा की, अराधना की। हेरा-देखा। फेरा-चक्कर।

३५७. बिसरायौ-भुला दिया।

३५८ मितां-मित्र। सुपनेदा-स्वप्न का। हटवाडेदा-आठवें दिन बाजार लगने का। गहेला-पागल हो रहा है। गैला-मार्ग। वेला-समय। महेला-महल।

३५६. हरी-इन्द्र। अर्गजा-सुगन्धित द्रव्य, चन्दन। पाटंवर-वस्त्र। जाचक-मांगनें वाला।

३६०. भोर-प्रातःकाल। मनुवा-मन। रैन-रात्रि। विहानी-प्रातः। अमृत बेला-प्रातःकाल।

३६१. अवधू-एक प्रकार का योगी, आत्मन्। मठ मैं-मन्दिर में, शरीर में। घरटी-चक्की। खरची-धन। बांची-बांटना, देना। वट-हिस्सा।

३६२. पांच भूमि-पंचभुत—पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश। बल-बलभद्र। चक्री-चकवर्त्ति। तेहना-उनका। दी से-दिखाई देना। परमुख-प्रमुख २।

३६३. सकुचाय-संकोच करना। न्याय-तरह। कोटि—करोड़ों। विकल्प-विचार। व्याधि-दुःख, रोग। वेदन—अनुभव। लही शुद्ध लपटाय—शुद्धात्मा के लिए लिपट रहे हैं। अघाय-अतृप्त। दिलठाय-दिल में ठहरने को।

३६४. पामीजे–प्राप्त होता है। भव–जन्म-जन्म में। भीजे–भीगना।

३६५ रहमान–रहिम। कान–श्रीकृष्ण। भाजन–वर्तन। मृतिका–मिट्टी। खण्ड–अलग अलग टुकड़े। कल्पनारोपित–कल्पना के आधार पर। कर्षे–कृष करें, नष्ट करें। चिन्हे–पहिचाने।

३६६. रचक–तनिक, अल्प। पांच मिथ्यात–एकांत, संशय, विपरीत, अज्ञान, विनय ये पांच प्रकार का मिथ्यात्व हैं। एह थी–जगी हुई थी। नेह–स्नेह, प्रेम। ताहू थी–उनके वश होकर। सुरानों–मद्यपायी, शराबी। कनक बीज–धतूरे का बीज। अरहट घटिका–अरहट की चक्की, कुए पानी निकालने का गोल यंत्र। नवि–नहीं चोलना–चोला।

३६७. तिय–स्त्री। इक चिति–एक चित होकर। कुच–स्तन। नवल–नवीन। छवीली–सुन्दर। दशमुख–रावण। सरिसे–सरीखे, समान। सटकै–ग्रहण करें।

३६८. जलहुँ–जल का। पतासा–बुद्बुदा। भासा–दिखाई दिया। असण–लालिमा। छकि है–मस्त हो रहा है। गजकरन चलासा–हाथी के कान के समान चंचल। सांसा–चिंता। हुलासा–प्रसन्न।

३६९. कजली वन–यह वन जहां हाथी रहते हैं। कुंजरी–हथिनी। मीन–मछली। समद–समुद्र। मउ–मरना।

मुदि गयो-बंद हो गया। चख्यु-चक्षु। वधिक-शिकारी। मुकीयो-छोड़ा। मुकलाई-वश में हुआ। भो भो-भव भव में। मुकत्या-मोक्ष। भनै-कहे। संच-सत्य।

३७०. पोटली-गांठ।

३७१. अभेवा-अभेद, भेद रहित। जिह-जिस। शिवपट-मोक्ष के किंवाड़। बचनातीत-कहने में न आवे।

३७२. उभी-खड़ी। जादू कुल सिरदार-यादव वंश में सिरमौर।

३७३. बरजी-मना की हुई, रोकी हुई। कल- चैन।

३७४. दस विधि धर्म-दश लक्षण धर्मः-उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य। मांदल-एक प्रकार का मृदंग (शुद्ध रूप मांदर)। अंगार-अग्नि।

३७६. बसि कर-वश में कर। बंधी-बंधकर। परिमल-सुगंधि। अक्ष-इन्द्रिय। मोहे-वश होकर। झपलावै-पलकें गिराना। पारधि-शिकारी। कुरंग- हिरन। पण-पांचों। खाज-खुजली। खुजाबत-खुजला कर। अभंग-अनन्त, कभी नष्ट नहीं होने वाला।

३७७. वगा-बगुला। जगा-मकान। नाग-हाथी। तूरगा-घोड़े (तुरंग)। खगा-हवा में उड़ने वाला (विद्याधर)।

कगा–कोए की आंख के समान चंचल। अमुलिक–अमोलक–कवि के पिता का नाम। पगा–अनुरुक्त हो।

३७८. दुरै–छिपे। थिरता–स्थिरता।

३७६. निधि–भण्डार। विगाय–गमाना। कई–कही। निरमई–कुबुद्धि। आपुमई–अपने समान। बलि गई–बलिहारी जाना।

३८०. जाई–बेटी। प्रतिहरि–प्रति नारायणः—जैन मान्यतानुसार रावण आठवें प्रतिनारायण थे। अघाई–पाप का स्थान। श्रेणिक–राजगृही के राजा बिंबसार जो बाद में जैन हो गया था। प्रारम्भ में किये गये पापों के बंध के कारण राजा श्रेणिक को नर्क जाना पड़ा। पांडव–पाचों पांडव। चक्री भरत–भरत चक्रवर्त्ती:—प्रथम तीर्थंकर भ० आदिनाथ के ज्येष्ठ पुत्र जिनका मान भंग अपने छोटे भाई बाहुबलि से हारने पर हुआ था। कोटीध्वज–सती मैना सुन्दरी का पति राजा श्रीपाल।

३८१. विघटावै–उड़ावे, नष्ट करें। भ्रम–मिथ्यात्व। विरचावै–विरक्त होवे। एक देश–अणुव्रत, श्रावकों (गृहस्थों) के व्रत। सकलदेश–महाव्रत, मुनियों के व्रत। द्रव्य कर्म–ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये आठ कर्म द्रव्य कर्म कहलाते हैं। नो कर्म—शरीरादिक नो कर्म कहलाते हैं। रागादिक–रागद्वेष रूप भाव कर्म। घातिघातकर–ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और

अन्तराय इन चार घातियां कर्मों को नाश कर। ज्ञेय-जानने योग्य पदार्थ। पर्यय-पर्याय।

३८३. शुद्ध नय-निश्चय नय की अपेक्षा। बंध पर्स विन-कर्म बंध के स्पर्श के बिना। नियत-निश्चित। निर्विशेष—पूर्ण।

३८४. इक ठार-एक स्थान पर। चोवो-चंदन। रीझ—प्रसन्न होना।

३८५. सरे-काम बनना।

३८६. वेदना-दुःख। सहारी-सहन करना। सुगति-स्वर्ग, सुख संपदा। मुकति-मुक्ति। नेह-कृपा।

३८७. हलके-कर्मों के बोझे से रहित। सिरभार-कर्मों के बोझ से लदे हुए। तारक-तारने वाले।

३८८. डायन-डाकिनी। मधु बिन्दु-शहद की बूंद के समान, अल्प। विषय—इन्द्रिय सुख। अंधकूप—संसार रूपी अंधेरे कुए में।

३८९. तिल तुष-रंच मात्र। ज्ञानावरण-ज्ञानावरणीय कर्म। अदर्शन-दर्शनावरणीय कर्म। गेरघो-नष्ट किया। उपाधि-रागद्वेष आदि उपाधि भाव। आकिंचन-अपरिग्रह अन्तराय-घातिया कर्मों में से एक भेद। गरूर-अभिमान।

३९०. प्रपंच-पाखण्ड। निरहि-इच्छा रहित। निठुरता-

निष्ठुरता। अघनग-पापों के पहाड़। कंदरा-गुफा कुलाचल—पर्वत। फूंके-जलाये। मृदुभाव-कोमल भाव। निरवांछक-इच्छा रहित। केवलनूर-केवल ज्ञान। शिवपंथ-मोक्ष-मार्ग। सनातन-परम्परागत।

३६१. विथा-व्यथा, दुःख। विषम ज्वर-तीव्र बुखार। तिहारी-आपकी। धन्वन्तर-आयुर्वेद के प्रतिष्ठापक वैद्य धन्वन्तरि जो समुद्र मंथन के समय प्राप्त होने वाले रत्नों में से एक थे। अनारी-अनाड़ी, अज्ञानी। टहल-सेवा, बंदगी।

३६२. गणधार—गणधर, गणपति। निरखत—देखना। प्रभुढिंग-प्रभु के पास।

३६३. बहुरंगी-अनेक रंगों वाला। परसंगी-अन्य के साथ रहने वाला। दुरावत-छिपाते हो। परजै-पर्याय। अमित-बेहद। सधन-धनवान। विविध-अनेक प्रकार की। परसाद-कृपा।

३६४. सुकृत-अच्छे कार्य। सुकृत-धर्म। सित-श्वेत। नीरा-जल। गहीरा-धारण करने वाला। निजविधि-अपने आप। अरस-रस रहित। अगंध-गंध रहित। अनौतन—परिवर्तन रहित। अपरस-स्पर्श रहित। पीरा-पीला। कीरा-कीड़ा। विषम भव-पीरा—संसार की असह्य पीड़ा।

२६५. तलब-कर। रहैना-तहसील का वसूली करने वाला

चपरासी। कुवे-शरीर रूपी कूप। पणिहारी-पानी भरने वाली, इन्द्रियां। बुर गया-थक गया। पानी-शरीर की शक्ति। बिलख रही-रो रही। बालू की रेत-बालू रेत के समान शरीर। ओस की टाटी-आांखें आदि। हंस-आत्मा। माटी-मृतक शरीर। सोने का-स्वर्ण का। रूपे का—चांदी का। हाकिम-आत्मा। डेरा-शरीर।

३६६. पास-पार्श्वनाथ। ससि-चन्द्रमा। विगत-चले गये। पसरी-फैली। बिकाश-निकसित। पखीयन-पक्षी-गण। ग्रास-भोजन। तमचुर-मुर्गा। भास-भाषा (बोली)।

३६७. मानि लै-ज्ञान करले। सुर-इन्द्र। भुंजि—भुगत कर। करीनै-करले। बांनि-आदत। कांनि लै-कानों से सुनले।

३६८. कोठी-दुकान। सराफी-आढ़त की। भव-विस्तार—संसार के बढ़ाने को। वाणिज—व्यापार। परिख-पारखी, परखने वाला। तगादे—तकाजा, उतावलापना, जल्दी। रुजनामा-रोजनामचा। बदलाई-अदला बदली के दाम। बढ़वारी-वृद्धि। कांटा-तोलने का कांटा। तोला-१२ माशे का एक तोला। अडेवा—अड़ा-अड़ी।

३६६. तरुनायो-युवावस्था। तियराज-स्त्रियों में। विरध-वृद्ध। गरीबनिवाज-गरीबों पर कृपा करने वाले।

बाज—घोड़े। चुरहलि–चुड़ैल। पांच चोर—पांचो पाप। मोसै—मसोसना, मसलना।

४००. निर-विकलप—विकल्प रहित। अनुभूति—अनुभव करना। सास्वती—हमेशा।

४०१. अनुरागो—अनुराग करो, प्रेम करो। भंडे—गालियां निकाले। पंच—पंच लोग। विहंडै—बुरा भला कहे। पदस्थ—पैंड, इज्जत। मढै–जमे। भाखी—कही। उजलाये–कीर्ति बढ़े। पञ्च-भेद युत—चोरी के पांचों अतिचार सहित—(१) चोरी का उपाय बताना, (२) चोरी का माल लेना, (३) राजाज्ञा का उल्लंघन अर्थात् हासिल-टैक्स आदि की चोरी करना (४) अधिक मूल्य की वस्तु में कम मूल्य की वस्तु मिलाकर बेचना, (५) नापने तोलने के गज, बांट आदि लेने के ज्यादा तथा देने के कम रखना, कम तोलना, नापना।

समाप्त

॥ कवि नामानुक्रमणिका ॥

रागानुक्रमणिका

राग का नाम — पद संख्या

राग का नाम	पद संख्या
भूपाली	—२०५।
भैरव	—८८।
भैरवी	—१६६, २६५, ३७६।
भैंरू	—१४४, २०७, २३६, ३४८, ३६६।
मल्हार	—६, २१, ६१, ६८, ६६, १०३, १०७, १२३, १२६, १७६, १८५, ३५३।
मांढ	—१३६, १३७, १४२, १४५, १६३, १७५, १८६, १६२, २२२, २२८, २४०, २४१, २५४, २५५, २५६, २६२, २६३, २६६, २६७, २६८, ३४२, ३५६।
मारु	—३७१, ३६४।
मालकोप	—२५२, २७८, ३६८।
रामकली	—२६, ७०, ८६, ८७, ६२, ६३, ६७, १०५, ११०, ११४, १२५, १२८, १४६, १५१, १६२, १६७, २०२, २३४, ३८६।
ललित	—१११, १६५, ३६३, ४००।
लावनी	—२८५, ३११।
विभास	—४२, ४६।
विहाग, विहंगडी, विहांगरी	—१३६, १६१, १७०, १७७, १६०, २४५, ३८५।
श्याम कल्याण	—१३८।

शुद्धाशुद्धि-पत्र

पत्र पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८— ८	तां टंक	ताटंक
२०—१०	आपरे	आयु रे
२६—१२	बन	बिनु
३०—१८	विपति	विपत्ति
३२—१०	चि	चित
३२—२०	मरूप	अरूप
३८—१६	कुल	व्याकुल
३८—१६	समुझ तुहि तु	समुझतु हितु
३६— २	जि	तजि
४६— ३	अन	आन
५०— ८	ते तजत	ते न तजत
५३—११	धन	धुन
५४—२०	रजन	मंजन
६८— ८	अपको	अपनो
७१— ३	गई	भई
६४— ३	सुविधा	दुविधा
६६—१२	झूले	भूले
६६—१५	धन	धर्म
१०२—१८	भव	भव भव
१०८—१०	काहिपत	कहियत
१२१—१७	घचन	बचन
१३०—१६	लेखै	लखै
१३२— ६	वहु तन	बहुत न
१३५—१३	मास	मात
१३६—१६	सपत	सत

पत्र पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४३—१२	धर पद	धुरपद
१५२—११	सुधा	सूधा
१६२— १	मेरे	प्रेरे
१६७— ४	आयो आय	आपोआप
१८०—१२	लाछ	लाज
१६६— १	भवो	भयो
२०६—१०	पट द्रव्य	षट्द्रव्य
२२६—११	आया	आपा
२४१—२०	वियोगा	विगोया
३०३—११	चक	चूक
३०७—११	पाय	याद
३१८— १	षिया	पिया
३४४— ६	वमिनी	दामिनी
३४८—१४	जीड मांगई	जडिमा गई
३४८—१७	मिथ्यान दृष्टि	मिथ्यात्व
३५३—२०	अवगौनसौं	आवागौनसौं
३५५—१६	नरना	करना
३५६—२०	इनके	इनमें
३६६— ३	अहार	हार
३६७—१३	बबूला	बुलबुला
३७२— ५	अघ	अघ
३७२—१२	चयिक	चायिक
३७६— ४	मदद	मद
३७७— ५	निमोद	निगोद
३७७—१०	जयकायिक	जलकायिक
३७८—२०	की होना	कीड़ा होना